खंड II

राजनीतिक संरचनाएँ

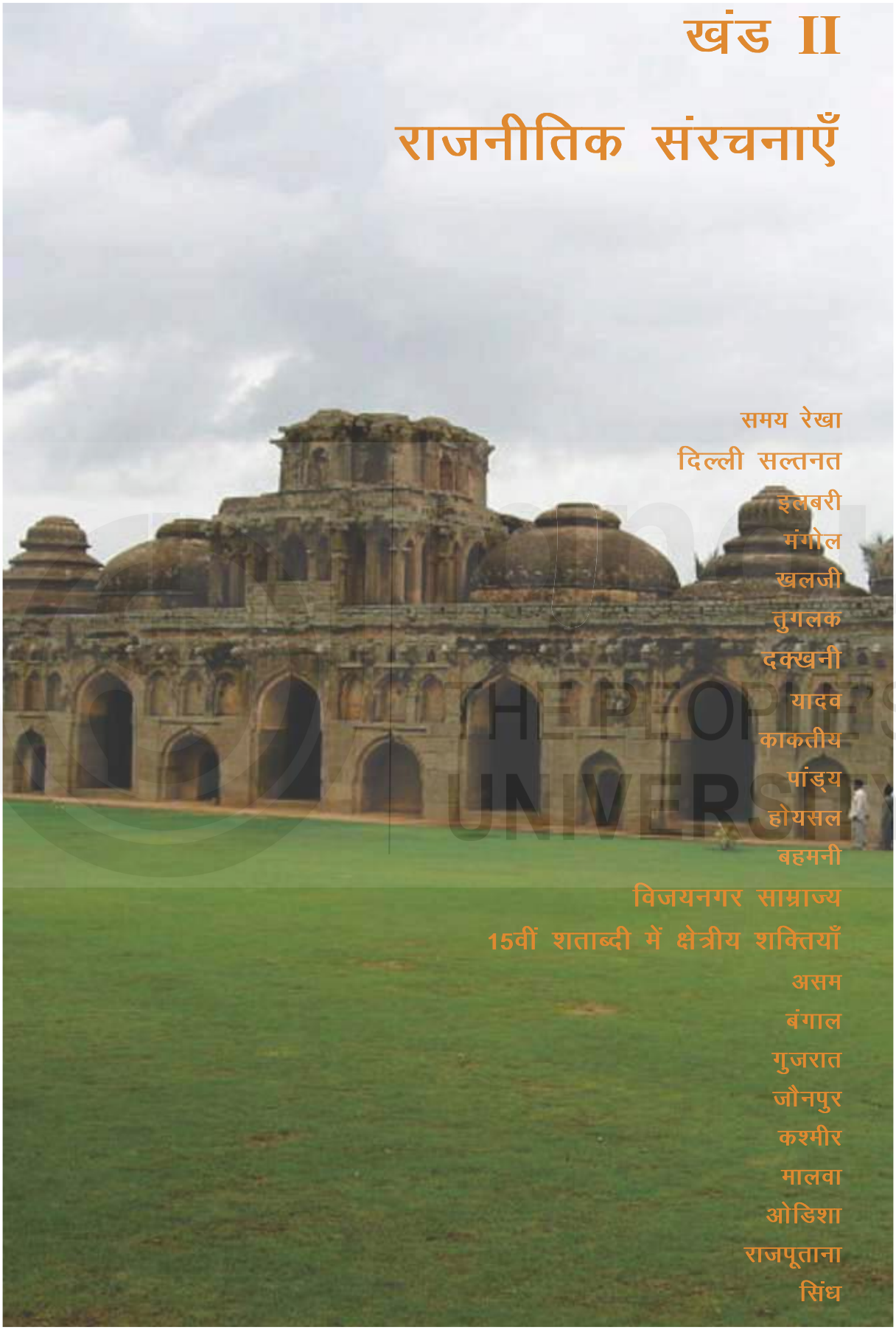

समय रेखा
दिल्ली सल्तनत
इल्बरी
मंगोल
खलजी
तुगलक
दक्खनी
यादव
काकतीय
पांड्य
होयसल
बहमनी
विजयनगर साम्राज्य
15वीं शताब्दी में क्षेत्रीय शक्तियाँ
असम
बंगाल
गुजरात
जौनपुर
कश्मीर
मालवा
ओडिशा
राजपूताना
सिंध

THE PEOPLE'S UNIVERSITY

फोटोग्राफ : हाथियों का अस्तबल/गजशाला
साभार : शशिकांथ 521; जुलाई 2007; CC-BY-SA 3.0
स्रोत : https://commons.wikimedia.org/wiki/file:elephant%27s_stable_or_gajashaale.jpg

इकाई 2 दिल्ली सल्तनत : प्रसार और सुदृढ़ीकरण*

इकाई की रूपरेखा

2.0 उद्देश्य

2.1 प्रस्तावना

2.2 संघर्ष एवं सुदृढ़ीकरणः 1206-1290

2.3 मंगोल समस्या

2.4 भारत में तुर्की विजय के राजनीतिक परिणाम

2.5 खलजी शासन का प्रसार

2.5.1 पश्चिम तथा मध्य भारत

2.5.2 उत्तर-पश्चिम तथा उत्तर भारत

2.5.3 दक्खन एवं दक्षिण की ओर प्रसार

2.6 तुगलक शासन का प्रसार

2.6.1 दक्षिण भारत

2.6.2 पूर्वी भारत

2.6.3 उत्तर-पश्चिम तथा उत्तर

2.7 सारांश

2.8 शब्दावली

2.9 बोध प्रश्नों के उत्तर

2.10 दिल्ली सुल्तानों का तिथिक्रम (1206-1526)

2.11 संदर्भ ग्रंथ

2.12 शैक्षणिक वीडियो

2.0 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के पश्चात् आपः

- दिल्ली सल्तनत के इतिहास के रचनात्मक और सबसे चुनौतीपूर्ण काल को समझ सकेंगे,
- मंगोल समस्या का विश्लेषण कर सकेंगे,
- सल्तनत कालीन शासक वर्ग के संघर्ष, प्रकृति और सत्ता के आधार की भी जानकारी प्राप्त करेंगे,
- दिल्ली सल्तनत की सीमाओं में 14वीं शताब्दी में उत्तर, उत्तर-पश्चिम तथा उत्तर-पूर्व में होने वाले प्रसार का ज्ञान प्राप्त कर सकेंगे, और
- दक्षिण भारत की ओर होने वाले दिल्ली सल्तनत के प्रसार की जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।

* डॉ. इफ्तिखार अहमद खां, इतिहास विभाग, एम.एस. विश्वविद्यालय, बड़ौदा; और प्रो. रविन्द्र कुमार, सामाजिक विज्ञान विद्यापीठ, इग्नू, नई दिल्ली। यह इकाई इग्नू के पाठ्यक्रम ई.एच.आई.-03: *भारतः 8वीं सदी से 15वीं सदी तक*, खंड 4, इकाई 13, 14 और 15 से ली गई है।

2.1 प्रस्तावना

10वीं शताब्दी में एशिया महाद्वीप के पूर्वी अंचलों में रहने वाले लड़ाकू खानाबदोशों का पश्चिम की ओर गमन देखने में आया। वे लहर पर लहर की तरह आए, उनका हर एक आक्रमण पहले के आक्रमण से कहीं अधिक शक्तिशाली और विस्तृत था। बहुत कम समय में ही बर्बर समूहों ने मध्य और पश्चिम एशिया के कभी संपन्न रहे साम्राज्यों और राज्यों को ध्वस्त कर दिया, वे भूमध्यसागर और काले सागर के तटों तक जा पहुंचे। जहाँ 10वीं और 12वीं शताब्दी के बीच आक्रमण करने वाले मुख्य तौर पर 'तुर्क' थे, वहीं 13वीं से 15वीं शताब्दियों के बीच आक्रमणों में तुर्कों की तरह की ही, लेकिन उनसे कहीं अधिक खूंखार कौम मंगोल शामिल थी।

10वीं शताब्दी के अंत में महमूद ग़ज़नवी के भारत पर आक्रमण और कोई दो सौ साल बाद भारत पर गौरी के आक्रमण इन व्यापक खानाबदोशी अभियानों के दूरगामी रूप थे (ग़ज़ना [आधुनिक गज़नी] और ग़ौर दोनों अफगानिस्तान में हैं)। जैसा एशिया के दूसरे हिस्सों में हुआ, भारत में तुर्कों के आक्रमण के परिणामस्वरूप 13वीं शताब्दी के प्रारंभिक वर्षों में 'दिल्ली सल्तनत' नामक एक स्वाधीन राजनीतिक सत्ता का निर्माण हुआ। 'दिल्ली सल्तनत' शब्द से दिल्ली में तुर्कों की राजधानी दिल्ली से उत्तरी भारत के बड़े हिस्सों पर उनके राज्य का पता चलता है। दिल्ली सल्तनत ने अपने दो सौ वर्षों से अधिक समय के अस्तित्व में नई राजनीतिक, सामाजिक और आर्थिक संस्थाओं को जन्म दिया, हालांकि यह संस्थाएँ पहले से विद्यमान संस्थाओं से बहुत भिन्न थीं। लेकिन दरअसल तुर्क अपने साथ जो कुछ लेकर आए थे और जो कुछ भारत में उन्होंने पाया, ये संस्थाएँ, उनका मिश्रण थीं। राजनीतिक और सैनिक संदर्भ में महमूद ग़ज़नवी के आक्रमण दिल्ली सल्तनत के वास्तविक अग्रदूत थे (विस्तृत जानकारी के लिए पाठ्यक्रम **बी एच आई सी-105, इकाई 6** देखें)।

इस इकाई में हम भारत पर तुर्की विजय का अध्ययन करेंगे जिसके परिणामस्वरूप 13वीं सदी सी ई के प्रारंभ में दिल्ली सल्तनत की स्थापना हुई। दिल्ली सल्तनत के शासकों ने सैन्य विजय प्राप्त करने के पश्चात् सल्तनत को सुदृढ़ता प्रदान करने का प्रयास किया।

2.2 संघर्ष एवं सुदृढ़ीकरण: 1206-1290

दिल्ली सल्तनत के इतिहास में 1206 से 1290 तक का समय निर्माणात्मक एवं अत्यधिक चुनौतियों से भरपूर रहा। इस काल की विशेषता यह थी कि जहाँ एक ओर ग़ौर वंश के शासक वर्ग में आंतरिक बहु-केंद्रित संघर्ष था, वहीं तुर्कों को नव-उदित राजपूत विद्रोहों के विरुद्ध संघर्ष करना पड़ा।

1206 में मुहम्मद गौरी की अचानक मृत्यु के पश्चात् उसके तीन महत्वपूर्ण सेनापतियों ताजुद्दीन यल्दूज़, नासिरूद्दीन कुबाचा एवं कुतबुद्दीन ऐबक के बीच सर्वोच्चता के लिए संघर्ष शुरू हो गया। यल्दूज़ के पास अफगानिस्तान और सिंध के बीच के मार्ग पर स्थित करमन तथा संकूरन के क्षेत्र थे। कुबाचा का उच्छ पर महत्वपूर्ण नियंत्रण था। जबकि ऐबक को पहले से ही मुहम्मद गौरी द्वारा 'वायसराय' के रूप में नियुक्त किया जा चुका था और वह भारत स्थित तुर्क सेना का सेनापति भी था। तकनीकी तौर पर वह अभी भी एक गुलाम ही था, किंतु उसके मालिक मुहम्मद गौरी की मृत्यु के तुरंत बाद उसको 'सुल्तान' की उपाधि प्रदान की गई। औपचारिक तौर पर दिल्ली सल्तनत की स्थापना एक स्वतंत्र पहचान के रूप में इस घटना से ही की जाती है। आगामी घटनाक्रम ने इसे वास्तविक स्वरूप प्रदान किया।

अपने चार वर्ष के संक्षिप्त शासनकाल में पंजाब पर अधिकार करने की यल्दूज की अभिलाषा को निष्क्रिय करने के लिए ऐबक (मृत्यु 1210) अपनी राजधानी को लाहौर ले गया। ख्वारिज़्म शाह के दबाव के कारण, जो दृढ़ता के साथ ग़ौर की ओर बढ़ रहा था, यल्दूज़ स्वयं को भारत में स्थापित करने के लिए बाध्य था।

ऐबक के उत्तराधिकारी के रूप में उसके दामाद इल्तुतमिश ने गद्दी संभाली और वह अपनी राजधानी वापस दिल्ली ले आया। तुर्कों द्वारा विजित क्षेत्र उनके नियंत्रण से बाहर हो गए थे और अधीनस्थ किए गए राजपूत सरदारों ने 'नजराना देना बंद कर दिया था तथा उनकी प्रभुसत्ता मानने से इंकार' कर दिया था। इल्तुतमिश के शासनकाल की एक चौथाई शताब्दी (1210-1236) के दौरान उन क्षेत्रों पर सल्तनत के प्रभुत्व को स्थापित करने पर बल दिया गया, जिनको वे खो चुके थे। इल्तुतमिश ने 1215 में यल्दूज़ को तराइन में पराजित कर दिया और 1217 में कुबाचा से लाहौर प्राप्त कर लिया और इसे अपने गवर्नर के अधीन कर दिया।

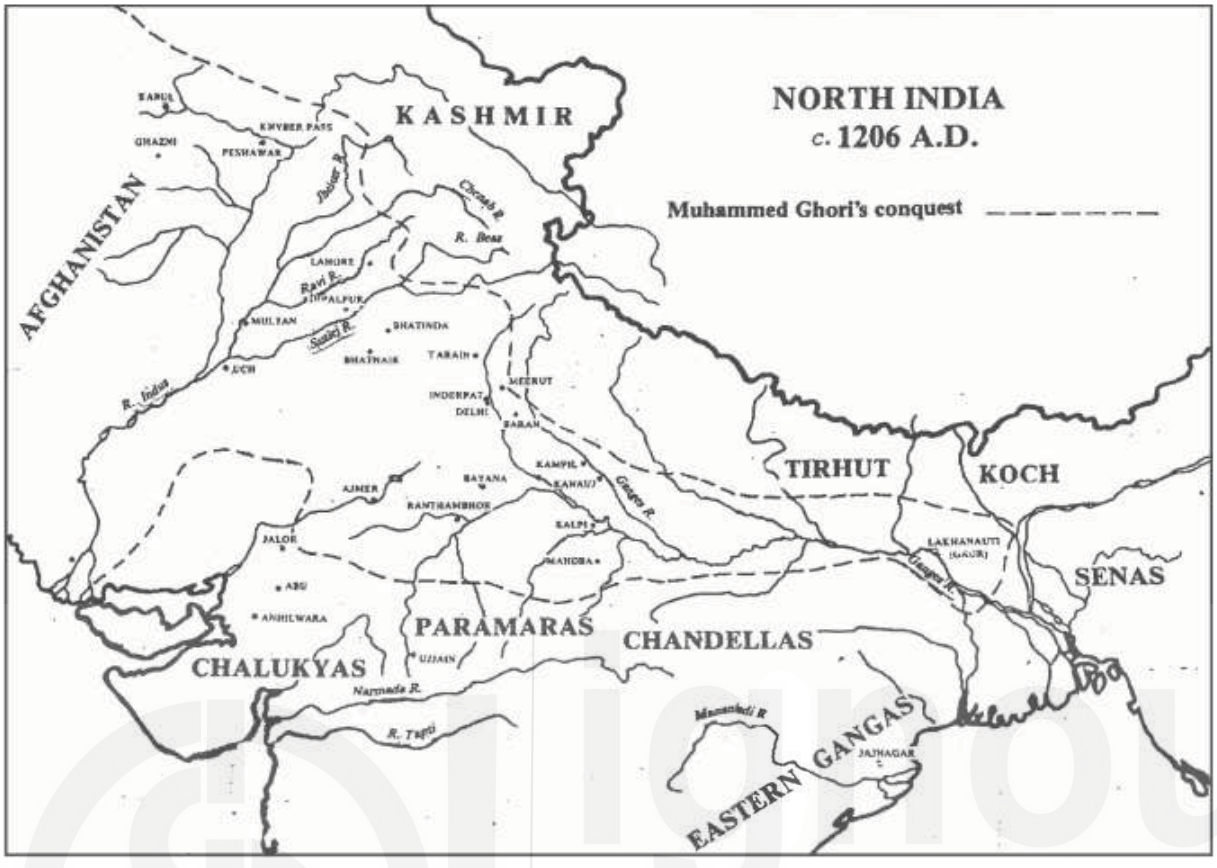

मानचित्र 2.1: गौर आक्रमणों के समय उत्तर भारत

स्रोत: ई.एच.आई.-03: *भारत: 8वीं सदी से 15वीं सदी तक*, खंड 4, इकाई 14, पृ. 24

इस घटना के तीन वर्ष के अंदर ही, जलालुद्दीन मंगबरनी का पीछा करते हुए मंगोल चंगेज़ खां के नेतृत्व में सिंधु नदी पर प्रकट हुए। जलालुद्दीन ख्वारिज़्म शासक का पुत्र था, जिसने पंजाब में शरण ले रखी थी। इसके बाद से ही मंगोल दिल्ली सल्तनत के शासकों के लिए चिंता का विषय बने रहे। 13-14वीं सदी के दौरान मंगोलों द्वारा किए गए आक्रमणों के विषय में हम इसी इकाई के आगामी भाग में विवेचन करेंगे।

यद्यपि मंगोलों की उपस्थिति ने उत्तर-पश्चिम में सल्तनत को सुदृढ़ करने की इल्तुतमिश की योजना को असफल कर दिया था, लेकिन इसने उन परिस्थितियों को उत्पन्न किया जिससे कुबाचा, जिसके नियंत्रण में उच्छ था, का राज्य नष्ट हो गया। उसको मंगबरनी के आक्रमण का सामना करना पड़ा। फलस्वरूप इल्तुतमिश ने भटिंडा, कुहराम तथा सरसुती पर अधिकार कर लिया। 1228 के आसपास उसने मुल्तान एवं उच्छ पर दो तरफा प्रहार भी किया। कुबाचा पराजित हो गया और स्वयं को सिंधु नदी में डुबो दिया। दिल्ली सल्तनत के लिए उत्तर-पश्चिम पर अधिकार करना अब संभव हो गया। राजपूताना में रणथंभोर, मंदौर, जालौर, बयाना एवं थानगीर को पुनः प्राप्त करने में भी तुर्क सफल रहे। 1225 के बाद इल्तुतमिश पूर्व की ओर अग्रसर हुआ। यदा-कदा सैनिक सफलताओं के अतिरिक्त, बंगाल में लखनौती तथा बिहार के शासक सल्तनत के प्रभुत्व की अवहेलना करते रहे। इल्तुतमिश की उपलब्धियों का आकलन करते हुए एक आधुनिक इतिहासकार ने लिखा है कि:

> प्रशासनिक-तंत्र की प्राथमिक रूपरेखा प्रदान करने के कारण सल्तनत उनकी ऋणी थी। उन्होंने निरंकुश राजतंत्र की नींव रखी और बाद में इस राजतंत्र की बदौलत खलजियों के अधीन इसका उपयोग सैनिक साम्राज्यवाद के तंत्र के रूप में हुआ। जहां ऐबक ने दिल्ली सल्तनत और इसके संप्रभु स्तर की नींव रखी, वहीं इल्तुतमिश निश्चित रूप से इसका प्रथम राजा था।

इल्तुतमिश की मृत्यु के बाद तुर्कों के मध्य गुटबाजी एवं कलह और अधिक तेजी से स्पष्ट हुई। लगभग तीस वर्षों के दौरान चार शासकों (इल्तुतमिश के उत्तराधिकारी के रूप में) ने दिल्ली सल्तनत पर शासन किया। इन वर्षों के दौरान उच्च राजनीति में निर्णय लेने वाले अति महत्वपूर्ण समूह को ***तुर्कान-ए चिहिलगानी बन्दागान-ए शमसी*** (इल्तुतमिश के 'चालीस' तुर्क गुलाम

'अधिकारीगण') के नाम से जाना जाता है। 14वीं सदी के इतिहासकार ज़ियाउद्दीन बरनी ने इन संकटकालीन वर्षों का संक्षिप्त एवं रोचक वर्णन किया है। वह लिखते हैं:

> शमसुद्दीन (इल्तुतमिश) के शासनकाल में...अति महत्वपूर्ण *मलिकों, वज़ीरों*, जो शिक्षित, बुद्धिमान एवं योग्य थे, की उपस्थिति के कारण सुल्तान (शमसुद्दीन) के दरबार में स्थिरता आई...किंतु सुल्तान की मृत्यु के बाद...उसके 'चालीस' गुलाम 'अधिकारियों' ने दरबार की राजनीति में सर्वोच्चता प्राप्त कर ली...सर्वोच्चता प्राप्त करने वाले ये तुर्क गुलाम अधिकारी जो कुलीन वर्ग से संबंधित थे...शमसुद्दीन के उत्तराधिकारियों के शासनकाल में...विभिन्न बहानों द्वारा नष्ट कर दिए गए।

बरनी ने अपने मुख्य विवरण में तत्कालीन घटनाक्रमों पर भी प्रकाश डाला है। 1235-1265 के बीच राजनीतिक घटनाक्रम सिंहासन एवं सैन्य अभिजात वर्ग, जो अपनी विशिष्ट स्थिति को बनाए रखने के लिए दृढ़ प्रतिज्ञ था, के बीच संघर्ष के इर्द-गिर्द घूमता रहा। और अक्सर संतुलन इस सैन्य अभिजात वर्ग के पक्ष में ही रहा।

इन परिस्थितियों में सल्तनत के अस्तित्व पर ही प्रश्नचिह्न लग गया। राजनीतिक अस्थिरता उस समय और अधिक तीव्र हो गई जब छोटे-छोटे राजपूत सरदारों एवं स्थानीय सरदारों ने केंद्र की अवज्ञा प्रारंभ कर दी। इसके अतिरिक्त, मंगोल आक्रमणकारी अभी भी पंजाब तथा उसके आसपास के क्षेत्र में लगातार सक्रिय थे।

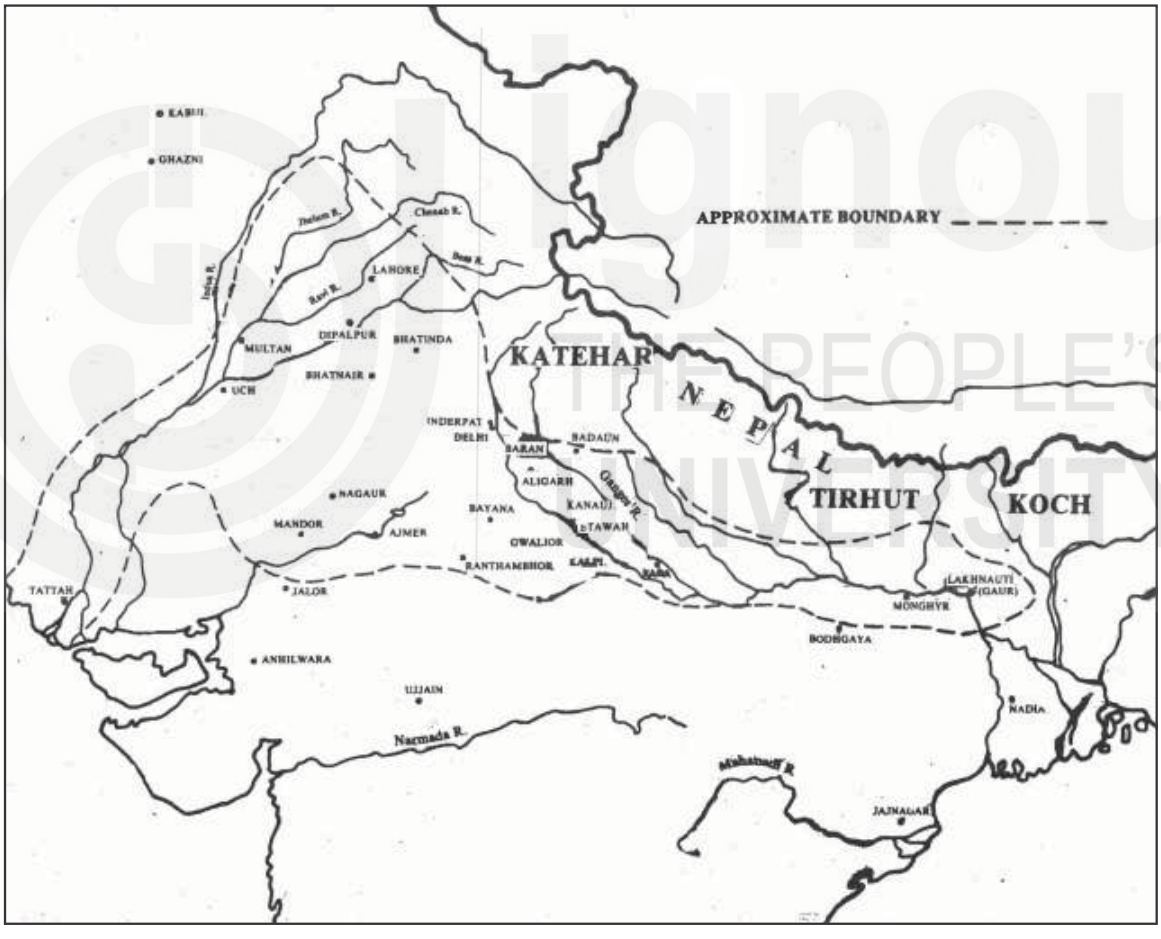

मानचित्र 2.2 : इल्तुतमिश साम्राज्य

स्रोत: ई.एच.आई..03: *भारत 8वीं सदी से 15वीं सदी तक,* खंड 4, इकाई 14, पृ. 28

1265 में बलबन के सिंहासनारोहण के साथ ही सल्तनत को एक ''लौह-इच्छाशक्ति वाला'' शासक प्राप्त हुआ। बलबन ने स्वयं के लिए दो उद्देश्य निर्धारित किए:

1) दरबारी उत्सवों की शान-शौकत द्वारा ताज की प्रतिष्ठा को स्थापित करना तथा सासानिद परंपराओं का पालन करना, जिससे शासक का स्थान आम जनता में विशिष्ट हो और सुल्तान उनके लिए भय का प्रतीक बन सके।

2) तुर्कों की शक्ति को और सुदृढ़ करनाः विद्रोहों का दृढ़ता के साथ दमन करना और प्रशासनिक तंत्र को चुस्त करना।

बलबन की मृत्यु के बाद सिंहासन के लिए एक बार फिर संघर्ष शुरू हो गया। बलबन ने अपने बड़े पुत्र मुहम्मद के पुत्र कै खुसरो को अपना उत्तराधिकारी नामज़द किया था, लेकिन कुलीनों ने बुगरा खां के पुत्र कैकूबाद को सिंहासन पर बैठाने में मदद की। दो वर्षों से भी अधिक समय तक सिंहासन के लिए संघर्ष चलता रहा। अंततः जलालुद्दीन खलजी, जो उस समय कुलीन वर्ग में प्रमुख था, ने सिंहासन प्राप्त करने में सफलता प्राप्त की। उसकी इस कार्यवाही का कड़ा विरोध हुआ, क्योंकि उस समय यह समझा जाता था कि खलजी तुर्क नहीं हैं, बल्कि वह एक अन्य जाति से संबंधित हैं। 1206-1290 के बीच खलजी महत्वपूर्ण पदों पर आसीन रहे। उदाहरण के लिए, बख्तियार खलजी बंगाल का *मुक्ती* था। यहाँ तक कि जलालुद्दीन खलजी स्वयं पश्चिमी पंजाब में सुनाम का *मुक्ती* था।

जलालुद्दीन खलजी ने अपने राज्य को सुदृढ़ता प्रदान करना शुरू किया, किंतु 1296 में उसके भतीजे अलाउद्दीन खलजी ने उसका वध कर सिंहासन पर अधिकार कर लिया। लगभग बीस वर्षों तक अलाउद्दीन खलजी के अधीन सल्तनत ने विजय की नीति का अनुसरण किया (इसके विषय में आप **भाग 2.5** में पढ़ेंगे)।

2.3 मंगोल समस्या

इस भाग में हम भारत की उत्तर-पश्चिम सीमा पर उत्पन्न मंगोल खतरे एवं उसके परिणामों को मुख्य रूप से रेखांकित करेंगे। हिंदुकुश पर्वत द्वारा विभाजित काबुल-ग़ज़नी-कंधार रेखा पर दिल्ली सल्तनत का नियंत्रण न केवल 'प्राकृतिक सीमाओं' ('scientific frontier') के स्थायित्व के लिए महत्वपूर्ण था, अपितु यह भी एक सत्यता थी कि यह मार्ग भारत को उस बड़े सिल्क मार्ग (Silk-route) से जोड़ता था, जो चीन से मध्य एशिया एवं ईरान होकर गुजरता था। लेकिन मध्य एवं पश्चिम एशिया में होने वाले परिवर्तनों के कारण नव-स्थापित तुर्की राज्य इस कार्य को न कर सका। मंगोल आक्रमणों के कारण उत्पन्न स्थिति ने दिल्ली के सुल्तानों के प्रसार को चिनाब नदी तक ही सीमित रखा, जबकि सतलज का क्षेत्र संघर्षों का मुख्य केंद्र बन गया। इस प्रकार 'सिंधु' नदी भारत की एकमात्र 'सांस्कृतिक सीमा' बनकर रह गई और सभी व्यावहारिक उद्देश्यों के लिए नियंत्रण रेखा केवल सिंधु नदी के पश्चिम तक ही सीमित थी।

प्रो. के. ए. निज़ामी ने सल्तनत द्वारा मंगोल खतरे की ओर अपनाए गए दृष्टिकोण को तीन भागों में बाँटा हैः क) **पृथकता**, ख) **तुष्टीकरण**, और ग) **विरोध**।

इल्तुतमिश ने 'पृथकता' की नीति का अनुसरण किया। दिल्ली के सुल्तानों को मंगोलों के खतरे का सामना तभी से करना पड़ा जब 1221 में मंगोलों ने ख्वारिज़्म साम्राज्य का अंत कर दिया और चंगेज खां राजकुमार जलालुद्दीन मंगबरनी का पीछा करते हुए भारत की सीमाओं पर आ पहुंचा था। जलालुद्दीन को जब कोई विकल्प दिखाई नहीं पड़ा, तब उसने सिंधु नदी को पार किया और सिंधु के खादर क्षेत्र में घुस गया।

इल्तुतमिश मंगोलों को, भारत की सीमा तक पहुंच जाने के कारण, नजरअंदाज नहीं कर सकता था। लेकिन उसके लिए सिंधु के खादर क्षेत्र में मंगबरनी की उपस्थिति भी समान रूप से महत्वपूर्ण थी। सुल्तान को भय था कि कुबाचा तथा खोखर मंगबरनी के साथ मिलकर कहीं गठजोड़ ना कर ले। लेकिन राजनीतिक सत्ता के लिए कुबाचा एवं मंगबरनी के मध्य गठबंधन नहीं हो सका, बल्कि वे सत्ता के लिए आपस में ही भिड़ गए। परंतु इसी बीच उसने खोखरों से वैवाहिक संबंध स्थापित करने में सफलता प्राप्त की। इससे उत्तर-पश्चिम में मंगबरनी की स्थिति और मज़बूत हो गई। अता मलिक जुवैनी ने अपनी पुस्तक *तारीख-ए जहांगुशा* में लिखा है कि इल्तुतमिश ने मंगबरनी की उपस्थिति से उस खतरे का अनुमान कर लिया था, जिसके अनुसार 'मंगबरनी उसके ऊपर अपनी सत्ता को स्थापित कर उसको नष्ट कर सकता था'। इसके अतिरिक्त इल्तुतमिश भली-भांति सल्तनत की कमजोरियों से भी परिचित था। इन्हीं कारणों से बाध्य होकर इल्तुतमिश ने 'पृथकता' की नीति का अनुसरण किया।

ऐसा प्रतीत होता है कि चंगेज़ खां ने अपने दूत को इल्तुतमिश के दरबार में भेजा था। सुल्तान के विषय में स्पष्ट रूप से कुछ कह पाना कठिन है, लेकिन इतना निश्चित है कि जब तक चंगेज़ खां जीवित रहा (मृत्यु 1227), तब तक इल्तुतमिश ने उत्तर-पश्चिम की ओर कोई सैन्य अभियान नहीं भेजा।

यह संभव हो सकता है कि दोनों के मध्य एक-दूसरे पर आक्रमण न करने का कोई समझौता हुआ हो। इल्तुतमिश ने कूटनीतिक तरीके से ख्वारिज़्म राजकुमार के साथ राजनीतिक गठबंधन करने की अवज्ञा की। ख्वारिज़्म राजकुमार ने आइन-उल मुल्क को इल्तुतमिश के दरबार में अपने राजदूत के रूप में इस प्रार्थना के साथ भेजा कि वह उसको राजनीतिक शरण दे। किंतु इल्तुतमिश ने यह कहते हुए इंकार कर दिया कि ठहरने के लिए यहाँ की जलवायु उसके अनुकूल नहीं है। दूसरे, उसने, उसके दूत का वध कर दिया। मिनहाज सिराज उल्लेख करता है कि इल्तुतमिश ने मंगबरनी के विरुद्ध सैनिक अभियान भेजा। किंतु मंगबरनी ने किसी तरह से युद्ध को टाल दिया और वह 1224 में अंततः भारतीय भूमि को छोड़ गया।

इल्तुतमिश की 'पृथकता' की नीति से 'तुष्टीकरण' की नीति की ओर बदलाव, उस समय हुआ जब सल्तनत की सीमाओं को लाहौर एवं मुल्तान तक बढ़ा दिया गया। इस नीति के कारण मंगोल आक्रमणों के सम्मुख सल्तनत प्रत्यक्ष तौर पर आ गई क्योंकि अब दोनों के मध्य मध्यवर्ती राज्य (buffer state) नहीं रहा था। बमयान के हसन क़रलग ने रज़िया सुल्तान के सम्मुख मंगोल विरोधी गठबंधन बनाने का प्रस्ताव रखा, किंतु उसने प्रस्ताव को मानने से इंकार कर दिया। इससे स्पष्ट है कि उसने मंगोलों के प्रति 'तुष्टीकरण' की नीति का अनुसरण किया। हमको इस तथ्य को भी ध्यान में रखना चाहिए कि मंगोलों द्वारा अनाक्रमण की इस नीति का अनुसरण चंगेज खां के पुत्रों के बीच साम्राज्य के बंटवारे का परिणाम था, क्योंकि इससे उनकी शक्ति कमज़ोर हो गई थी। दूसरा कारण यह भी था कि उस समय मंगोल पश्चिम एशिया में व्यस्त थे।

चाहे कोई भी कारण रहे हों, किंतु 1240-1266 के मध्य मंगोलों ने प्रथम बार भारत पर अधिकार करने की नीति का अनुसरण किया और इसी के साथ परस्पर एक-दूसरे पर 'आक्रमण न करने के समझौते' के स्वर्णिम युग का अंत हो गया। इस दौरान सल्तनत को मंगोलों से गंभीर खतरा बना रहा। इसका मुख्य कारण मध्य एशिया में होने वाला परिवर्तन था। ट्रांसऑक्सियाना के मंगोल खाकान के लिए शक्तिशाली ईरानी शासक का सामना करना कठिन था। इसलिए उसने अपने भाग्य को परखने के लिए भारत की ओर कूच किया।

1241 में तैर बहादुर ने लाहौर पर आक्रमण किया और नगर को पूर्ण रूप से नष्ट कर दिया। इसी के साथ 1245-1246 में दो और आक्रमण किए गए। नसीरुद्दीन के शासनकाल में बलबन द्वारा किए गए विशेष प्रयासों के बावजूद 1241-1266 के बीच सल्तनत की सीमाएँ सिमटकर व्यास नदी तक रह गईं। इसके बावजूद भी कुछ समय तक 'तुष्टीकरण' की नीति जारी रही। 1260 में हलागू के दूत का दिल्ली में उचित सम्मान किया गया और इसी तरह के कूटनीतिक सम्मान का परिचय हलागू ने भी दिया।

दिल्ली सल्तनत की नीति में विशेष परिवर्तन बलबन के सत्ताकाल से हुआ। कुल मिलाकर यह 'विरोध' का समय था। बलबन अधिकतर समय दिल्ली में ही रहा, उसकी मुख्य ताकत मंगोलों को रोकने में ही लगी रही और उसने उनको व्यास नदी से दूर रखने में सफलता भी प्राप्त की। बरनी लिखता है कि तमार खां तथा आदिल खां जैसे कुलीनों ने बलबन को मालवा एवं गुजरात पर आक्रमण करने का सुझाव दिया और उसे प्रसारवादी नीति का अनुसरण करने की सलाह दी। किंतु बलबन ने उत्तर दिया:

> जबकि मंगोलों ने इस्लाम की संपूर्ण भूमि पर अधिकार कर लिया है, लाहौर को नष्ट कर दिया है और इसे आधार बनाकर प्रत्येक वर्ष हमारे देश पर आक्रमण करते हैं...तब मैं अपनी राजधानी को कैसे छोड़ सकता हूं। मंगोल निश्चय ही इस अवसर का लाभ उठाते हुए दिल्ली पर अधिकार कर लेंगे और *दोआब* को रौंद डालेंगे। अपने ही राज्य में शक्ति बनाए रखना और अपनी शक्ति सुदृढ़ करना दूसरे देशों के क्षेत्रों पर आक्रमण करने से कहीं बेहतर है, जबकि अपना स्वयं का राज्य असुरक्षित हो।

बलबन ने मंगोलों के विरुद्ध 'बल एवं कूटनीति' दोनों का उपयोग किया। उसने अपनी सुरक्षा रेखा को मजबूत करने के लिए प्रयत्न किए। व्यास नदी के पार मंगोलों के विस्तार को रोकने के लिए भटिंडा, सुनाम तथा समाना के किलों की मरम्मत कराई। बलबन ने मुल्तान एवं उच्छ पर अधिकार करने में भी सफलता प्राप्त की, किंतु पंजाब में उसकी सेनाओं पर मंगोलों का भारी दबाव बना रहा। बलबन के पुत्र राजकुमार मुहम्मद को प्रत्येक वर्ष मंगोलों के विरुद्ध सैनिक अभियान भेजने पड़ते

थे। मंगोलों से मुल्तान की रक्षा करते हुए 1285 में राजकुमार की मृत्यु हो गई। परंतु एक वास्तविकता यह भी थी कि 1295 तक मंगोलों ने दिल्ली पर अधिकार करने के प्रति कोई विशेष उत्सुकता नहीं दिखाई।

खलजियों के शासनकाल में मंगोल आक्रमणों का क्षेत्र और आगे की ओर बढ़ गया। 1299 में मंगोलों ने कुतलग़ ख्वाजा के नेतृत्व में प्रथम बार दिल्ली पर आक्रमण किया। तब से दिल्ली मंगोल आक्रमणों का एक स्थायी लक्ष्य बन गई। दूसरी बार कुतलग़ ख्वाजा ने दिल्ली पर 1303 सी ई में उस समय आक्रमण किया जब अलाउद्दीन चित्तौड़ के अभियान में व्यस्त था। यह आक्रमण इतना भयंकर था कि मंगोलों ने दिल्ली में व्यापक स्तर पर सर्वनाश किया। दिल्ली में उनके रहते अलाउद्दीन खलजी नगर में प्रवेश करने की हिम्मत न कर सका।

मंगोलों के लगातार होने वाले आक्रमणों ने अलाउद्दीन को स्थायी समाधान ढूंढने के लिए बाध्य किया। उसने व्यापक स्तर पर सैनिकों की भर्ती की और सीमावर्ती किलों को मजबूत किया। फलस्वरूप मंगोलों को पहले 1306 में तथा फिर 1308 में पराजय का सामना करना पड़ा। मंगोलों की इस पराजय का एक कारण 1306 में मंगोल सरदार दावा खां की मृत्यु और उसकी मृत्यु के बाद वहाँ गृह युद्ध का शुरू हो जाना भी था। इससे मंगोल बहुत अधिक कमजोर पड़ गए और अब उनका अस्तित्व एक शक्ति के रूप में समाप्त हो गया। इससे दिल्ली के सुल्तानों को अपनी सल्तनत की सीमाओं का प्रसार करने में सहायता मिली। मंगोलों का अंतिम महत्वपूर्ण आक्रमण तरमाशीरीन (1326-27) के नेतृत्व में मुहम्मद तुगलक के शासन काल में हुआ।

इस तरह दिल्ली के सुल्तान मंगोल समस्या का समाधान करने में सफल रहे और मंगोलों से अपने राज्य को बचाए रखने में सफलता प्राप्त की। इससे सल्तनत की शक्ति भी स्पष्ट होती है। इसके अतिरिक्त, मंगोलों द्वारा मध्य एवं पश्चिमी एशिया में किए गए सर्वनाश के कारण बड़ी संख्या में विद्वान, दार्शनिक, कलाकार एवं अन्य लोग भागकर दिल्ली आ गए और उन्होंने इसको मुस्लिम संस्कृति के एक महान् नगर के रूप में रूपांतरित किया।

2.4 भारत में तुर्की विजय के राजनीतिक परिणाम

भारत की तुर्की विजय के कारण भारत की राजनीतिक, आर्थिक और सामाजिक परिस्थितियों में दूरगामी परिवर्तन हुए।

तुर्की विजय का पहला बड़ा परिणाम यह हुआ कि 'सामंती' एवं बहु-केंद्रित राजनीति का स्थान एक ऐसी केंद्रीकृत राजनीतिक व्यवस्था ने ले लिया, जिसके अंतर्गत राजा को असीमित अधिकार प्राप्त थे। जिस मुख्य संस्था के कारण सल्तनत संभव हो सकी, वह *इक्ता* व्यवस्था थी जो हस्तांतरित राजस्व भू-अनुदान थे। इस संस्था को सैलजुकों ने अपने अब्बासी शासन क्षेत्रों में अपनाया था, जिसमें उन्होंने अपनी आवश्यकतानुसार परिवर्तन किए। अगले खंड में आप *इक्ता* के इतिहास के बारे में विस्तृत रूप से अध्ययन करेंगे। यहाँ पर हम इसकी मुख्य विशेषताओं का उल्लेख करेंगे, जिससे कि आप यह चित्रित कर पाएं कि कैसे इसने विभिन्न प्रकार की राजनीतिक प्रणाली को आधार उपलब्ध कराया। इस व्यवस्था के अंतर्गत राजा के अधिकारियों को राजस्व एकत्रित करने तथा सेना एवं अश्वरोहियों के रख-रखाव के लिए भू-क्षेत्र अनुदान में दिए जाते थे। इन अधिकारियों को *मुक्ती* कहा जाता था। तुर्कों से पूर्व भूमि-अनुदान प्राप्तकर्ताओं को स्थायी मालिकाना अधिकार प्राप्त थे, किंतु *इक्ता* के अंतर्गत इनका स्थानांतरण होता रहता था और एक विशेष स्थान पर आमतौर पर वे तीन या चार वर्ष तक ही रहते थे।

अगर संपूर्ण सल्तनत के दृष्टिकोण से देखें तो प्रतीत होता है कि यह व्यवस्था अनुदान प्राप्तकर्ता को केंद्रीय सत्ता पर काफी हद तक निर्भर बना देती थी, जो कि परवर्ती राजनीतिक प्रणालियों में संभव नहीं था। जहाँ एक ओर *राय, राणा* एवं *ठाकुर* देश की एकता बनाए रखने में असफल रहे, वहीं पर तुर्कों ने 'अखिल भारतीय स्तर के प्रशासन की स्थापना करने में सफलता प्राप्त की और ऐसा उन्होंने दिल्ली प्रशासन के नियंत्रण में मुख्य नगरों एवं बड़े व्यापारिक मार्गों को लाकर किया'।

इक्ता व्यवस्था ने जहाँ एक ओर निरंकुश राज्य के लिए आधार उपलब्ध कराया, वहीं यह कृषि के अतिरिक्त उत्पाद को एकत्रित करने का एक साधन भी बन गया। तुर्क अपने साथ नगरों में रहने

की परंपरा को लेकर आए थे। इसका परिणाम यह हुआ कि देश के ग्रामीण अंचलों से भू-कर उत्पादन अधिशेष के रूप में नगरों में पहुंचने लगा। इससे पर्याप्त मात्रा में शहरी अर्थव्यवस्था में वृद्धि हुई। तुर्क अपने साथ ***रहट*** एवं ***चरखे*** को लेकर आए। रहट से कृषि उत्पादन बढ़ाने में काफी सहायता मिली (विस्तृत जानकारी के लिए **खंड III**, **इकाई 14** देखें)।

बोध प्रश्न-1

1) कुतबुद्दीन ऐबक ने यल्दूज़ की शक्ति को कैसे कुचला?

.....

.....

.....

2) 'भारत में तुर्की शासन का वास्तविक संस्थापक इल्तुतमिश था'। व्याख्या कीजिए।

.....

.....

.....

3) 'मंगोलों के आक्रमणों का सामना करने के लिए दिल्ली के सुल्तानों ने पृथकता, तुष्टी करण तथा विरोध, इन तीन शस्त्रों का अनुसरण किया'। व्याख्या कीजिए।

.....

.....

.....

4) तुर्कों की भारत विजय के राजनीतिक परिणामों की विवेचना कीजिए।

.....

.....

.....

2.5 खलजी शासन का प्रसार

13वीं सदी के मध्य में तुर्की सुल्तानों द्वारा प्रारंभिक विस्तार करने की लहर के शांत हो जाने के पश्चात्, बाद के सुल्तानों का मुख्य उद्देश्य सल्तनत को सुदृढ़ता प्रदान करना था। अतः खलजी वंश की स्थापना तक सल्तनत की प्रारंभिक सीमाओं में कोई उल्लेखनीय वृद्धि नहीं हो पाई। 13वीं सदी के अंत में तुर्की शासन का खलजी वंश द्वारा तख्त पलट दिया गया। इससे शासक वर्ग के जातिगत चरित्र में काफी बदलाव आया। यह एक अति महत्वपूर्ण घटना थी। सल्तनत की उन्मुक्त विस्तारवादी नीति और सल्तनत के मामलों का प्रबंध करने के लिए विभिन्न शासक समूहों की भूमिका के फलस्वरूप क्षेत्रीय प्रसार करना संभव हो सका। जलालुद्दीन फिरोज़ खलजी द्वारा सत्ता प्राप्त करने के बाद झाइन एवं रणथंभोर में हुई लूटमार ने यह सिद्ध कर दिया कि क्षेत्रीय प्रसार एक राजनीतिक आवश्यकता थी। पड़ोसी राज्य शक्तिशाली हो गए थे और उनके द्वारा किया गया कोई भी संगठित प्रयत्न दिल्ली सल्तनत के लिए महंगा साबित हो सकता था। इसके अतिरिक्त अलाउद्दीन खलजी के शासनकाल में जहाँ एक ओर इन हमलों का कारण क्षेत्रीय प्रसार था वहीं धन एकत्रित करने का लालच भी इसके साथ मिश्रित हो गया। 14वीं सदी के प्रारंभ में इन दोनों कारकों ने क्षेत्रीय प्रसार की गति को सुनिश्चित किया।

क्षेत्रीय प्रसार के कार्यक्रम को कार्यान्वित करने के लिए प्रथम खलजी सुल्तान जलालुद्दीन के पास न तो इच्छाशक्ति थी और न ही संसाधन। उसके छः वर्ष के शासन को सुल्तान की नीतियों तथा उसके समर्थकों के स्वार्थों के बीच सामंजस्य बनाए रखने के अतिरिक्त विरोधाभासों ने मानों जकड़ लिया था। इस समस्या का समाधान सुल्तान जलालुद्दीन की दुर्भाग्यपूर्ण हत्या के रूप में हुआ। अलाउद्दीन, जलालुद्दीन का हत्यारा एवं उत्तराधिकारी, की साम्राज्य प्रसार की विभिन्न योजना थी। वह क्षेत्रीय अधिग्रहण तथा सल्तनत के प्रसार के उस युग का अग्रदूत था, जिसके शासनकाल के दौरान, 14वीं सदी के मध्य तक, सल्तनत की सीमाएँ दक्षिणी प्रायद्वीप के अंतिम छोर तक फैल गईं।

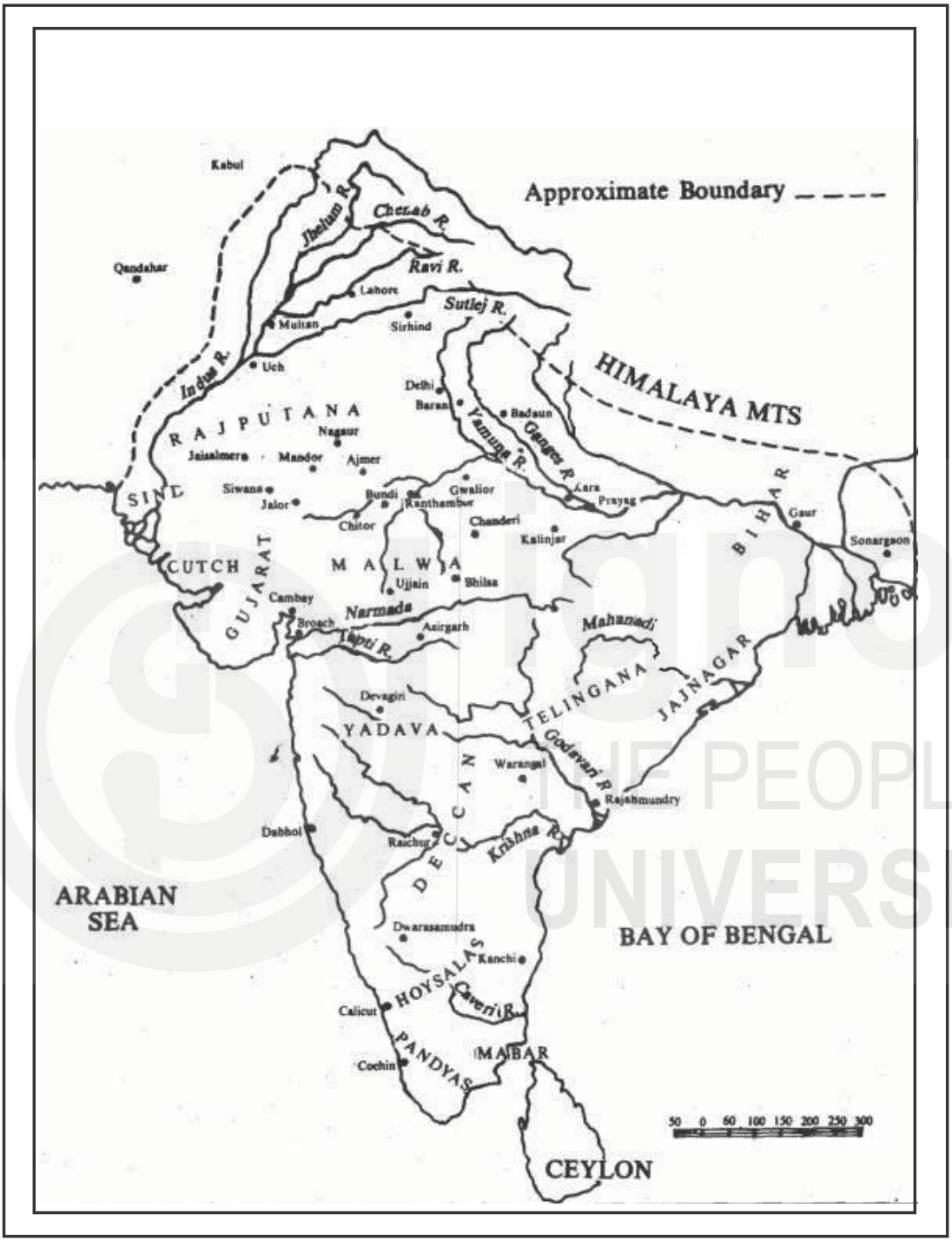

मानचित्र 2.3 : खलजी प्रसार

स्रोतः ई.एच.आई.-03ः *भारतः 8वीं सदी से 15वीं सदी तक,* खंड 4, इकाई 15, पृ. 37

2.5.1 पश्चिम तथा मध्य भारत

अलाउद्दीन खलजी ने दिल्ली में अपनी स्थिति को सुदृढ़ तथा स्वयं को मजबूती से स्थापित करने के बाद 1299 में गुजरात प्रदेश में अपने प्रथम सैनिक अभियान का प्रारंभ किया। उसके अधीन यह प्रथम क्षेत्रीय प्रसार भी था। शायद गुजरात, जिसके संपन्न व्यापार ने सदैव ही आक्रमणकारियों को ललचाया था, की संपन्नता की ओर भी अलाउद्दीन आकर्षित हुआ था।

शाही सेना का नेतृत्व संयुक्त रूप से अलाउद्दीन के दो सर्वश्रेष्ठ सेनापतियों, उलुग खान एवं नुसरत खान, के अधीन था। गुजरात को सरलता के साथ जीत लिया गया। प्रदेश को लूटा गया। राजधानी अन्हिलवाड़ा को नष्ट कर दिया गया। गुजरात का प्रशासनिक नियंत्रण अल्प खान को गवर्नर के रूप में सौंप दिया गया।

साम्राज्य का पश्चिम की ओर प्रसार तथा उस पर नियंत्रण करने के लिए अलाउद्दीन ने 1305 में मालवा को अपने अधीन कर लिया। यह एक विशाल प्रदेश था। इस राज्य की राजधानी माण्डू से राजा राय महालक देव अपने एक शक्तिशाली मंत्री कोका प्रधान की सहायता से शासन करता था। राय की सेना शाही सेना से संख्या में कहीं अधिक थी लेकिन शाही सेना ने अंततः सफलता प्राप्त कर ली और माण्डू के किले पर अधिकार कर लिया गया। मालवा के पतन के बाद प्रशासन के लिए उसको आइन-उल मुल्क को सौंप दिया गया और उसने शीघ्र ही उज्जैन, धार तथा चन्देरी को अपने नियंत्रण में ले लिया।

मालवा का अनुसरण करते हुए सिवाना, जो जोधपुर से दक्षिण-पश्चिम की ओर लगभग 80 किलोमीटर की दूरी पर स्थित था, पर आक्रमण किया गया। अलाउद्दीन की सेना ने 1304-1305 से लगभग छः वर्षों तक सिवाना पर बिना कोई विशेष सफलता प्राप्त किए घेराव डाले रखा। किले पर अंततः 1309 सी ई में अधिकार कर लिया गया। सिवाना का शासक राय शीतल देव सैनिक अभियान के दौरान मारा गया। किले तथा प्रदेश को कमालुद्दीन गुर्ग के नियंत्रण में सौंप दिया गया।

उसी वर्ष (1309 में) जालौर पर आक्रमण किया गया। युद्ध में इसके शासक कन्हार देव का वध कर दिया गया। किले को सल्तनत में मिला लिया गया और कमालुद्दीन गुर्ग के नियंत्रण में दे दिया गया।

2.5.2 उत्तर-पश्चिम तथा उत्तर भारत

अलाउद्दीन द्वारा सत्ता प्राप्त करने के बाद अलाउद्दीन को जलालुद्दीन के परिवार द्वारा, जो भाग कर मुल्तान चले गए थे, संभावित विद्रोह के दमन की समस्या का सामना करना पड़ा। उलुग खान तथा ज़फ़र खान को मुल्तान में अरकली खान को नष्ट करने का कार्य सौंपा गया। अरकली खान को बंदी बना लिया गया और सुरक्षित रूप से दिल्ली लाया गया। वास्तव में, मुल्तान एक बार फिर दिल्ली के नियंत्रण में आ गया। वास्तव में, मुल्तान अभियान किसी भी तरह से क्षेत्रीय प्रसार का कार्य न था, अपितु सुदृढ़ीकरण की नीति का ही एक भाग था।

1300 में अलाउद्दीन ने रणथंभोर पर आक्रमण करने के लिए उलुग खान को भेजा। इस समय रणथंभोर का शासक राय हमीर था। उलुग खान के अभियान में अवध का गवर्नर नुसरत खान भी सम्मिलित हो गया। रणथंभोर जाते हुए मार्ग में शाही सेनाओं ने झाइन पर अधिकार कर लिया। तत्पश्चात् रणथंभोर के किले पर घेराव डाला, जिसका नेतृत्व अलाउद्दीन ने स्वयं अपने हाथ में लिया। यह घेराव लगभग छः माह तक चला। अंततः किले के अंदर महिलाओं ने **जौहर** द्वारा अपनी जान दे दी और एक रात स्वयं राय हमीर देव ने किले के फाटकों को खोल दिया और लड़ते-लड़ते मारा गया।

इस नीति का अनुसरण करते हुए अलाउद्दीन ने 1303 में चित्तौड़ पर भी आक्रमण किया। कई आक्रमणों के बाद चित्तौड़ के राजा ने अचानक स्वयं सुल्तान के सम्मुख आत्मसमर्पण का प्रस्ताव प्रेषित किया। उत्तराधिकारी युवराज खिज़्र खान को इस क्षेत्र का गवर्नर नियुक्त किया गया। लेकिन शीघ्र ही किले को चित्तौड़ के पूर्व शासक के भांजे मालदेव को सौंप दिया गया जो अलाउद्दीन के शासन के अंत तक दिल्ली के प्रति वफादार बना रहा।

अलाउद्दीन के शासन के प्रथम दशक के अंत में दिल्ली सल्तनत की सीमाओं का प्रसार लगभग संपूर्ण उत्तर, पश्चिम तथा मध्य भारत में हो चुका था। उत्तर-पश्चिम में मुल्तान से मध्य भारत में विंध्य पर्वत तक, और संपूर्ण राजपूताना का क्षेत्र दिल्ली सल्तनत के अधीन हो गया।

2.5.3 दक्खन एवं दक्षिण की ओर प्रसार

देवगिरी पहले ही 1296 में, जब अलाउद्दीन खलजी कड़ा का गवर्नर था, उसकी लूट का शिकार हो चुका था। दक्खन में दूसरे सैनिक अभियान की योजना भी अलाउद्दीन ने 1306-1307 में राय

रामचंद्र देव के विरुद्ध ही बनाई। इस आक्रमण का तात्कालिक कारण देवगिरी द्वारा लंबे समय से दिल्ली को, 1296 में, वार्षिक नजराना न भेजना था।

दक्खन के सैनिक अभियान का नेतृत्व मलिक काफूर को सौंपा गया और इस अभियान में मदद करने के लिए आइन उल मुल्क मुल्तानी तथा अल्प खां को निर्देश भेजे गये। रामचंद्र देव ने थोड़े से विरोध के पश्चात् व्यक्तिगत सुरक्षा का आश्वासन मिलने पर शाही सेनाओं के सम्मुख आत्मसमर्पण कर दिया। हालांकि उसका पुत्र सेना की एक टुकड़ी के साथ भाग गया, रामचंद्र देव का सुल्तान द्वारा बहुत सम्मान किया गया और इस आश्वासन के साथ उसका शासन वापस लौटा दिया गया कि वह सुल्तान को वार्षिक नजराना शीघ्रता के साथ लगातार भेजेगा। रामचंद्र देव ने सुल्तान के साथ अपनी पुत्री का विवाह भी कर दिया। इससे स्पष्ट होता है कि अलाउद्दीन की नीति देवगिरी पर अधिकार करने की नहीं थी। वह इसको एक संरक्षित राज्य बनाना चाहता था और जितना संभव था उससे धन प्राप्त करना चाहता था।

मलिक काफूर द्वारा देवगिरी अभियान के कुशल संचालन से सुल्तान का उसकी सैनिक योग्यताओं में विश्वास बढ़ गया। सुल्तान ने दक्षिण प्रायद्वीप पर सैनिक आक्रमणों का उत्तरदायित्व उस पर सौंपने का निश्चय किया। ऐसा प्रतीत होता है कि अलाउद्दीन के दक्षिण अभियानों का मुख्य उद्देश्य दक्षिणी राज्यों से धन प्राप्त करना था न कि क्षेत्रीय प्रसार करना। अतः अक्टूबर 1309 में मलिक काफूर के नेतृत्व में शाही सेना ने दक्षिण की ओर अपने अभियान का प्रारंभ किया। अमीर खुसरो ने अपनी रचना *खज़ायन-उल फुतूह* में इन सैनिक अभियानों का विशद् विवरण किया है। रास्ते में मलिक काफूर ने आदिलाबाद ज़िले में स्थित सीरपुर के किले पर अचानक आक्रमण किया। सीरपुर के कुलीनों ने वारंगल के राय रुद्रदेव के पास शरण ली। शाही सेना ने सीरपुर के किले पर अधिकार कर लिया।

जनवरी 1310 के मध्य में शाही सेनाएँ वारंगल के समीप पहुंच गईं। 14 फरवरी 1310 में काफूर ने किले पर आक्रमण किया। युद्ध का शीघ्र ही अंत हो गया क्योंकि राय रुद्रदेव आत्मसमर्पण करने के लिए तैयार हो गया। उसने अपने कोष का एक भाग सुल्तान को देने का वचन दिया और वह वार्षिक नजराना अदा करने के लिए भी सहमत हो गया।

सुल्तान की सेना ने वारंगल में शानदार सफलता प्राप्त की। शाही सेना ने 20,000 घोड़े, 100 हाथी का अपार भंडार और हीरे-जवाहरातों से लदे एक हजार ऊंटों को लूट में प्राप्त किया। इस प्रांत का अधिग्रहण नहीं किया गया, बल्कि उसे संरक्षित राज्य का दर्जा प्रदान किया गया। जून 1310 के प्रारंभ में शाही सेना दिल्ली वापस लौट आई। सुल्तान की धन की लालसा की अब कोई सीमा न थी। मंगोलों के खतरों से उत्तर की सीमा के सुरक्षित हो जाने के फलस्वरूप और विंध्याचल के उत्तर तक का संपूर्ण भू-भाग उसके अधीन हो जाने के कारण उसने सुदूर दक्षिण की ओर दूसरा सैनिक अभियान भेजने की योजना बनाई।

राजा की दृष्टि अब वारंगल से और आगे दक्षिण की ओर द्वारसमुद्र पर केंद्रित थी। मलिक काफूर को एक बार फिर शाही सेना का नेतृत्व सौंपा गया। काफूर को लगभग 500 हाथी सहित सोने एवं जवाहरातों को प्राप्त करने का आदेश दिया गया था। फरवरी 1311 में द्वारसमुद्र के किले पर शाही सेना ने घेराव डाला और दूसरे ही दिन द्वारसमुद्र के शासक बल्लालदेव की ओर से शांति स्थापित करने का प्रस्ताव आ गया। अन्य समझौतों की भांति द्वारसमुद्र के शासक ने भी अपार धन और वार्षिक नज़राना देने का वचन दिया।

द्वारसमुद्र की सफलता से उत्साहित होकर मलिक काफूर ने अपने सैनिक अभियान को आगे दक्षिण की ओर जारी रखा। वह माबार की ओर अग्रसर हुआ और एक माह से भी कम समय में ही पांड्यों की राजधानी मदुरा पहुंच गया। लेकिन पांड्य शासक सुंदर पहले ही भाग गया। मलिक काफूर ने राज्य के कोष एवं हाथियों पर अधिकार कर लिया जो मात्रा में कुल 512 हाथी, 5000 घोड़े तथा 500 मन अमूल्य हीरे-जवाहरात थे।

अलाउद्दीन के दक्खन एवं दक्षिण सैनिक अभियानों के दो मुख्य उद्देश्य थे 1) इन क्षेत्रों में दिल्ली के सुल्तान के प्रभुत्व को औपचारिक मान्यता प्रदान करना, और 2) कम से कम जीवन के नुकसान पर अधिक से अधिक धन-संपदा एकत्रित करना। विजित किए गए क्षेत्रों का अधिग्रहण करने की बजाय

विजित राज्यों द्वारा उसके सामंतीय प्रभुत्व को स्वीकार करने की नीति अलाउद्दीन खलजी की राजनीतिक सर्वोच्चता को परिलक्षित करती है।

मलिक काफूर के माबार से लौटने के एक वर्ष के अंदर ही दक्खन में होने वाली घटनाओं को लेकर अधिग्रहण न करने की नीति का पुनरावलोकन करने की आवश्यकता महसूस हुई। 1312 के उत्तरार्द्ध में देवगिरि के शासक राम देव की मृत्यु के बाद उसका पुत्र भील्लमा उत्तराधिकारी बना। भील्लमा ने दिल्ली के सुल्तान के प्रभुत्व को मानने से इंकार कर दिया और उसने स्वयं को स्वतंत्र शासक घोषित कर दिया। अलाउद्दीन ने मलिक काफूर को इस विद्रोह को कुचलने के लिए भेजा और प्रांत पर अस्थाई नियंत्रण करने का भी आदेश दिया। लेकिन मलिक काफूर को शीघ्र ही वापस बुला लिया गया और उसे आइन उल मुल्क को इस प्रांत का नियंत्रण सौंप देने का आदेश मिला। अलाउद्दीन की मृत्यु के बाद जनवरी 1316 में आइन-उल मुल्क को भी देवगिरी की समस्या को हल किए बगैर दिल्ली वापस बुला लिया गया। अतः अलाउद्दीन का उत्तराधिकारी मुबारक खलजी सत्तासीन होने के तुरंत बाद ही देवगिरी की ओर प्रस्थान करना चाहता था, लेकिन उसके कुलीन सलाहकारों ने उसको सलाह दी कि वह देवगिरी के अभियान पर न जाए और पहले दिल्ली में अपनी स्थिति को सुदृढ़ करे। मुबारक ने अपने शासन के दूसरे वर्ष, अप्रैल 1317, में इस अभियान के लिए प्रस्थान किया। अभियान शांतिपूर्ण रहा। देवगिरी की ओर से कोई विरोध नहीं किया गया और मराठा सरदारों ने सुल्तानों के सम्मुख समर्पण कर दिया। इस प्रांत को सल्तनत के अधीन कर लिया गया।

बोध प्रश्न-2

1) निम्नलिखित दिए गए स्थानों में से उस स्थान की पहचान कीजिए जिसको अलाउद्दीन खलजी ने दिल्ली का सुल्तान बनने पर प्रथम बार विजित किया:

   क) देवगिरी

   ख) मालवा

   ग) गुजरात

   घ) माबार

2) निम्नलिखित स्थानों में से किन-किन प्रदेशों को अलाउद्दीन खलजी द्वारा सल्तनत में मिला लिया गया था:

   क) वारंगल

   ख) सिवाना

   ग) देवगिरी

   घ) जालौर

3) दक्खन एवं सुदूर दक्षिण के प्रति अलाउद्दीन की नीति की व्याख्या कीजिए।

   .....

   .....

   .....

4) नीचे उल्लेखित नामों की सूची में से देवगिरी को सल्तनत के साथ अधिग्रहण करने के बाद किसको प्रथम गवर्नर बनाया गया था:

   क) राय रामचंद्र देव

   ख) मलिक काफूर

   ग) मुबारक खलजी

   घ) खुसरो खान

2.6 तुगलक शासन का प्रसार

तुगलक वंश दिल्ली में जिस समय सत्ता में आया (ग़ियासुद्दीन तुगलक ने 1320 में दिल्ली के सिंहासन को प्राप्त किया) उस समय सल्तनत राजनीतिक अस्थिरता से त्रस्त थी और नए शासक द्वारा तुरंत ध्यान दिए जाने की आवश्यकता थी। दूर-दराज के प्रांतों ने अपनी स्वतंत्रता की घोषणा कर दी थी। सल्तनत का प्रभावशाली नियंत्रण केवल केंद्रीय भू-भाग तक ही सिमट कर रह गया था। प्रशासनिक तंत्र पूर्णतः पंगु हो चुका था और खज़ाना खाली हो चुका था। यह स्वाभाविक ही था कि ग़ियासुद्दीन ने अपना ध्यान आर्थिक एवं प्रशासनिक स्थिति को सुधारने की ओर केंद्रित किया। लेकिन शीघ्र ही साम्राज्य के बाह्य प्रांतों में प्रतिष्ठा एवं प्रभुत्व को पुनर्स्थापित करने का प्रश्न पैदा हो गया।

2.6.1 दक्षिण भारत

दक्षिण में राजनीतिक स्थिति किसी भी तरह से संतोषजनक नहीं थी। अलाउद्दीन के प्रभुत्व को स्वीकारने और दक्षिण के शासकों द्वारा वफादारी का वचन नाममात्र के लिए ही था। देवगिरी और तेलंगाना के प्रांतों में शाही प्रभुत्व को पुनर्स्थापित करने के लिए नए सैनिक अभियानों की निश्चय ही आवश्यकता थी। जैसा कि आपने ऊपर पढ़ा कि देवगिरी को मुबारक खलजी द्वारा पहले ही सल्तनत के अधीन कर लिया गया था। लेकिन देवगिरी से दक्षिणेतर राज्यों ने सल्तनत सत्ता के बचे अवशेषों को भी उखाड़ फेंका था। इसलिए तेलंगाना क्षेत्र पर सुल्तान ग़ियासुद्दीन ने तत्काल अपना ध्यान केंद्रित किया।

1321 में उलुग खां (बाद में मुहम्मद तुगलक के नाम से जाना गया) ने एक विशाल सेना के साथ दक्षिण के लिए प्रस्थान किया। मार्ग में बिना किसी बड़ी बाधा के ही वह वारंगल पहुंच गया। दो सैनिक घेराबंदियों के बाद – जो प्रत्येक चार या पाँच माह चलीं – वहाँ का शासक राय रूद्र अंततः समर्पण करने के लिए तैयार हो गया। लेकिन इस बार विद्रोही को क्षमा करने का कोई अवसर नहीं दिया गया। किले पर अधिकार कर लिया गया, उसे लूटा गया और कुछ तोड़फोड़ की गई। राय को गिरफ्तार कर सुरक्षित रूप से दिल्ली लाया गया। वारंगल का अधिग्रहण कर उसको सल्तनत के प्रत्यक्ष प्रशासन के अधीन कर लिया गया।

इस नीति का अनुसरण करते हुए उलुग खां ने माबार को भी समर्पण करने के लिए बाध्य किया और यहाँ पर भी प्रत्यक्ष शाही प्रशासन स्थापित किया। इस प्रकार तेलंगाना के क्षेत्र को दिल्ली सल्तनत का एक भाग बना दिया गया और उसको कई प्रशासनिक इकाइयों में विभाजित कर दिया गया। स्थानीय योग्य लोगों को प्रशासन में पर्याप्त स्थान दिया गया और पराजित लोगों के विरुद्ध दमन की नीति को समाप्त कर उनको क्षमा कर दिया गया।

2.6.2 पूर्वी भारत

पूर्वी भारत में किए गए सैनिक अभियान दक्षिण में होने वाले युद्ध का परिणाम थे। शाही सेना के वारंगल पर आक्रमण के समय ओड़िशा में स्थित जाजनगर के शासक भानूदेव द्वितीय ने वारंगल नरेश राय रूद्र देव की सहायता की थी। अतः 1324 के मध्य उलुग खां ने वारंगल से प्रस्थान करते हुए जाजनगर पर भी आक्रमण किया। दोनों के मध्य घमासान युद्ध हुआ और अंततः विजय उलुग खां की हुई। उसने शत्रु के पड़ाव को खूब लूटा और बहुत अधिक धन एकत्रित किया। जाजनगर को जीतकर उसको सल्तनत का एक अंग बना दिया गया।

पूर्वी भारत में बंगाल प्रांत सदैव से ही विद्रोह का गढ़ रहा था। इस प्रांत के गवर्नर स्वयं को स्वतंत्र करने का कोई भी अवसर नहीं जाने देते थे। लखनौती राज्य के स्वतंत्र शासक फिरोज़ शाह की मृत्यु के बाद 1323-1324 में सिंहासन के लिए भाइयों के बीच युद्ध प्रारंभ हो गया। लखनौती के कुछ कुलीन सहायता के लिए ग़ियासुद्दीन के पास आए। ग़ियासुद्दीन ने सहायता करने का वचन दिया और स्वयं बंगाल की ओर प्रस्थान किया। तिरहुत पहुंचने पर सुल्तान वहाँ पर ठहर गया और उसने बहराम खां को अन्य अधिकारियों के साथ लखनौती भेजा। विरोधी सेनाओं में परस्पर संघर्ष लखनौती के समीप हुआ। सुल्तान की सेनाओं ने सरलता से बंगाल की सेनाओं को पराजित कर दिया और कुछ दूर तक उनका पीछा किया। नसीरुद्दीन के नेतृत्व में युद्धरत एक समूह को लखनौती में एक अधीनस्थ शासक के तौर पर नियुक्त किया गया।

मानचित्र 2.4: तुगलक शासकों के अधीन प्रसार

स्रोत: ई.एच.आई.-03: *भारत: 8वीं सदी से 15वीं सदी तक,* खंड 4, इकाई 15, पृ. 41

2.6.3 उत्तर-पश्चिम तथा उत्तर

अलाउद्दीन के मुल्तान अभियान से ही सुल्तान की पश्चिमी सीमाएँ स्थिर बनी रही थीं। बाद में सुल्तान दक्षिण एवं गुजरात के मामलों में ज्यादातर व्यस्त रहे। अंततः मुहम्मद तुगलक के सत्ता में आ जाने के बाद ही उत्तर-पश्चिम सीमा की ओर ध्यान केंद्रित किया जा सका। सिंहासनारूढ़ होने के तुरंत बाद मुहम्मद तुगलक ने कलानौर एवं पेशावर में सैनिक अभियान भेजे। संभवतः यह 1326-1327 में तरमाशिरीन खां के नेतृत्व में हुए मंगोल आक्रमणों का परिणाम था। इसलिए मुहम्मद तुगलक अपने इन अभियानों द्वारा भविष्य में मंगोलों के होने वाले आक्रमणों से उत्तर-पश्चिम सीमा को सुरक्षित करना चाहता था। सुल्तान कलानौर जाते समय स्वयं लाहौर में ठहरा लेकिन उसने अपनी सेना को कलानौर तथा पेशावर पर आक्रमण करने का आदेश दिया। इस कार्य को बिना किसी विशेष कठिनाई के पूरा कर लिया गया। सुल्तान ने इन नए विजित किए गए क्षेत्रों की प्रशासनिक व्यवस्था को दुरुस्त किया तत्पश्चात् वापस दिल्ली लौट आया।

लगभग 1332 में सुल्तान मुहम्मद तुगलक ने कराचील क्षेत्र को विजित करने की योजना बनाई। इस क्षेत्र की पहचान हिमाचल प्रदेश के कांगड़ा जिले में स्थित आधुनिक कुल्लू से की जाती है। यह उत्तर तथा उत्तर-पश्चिम सीमा की किलेबंदी करने की योजना का ही एक भाग था। इस उद्देश्य के लिए उसने खुसरो मलिक के नेतृत्व में एक विशाल सेना भेजी। सेना ने कराचील क्षेत्र के महत्वपूर्ण स्थान जिद्या पर अधिकार करने में सफलता प्राप्त की। सुल्तान का आदेश इस स्थान को विजित करने के पश्चात् वापस लौटने का था। लेकिन खुसरो मलिक ने अपने उत्साह में सुल्तान के आदेश को नहीं माना और वह तिब्बत की ओर आगे बढ़ गया। परंतु शीघ्र ही वर्षा प्रारंभ हो गई और सेना बीमारी और प्रकोपों का शिकार हो गई। यह विपत्ति इतनी भयंकर थी कि मात्र तीन जवान इस विपत्तिपूर्ण कहानी का विवरण देने के लिए जीवित वापस आ सके। कराचील अभियान में संसाधनों का काफी नुकसान हुआ और इससे सुल्तान मुहम्मद तुगलक की प्रभुसत्ता को भी काफी ठेस पहुंची।

कराचिल अभियान से कुछ समय पूर्व सुल्तान मुहम्मद तुगलक ने मध्य एशिया में स्थित खुरासान को अपने अधीन करने के लिए एक अति महत्वाकांक्षी योजना को प्रारंभ किया। इस उद्देश्य के लिए 370,000 सैनिकों की एक विशाल सेना को भर्ती किया गया और सिपाहियों को एक वर्ष के वेतन का भुगतान पहले ही कर दिया गया। सेना के लिए मूल्यवान हथियारों को खरीदने के लिए काफी बड़ी मात्रा में धन खर्च किया गया। परंतु अंततः इस योजना को यह कह कर छोड़ दिया गया कि वह अव्यावहारिक है। सेना को भी बर्खास्त कर दिया गया। इसके कारण न केवल गंभीर वित्तीय हानि हुई बल्कि सुल्तान की प्रभुसत्ता को भी काफी गहरा धक्का लगा और इसके फलस्वरूप कई विद्रोह भी हुए जो दिल्ली सल्तनत के लिए अत्यधिक हानिकारक साबित हुए।

बोध प्रश्न-3

1) दक्षिणी राज्यों का दिल्ली सल्तनत में सर्वप्रथम किसके शासन काल में अधिग्रहण किया गया?
   क) अलाउद्दीन खलजी
   ख) मुबारक खलजी
   ग) ग़ियासुद्दीन तुगलक
   घ) मुहम्मद तुगलक

2) मुहम्मद तुगलक ने निम्नलिखित में से कौन से सैनिक अभियान का परित्याग कर दिया था?
   क) वारंगल
   ख) कराचील
   ग) जाजनगर
   घ) खुरासान

3) कराचील अभियान एक त्रासदी साबित क्यों हुआ?

   .....

   .....

   .....

4) निम्नलिखित में से कौन सा प्रदेश 1335 में सल्तनत की पूर्वी सीमा को निर्धारित करता था?
   क) जाजनगर
   ख) पेशावर
   ग) कलानौर
   घ) मालवा

2.7 सारांश

तुर्की आक्रमण के समय भारत एक एकीकृत राजनीतिक इकाई न था, बल्कि अनेक राज्यों में विभाजित था और इन राज्यों पर स्वतंत्र रूप से राजाओं एवं स्वायत्त सरदारों द्वारा शासन किया जाता था। मुहम्मद गौरी ने इन राज्यों को अपने अधीन करने का प्रयास किया और इस प्रयास की अंतिम परिणति तराइन के मैदान में पृथ्वीराज चौहान की पराजय के रूप में हुई। इस घटना ने भारत में तुर्क शासन की नींव रखी। मुहम्मद गौरी के प्रस्थान करने के बाद उसका सेनापति कुतबुद्दीन ऐबक भारत में तुर्क शक्ति की स्थापना के कार्य में जुट गया। इस प्रक्रिया के दौरान उसने यल्दूज़, और उन मुइज़ी दासों का दमन किया, जिन्होंने भारत में मुइज़ी शासन पर अपना दावा पेश किया। लेकिन वह कुबाचा का दमन करने में असफल रहा। यह कार्य इल्तुतमिश के लिए छोड़ दिया गया। इल्तुतमिश ने ना केवल मुइज़ी साम्राज्य का प्रसार किया अपितु उसने 'चालीस के गुट' के नाम से प्रसिद्ध कुलीनों की मदद से प्रशासनिक तंत्र को संगठित एवं मजबूत बनाया। उसने कुछ सासानिद संस्थाओं जैसे *इक्ता* को लागू किया। इससे प्रशासन को केंद्रीकृत करने में सहायता मिली।

तुर्कों की सफलता का मुख्य कारण उनकी सर्वोच्च सैन्य तकनीक थी। दूसरी ओर भारतीय सेना की यह विशेषता थी कि वह मुख्यतः 'सामंतीय सैन्य भर्ती' पर आधारित थी। तुर्कों की विजय मात्र एक राजवंश द्वारा दूसरे राजवंश का स्थानांतरण ही नहीं था बल्कि इस विजय ने भारतीय राजनीति, समाज एवं अर्थव्यवस्था पर दूरगामी प्रभाव डाले। इन पक्षों का विस्तृत रूप से अध्ययन आप बाद में इस पाठ्यक्रम के दौरान करेंगे।

इल्तुतमिश की 1236 में मृत्यु के पश्चात्, आधी शताब्दी तक, दिल्ली के सुल्तानों के सभी प्रयास वित्तीय एवं प्रशासनिक सुधारों को मजबूती प्रदान कर प्रारंभिक क्षेत्रीय उपलब्धियों को सुदृढ़ करने की ओर थे। क्षेत्रीय प्रसार के दूसरे चरण का प्रारंभ 14वीं सदी के प्रारंभ में खलजियों के अधीन ही हुआ। अलाउद्दीन के प्रशासनिक एवं वित्तीय उपायों ने जहाँ सल्तनत के सुदृढ़ीकरण में मदद की वहीं दूसरी ओर सल्तनत के आधार को भी विस्तारित किया। नए क्षेत्रों का अधिग्रहण इस प्रकार वास्तविक स्वरूप को प्राप्त कर सका।

तब भी हम यह देख सकते हैं कि अलाउद्दीन सल्तनत के केंद्रीय स्थल से कुछ दूरी तक ही बढ़ा और उसने सीधे अधिग्रहण किए गए क्षेत्रों पर सुल्तान के प्रभावशाली नियंत्रण को स्थापित किया और इन क्षेत्रों को सल्तनत के प्रांत बना दिया गया। लेकिन दूर के प्रांतों पर दो कारणों से विजय प्राप्त की गई। प्रथम उद्देश्य धन प्राप्त करना था और दूसरे उन राज्यों को प्रत्यक्ष तौर पर सल्तनत के अधीन न करके उनको संरक्षित राज्य का दर्जा प्रदान करना था। यह उन राज्यों के लिए विशेष रूप से सत्य था जिनको दक्खन एवं सुदूर दक्षिण में विजित किया गया था।

लेकिन मुबारक खलजी द्वारा देवगिरी के मामले में इस नीति में परिवर्तन किया गया। इसी नीति का अनुसरण ग़ियासुद्दीन तुगलक ने वारंगल एवं माबार जैसे सुदूर दक्षिण में स्थित राज्यों के विषय में भी किया। इन राज्यों पर प्रभावकारी प्रशासन कायम करने के उद्देश्य से मुहम्मद तुगलक ने देवगिरी को सल्तनत की दूसरी प्रशासनिक राजधानी बनाया। लेकिन यह प्रयोग अल्पकालिक सिद्ध हुआ और इसकी असफलता का कारण सल्तनत के शासक एवं अन्य वर्गों की अनिच्छा का होना था। इन सबके बावजूद मुहम्मद तुगलक के शासनकाल में सल्तनत की सीमाएँ अपने चरमोत्कर्ष पर थीं, उत्तर-पश्चिम में पेशावर, दक्षिण में माबार, पश्चिम में गुजरात तथा पूर्व में ओडिशा में जाजनगर तक फैली हुई थीं। यह भाग्य की विडंबना ही है कि मुहम्मद तुगलक के शासन के अंतिम वर्षों में ही सल्तनत की सीमाएँ लगभग 1296 की सीमाओं की स्थिति तक सिकुड़ने लग गई थीं।

2.8 शब्दावली

बंदगान-ए शमसी तुर्कान-ए चिहिलगानी	इल्तुतमिश का तुर्की अधिकारी वर्ग (जो 'चालीस' के गुट के नाम से जाना जाता था)
रहट	पानी खींचने का वह यंत्र जिससे गहराई से पानी खींचा जा सकता है

चरखा रुई की कताई का एक यंत्र जिसमें छः तकलियाँ लगी होती थीं और जिसे हत्थे की सहायता से घुमाया जाता था

जौहर दुश्मन के हाथों सन्निकट हार की स्थिति में महिलाओं द्वारा अग्नि स्नान (self-immolation) करने की प्रथा

2.9 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न-1

1) देखें भाग 2.2
2) देखें भाग 2.2
3) देखें भाग 2.3
4) देखें भाग 2.4

बोध प्रश्न-2

1) ग) गुजरात
2) ख) सिवाना
3) देखें उप-भाग 2.5.3
4) ख) मलिक काफूर

बोध प्रश्न-3

1) ख) मुबारक खलजी
2) घ) खुरासान
3) देखें उप-भाग 2.6.3
4) क) जाजनगर

2.10 दिल्ली सुल्तानों का तिथिक्रम (1206-1526)

इलबरी

कुतबुद्दीन ऐबक	1206-1210
आरामशाह (केवल कुछ महीने)	1210
इल्तुतमिश	1210-1236
रज़िया	1236-1240
बहराम शाह	1240-1242
मसूद शाह	1242-1246
नसीरूद्दीन महमूद	1246-1266
ग़ियासुद्दीन बलबन	1266-1287
कैकूबाद	1287-1290

खलजी

जलालुद्दीन खलजी	1290-1296
अलाउद्दीन खलजी	1296-1316
कुतबुद्दीन मुबारक	1316-1320

तुगलक

ग़ियासुद्दीन तुगलक	1320-1325
मुहम्मद तुगलक	1325-1351
फिरोज़ तुगलक	1351-1388
तुगलक शाह II	1388-1390
नसीरूद्दीन मुहम्मद शाह	1390-1394
मुहम्मद शाह तुगलक	1394-1412*

*1412 से 1414 तक का काल आंतरिक संघर्षों का काल था।

सैय्यद

खिज़्र खां	1414-1421
मुबारक शाह	1421-1434
मुहम्मद शाह	1434-1443
अलाउद्दीन आलम शाह	1433-1451

लोदी

बहलोल लोदी	1451-1489
सिकन्दर लोदी	1489-1517
इब्राहिम लोदी	1517-1526

2.11 संदर्भ ग्रन्थ

हबीब, मुहम्मद एवं निजामी, के. ए., (संपादित) (1970) *कॉम्प्रीहैन्सिव हिस्ट्री ऑफ इंडिया,* भाग V, *दिल्ली सल्तनत ए डी 1206-1526* (दिल्लीः पीपल्स पब्लिशिंग हाउस).

हबीबुल्ला, ए.बी.एम., (1967) *द फाउंडेशन ऑफ मुस्लिम रूल इन इंडिया* (नई दिल्लीः सेंट्रल बुक डिपो).

हुसैन, आगा महदी, (1935) *तुगलक डायनेस्टी* (नई दिल्लीः एस्कृ चांद एंड कंपनी प्राइवेट लिमिटेड).

लाल, के. एस्कृ, (1980) *हिस्ट्री ऑफ द खलजीज़ AD 1290-1320* (नई दिल्लीः मुंशीराम मनोहरलाल पब्लिशर्स प्राइवेट लिमिटेड).

पांडे, अवध बिहारी, (1970) *अर्ली मिडिवल इंडिया* (इलाहाबादः सेंट्रल बुक डिपो).

2.12 शैक्षणिक वीडियो

एस्टेब्लिश्मेंट एंड कंसॉलिडेशन ऑफ दिल्ली सल्तनत। इग्नू एस ओ एस एस

https://www.youtube.com/watch?v=WCmtBgS1csM

टॉकिंग हिस्ट्री। 2। दिल्लीः द फ़ाउंडेशन ऑफ दिल्ली सल्तनत। राज्यसभा टी वी

https://www.youtube.com/watch?v=TJOsomraCaM

टॉकिंग हिस्ट्री। 4। दिल्लीः द एरा ऑफ अलाउद्दीन खलजी। राज्यसभा टी वी

https://www.youtube.com/watch?v=PrTs0B1qQ9s

टॉकिंग हिस्ट्री। 5। दिल्लीः द राइज़ ऑफ तुगलक डायनेस्टी। राज्यसभा टी वी

https://www.youtube.com/watch?v=SINeC0D2m-Q

टॉकिंग हिस्ट्री। 6। दिल्लीः द डिक्लाइन ऑफ तुगलक डायनेस्टी। राज्यसभा टी वी

https://www.youtube.com/watch?v=Vx6Tln48XA8

इकाई 3 संस्थागत विकासः सुल्तान, अमीर और *उलमा* *

इकाई की रूपरेखा

3.0 उद्देश्य

3.1 प्रस्तावना

3.2 दिल्ली सल्तनत और खिलाफत

3.3 सुल्तान

3.4 *तुर्कान-ए चिहिलगानी*

3.5 सल्तनत कालीन शासक वर्ग/कुलीनों की संरचना

3.5.1 इलबरी

3.5.2 खलजी

3.5.3 तुगलक

3.6 शासक वर्ग के मध्य राजस्व संसाधनों का वितरण

3.7 *अमीरों* तथा सुल्तानों के मध्य संघर्ष

3.8 *उलमा*

3.9 सारांश

3.10 शब्दावली

3.11 बोध प्रश्नों के उत्तर

3.12 संदर्भ ग्रंथ

3.13 शैक्षणिक वीडियो

3.0 उद्देश्य

इस इकाई में हम सल्तनत काल में विभिन्न संस्थानों के क्रमिक विकास, विशेषकर सुल्तान, *उमरा* और *उलमा* वर्ग के विकास का विश्लेषण निम्नलिखित तथ्यों को ध्यान में रखते हुए करेंगेः

- दिल्ली सल्तनत के खलीफा के साथ संपर्क को समझ सकेंगे,
- एक संस्था के रूप में सुल्तान को महत्व को जान सकेंगे,
- राजत्व की प्रकृति को समझ सकेंगे,
- सल्तनत के एकीकरण में *तुर्कान-ए चिहिलगानी* की भूमिका को समझ सकेंगे,
- शासक वर्ग के संघटन को जान सकेंगे,
- साम्राज्य के राजस्व संसाधनों पर शासक वर्ग के नियंत्रण को जान सकेंगे,
- सुल्तान तथा कुलीन वर्ग के मध्य संघर्ष को समझ सकेंगे, और
- सल्तनत राजनीति में *उलमा* की भूमिका का मूल्यांकन कर सकेंगे।

* डॉ. किरण दत्तार, जानकी देवी महाविद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली, प्रो. ए. जान कैसर, सेंटर ऑफ एडवांस्ड स्टडी इन हिस्ट्री, अलीगढ़ मुस्लिम यूनिवर्सिटी, अलीगढ़, प्रो. जिगर मोहम्मद, जम्मू विश्वविद्यालय, जम्मू और प्रो. आभा सिंह, सामाजिक विज्ञान विद्यापीठ, इंदिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय, नई दिल्ली। यह इकाई आंशिक रूप से हमारे पाठ्यक्रम ई.एच.आई.-03: *भारतः 8वीं सदी से 15वीं सदी तक*, खंड 5, इकाई 16, 17 और 18 से ली गई हैं।

3.1 प्रस्तावना

कुतबुद्दीन ऐबक ने 1206 में दिल्ली सल्तनत की आधारशिला रखी और मध्य एशिया से संबंध विच्छेद की प्रक्रिया आरंभ हुई। अपनी स्थापना के प्रारंभिक दौर और आगे के काल में भी सल्तनत की सर्वाधिक गंभीर समस्या जीते हुए प्रदेशों को संघटित करने की थी। इस इकाई में हमारा ध्यान सल्तनत के संगठन की प्रक्रिया पर केन्द्रित रहेगा। इस उद्देश्य की प्राप्ति में शासक वर्ग ने धुरी के रूप में कार्य किया। संसाधनों पर इस वर्ग का संयुक्त स्वामित्व था। तुर्क अपने साथ *इक्ता* व्यवस्था लाए (देखें **इकाई 4**), जिसने काफी हद तक सत्ता के केन्द्रीकरण में सहायता की। जब अधिक केंद्रीकरण की चेष्टा की गई तो *इक्ता* व्यवस्था और शासक वर्ग की संरचना में कई परिवर्तन आए। शासकों को बहुत सी आंतरिक समस्याओं और बाह्य संकटों का सामना करना पड़ा, विशेषकर, सुल्तान और अमीर वर्ग के बीच लगातार संघर्षों ने दिल्ली सल्तनत को पतन की ओर अग्रसर किया।

3.2 दिल्ली सल्तनत और खिलाफत

पैगंबर हज़रत मुहम्मद की मृत्यु के बाद खिलाफत नामक संस्था अस्तित्व में आई। हज़रत अबू बकर मुस्लिम समुदाय (*उम्मा या उम्मत*) के पहले प्रमुख (*खलीफा*) बने। प्रारंभ में सत्ता के उत्तराधिकारी के विषय में चुनाव के कुछ तत्व मौजूद थे। यह प्रथा अपने पूर्व की कबीलाई परंपरा से अधिक भिन्न नहीं थी।

इस्लामी व्यवस्था में खलीफा को धर्म का संरक्षण और राजनीतिक व्यवस्था को बनाए रखने वाला समझा जाता था। वह पूरे (मुस्लिम) समुदाय का प्रमुख था। पहले चार 'पवित्र खलीफाओं' (हज़रत अबू बकर, हज़रत उमर, हज़रत उस्मान और हज़रत अली) के काल के बाद बादशाही शासन (dynastic rule) की प्रथा प्रारंभ हुई जब 661 में उमय्यद वंश का शासन स्थापित हुआ जिसका केंद्र सीरिया में डमेस्कस में था। उमय्यद वंश के बाद 9वीं सदी के मध्य में अब्बासी वंश सत्ता में आया। इस वंश का केंद्र स्थल बगदाद में था। समय के साथ केंद्रीय सत्ता क्षीण हो गई और खलीफा की केंद्रीकृत संस्था तीन प्रमुख सत्ता केंद्रों में बंट गई। स्पेन (उमय्यद वंश की एक शाखा के अधीन), मिस्र (फातिमा वंश के अधीन) और प्रचीनतम बगदाद में। इनमें से प्रत्येक मुसलमानों की निष्ठा प्राप्त करने का दावा करता था। भारत के उत्तर-पश्चिमी सीमा के पास कुछ छोटे वंशों ने अपनी स्वतंत्र सत्ता स्थापित कर ली थी। इनमें से एक का केंद्र ग़ज़ना था। यहाँ यह महत्वपूर्ण बात ध्यान में रखना आवश्यक है कि सिद्धांततः कोई मुसलमान बड़ा या छोटा 'स्वतंत्र' राज्य स्थापित नहीं कर सकता था। ऐसे किसी भी राज्य के लिए खलीफा की अनुमति लेना आवश्यक था, अन्यथा मुसलमानों की नज़र में ऐसे राज्य की वैधता संदेहास्पद हो जाती। परंतु खलीफा की यह अनुमति औपचारिकता से अधिक कुछ नहीं थी और इस औपचारिकता का पालन करना सुरक्षित था।

दिल्ली के सुल्तानों द्वारा खलीफा को मान्यता देना, *खिल्लत* (robes of honour) की प्राप्ति, प्रतिष्ठापन पत्र (letter of investiture) की प्राप्ति, सम्मानसूचक उपाधियों की प्राप्ति, खलीफा का नाम सिक्कों पर खुदवाना तथा शुक्रवार की नमाज़ के समय खलीफा के नाम से धर्मोपदेश (*खुतबा*) जारी करने के प्रतीकों के रूप में होता था। यह एक ऐसा कार्य था जो इस्लामी विश्व या व्यवस्था को स्वीकार करना या उससे संबंध बनाए रखने का प्रतीक था। परंतु वास्तविकता में यह केवल ऐसी स्थिति को स्वीकार करना था, जिसमें कोई शासक अपने आपको स्वयं सत्ता में स्थापित कर चुका था। दिल्ली के सुल्तानों ने खलीफा के पद की महत्ता के भ्रम को बनाए रखा। सैय्यद वंश (1414-1451) तथा लोदी वंश (1451-1526) के दौरान सिक्कों पर लेखन (*खुतबा* से संबंधित) एक परम्परा के रूप में जारी रहा। परंतु यह निष्ठा केवल नाममात्र की थी।

सल्तनत काल के समय बग़दाद में ख़लीफ़ा की अवस्था 'पतनोन्मुख' थी। *ख़लीफ़ा* की सत्ता नाममात्र की निष्ठा जताने का ज़रिया मात्र रह गई थी। तथापि, यह रूढ़िवादी मत बना रहा कि अंतिम सत्ता *ख़लीफ़ा* में निहित है। ख़लील बिन शाहीन अल-ज़हीरी का विचार था कि 'पूर्व या पश्चिम का कोई भी राजा तब तक सुल्तान की पदवी धारण नहीं कर सकता है, जब तक *ख़लीफ़ा* और उसके बीच इस हेतु कोई समझौता-पत्र मौजूद नहीं हो' (निज़ामी 2002: 130)। यही कारण था

कि दिल्ली के सुल्तान *ख़लीफ़ा* के *मंशूर* (स्वीकृति/मानपत्र) को इतनी श्रद्धा के साथ देखते थे 1229 में जब इल्तुतमिश के पास बग़दाद के ख़लीफ़ा अल-मुस्तंसिर का *मंशूर*, अभिषेक-पत्र के साथ, पहुँचा तो उन्होंने इसे बहुत सम्मान और जोश-ख़रोश के साथ ग्रहण किया। इसने इल्तुतमिश की संप्रभुता का गौरव बढ़ाया और इसे क़ानूनी मान्यता दी। इल्तुतमिश ने *ख़लीफ़ा* का नाम अपने सिक्कों पर अंकित किया। अल-मुस्तंसिर की मृत्यु के बाद मसूद शाह ने 1243 में उसकी जगह सिक्कों में नए *ख़लीफ़ा* अल-मुस्तासिम का नाम अंकित किया। 1258 में मंगोल ख़ान हलाकू ने ख़लीफ़ा की निर्मम हत्या कर दी। इससे एक रिक्तता आ गई और असाधारण स्थिति पैदा हो गई। इसका परिणाम यह हुआ कि *ख़लीफ़ा* अल-मुस्तासिम की मृत्यु के बाद भी उसका नाम सिक्कों में, कम से कम 1296 तक, अंकित किया जाता रहा। अलाउद्दीन, खुद को केवल *नासिर-ए अमीर-उल मोमिनिन यमीन-उल ख़िलाफ़त* (*ख़लीफ़ा* का दायाँ हाथ, *खलीफा* का सहायक) कहता था, यद्यपि अमीर खुसरो और ज़ियाउद्दीन बरनी ने उसे *नायब* या खुदा का ख़लीफ़ा कहा है। लेकिन ग़ियासुद्दीन तुग़लक़ ने पुनः पुरानी पदवी *नासिर-ए अमीर-उल* मोमिनिन का ही प्रयोग किया। मुहम्मद तुग़लक़, जो एक आज़ाद-ख़याल सुल्तान था, ने शुरुआत में अपने सिक्कों से *ख़लीफ़ा* का नाम हटा दिया। किंतु, 1344 में उसने अभिषेक-पत्र, *निशान* (standard) और *ख़िल्लत* लेकर आए ख़लीफ़ा के शाही दूत हाजी सैय्यद सरसरी का स्वागत किया। इसे स्वीकारते हुए सुल्तान ने, *ख़लीफ़ा अल-मुस्तकफ़ी-बिल्लाह* का नाम उत्कीर्ण किए सिक्के जारी किए। ख़लीफ़ा का नाम शुक्रवार और ईद की नमाज़ के खुतबे में भी शामिल किया गया। अल-मुस्तकफ़ी-बिल्लाह की मौत के बाद मुहम्मद बिन तुग़लक़ को *ख़लीफ़ा* अल-हाकिम द्वितीय से भी अभिषेक-पत्र और *ख़िल्लत* प्राप्त हई जिसे सुल्तान ने बड़ी विनम्रता के साथ ग्रहण किया था। फ़िरोज़ शाह को भी *ख़लीफ़ा* अल-मुस्तसिद बिल्लाह द्वारा 754 हिजरी/1353 सामान्य संवत में अभिषेक-पत्र प्राप्त हुआ। इस परंपरा को सैय्यद तथा लोदी सुल्तानों द्वारा भी जारी रखा गया। सैय्यद वंश के संस्थापक ख़िज़्र ख़ान को शाहरुख़ से अभिषेक-पत्र प्राप्त हुआ तथा उनका नाम *खुतबे* में भी पढ़ा गया। हालांकि, 1517 में उस्मानी तुर्कों ने अब्बासी ख़िलाफ़त को नष्ट कर दिया, इस प्रकार फिर एक बार रिक्तता हो गई।

वास्तव में खिलाफत (एक संस्था के रूप में) कमज़ोर हो चुकी थी। वैसे दूरी भी इतनी अधिक थी कि खलीफा दिल्ली सल्तनत में कोई हस्तक्षेप करने या भूमिका निभाने की स्थिति में नहीं था।

3.3 सुल्तान

प्रारंभिक इस्लामी व्यवस्था में सुल्तान के पद का कोई अस्तित्व नहीं था। खिलाफत की शक्ति के क्षीण होने के साथ सुल्तान एक शक्तिशाली शासक के रूप में अस्तित्व में आया। वह एक स्वतंत्र राज्य के सार्वभौमिक शासक के रूप में था।

दिल्ली सुल्तान जनहित के लिए नागरिक और राजनीतिक नियम बनाते थे। *खुतबा* और *सिक्के* प्रभुसत्ता के प्रतीक समझे जाते थे। *खुतबा* एक औपचारिक धर्मोपदेश है जो शुक्रवार के समय पढ़ा जाता है। इसमें सुल्तान का नाम समुदाय प्रमुख के रूप में लिया जाता था। सिक्कों को जारी करना भी राजसत्ता का अधिकार था। सिक्कों पर सुल्तान का नाम खुदा रहता था।

यद्यपि मुस्लिम संसार में क़ानूनी रूप से *ख़लीफ़ा* संप्रभु था, व्यवहार में सुल्तान के पास ही सर्वोच्च सत्ता होती थी तथा वह *ख़लीफ़ा* की सत्ता से लगभग पूर्ण रूप से स्वतंत्र होकर शासन करता था।

तथापि, सुल्तान की निर्बाध सत्ता पर समूहों के दबाव के रूप में कई बंधन भी थेः ***उलमा*** चाहते थे कि वह धर्म की व्यवस्था को बनाए रखे; ***उमरा*** (कुलीन) उससे राजनीतिक हितों के संरक्षक बनने की उम्मीद करते थे; *रैयत*/आमजन शांति, सुरक्षा और न्याय की उम्मीद करते थे। यद्यपि वह क़ानून (*शरीयत*) का सर्वोच्च व्याख्याता था, किंतु वह *इज्मा* (मुस्लिम समुदाय/न्यायविदों के मत) की अनदेखी नहीं कर सकता था। अलाउद्दीन ख़लजी पर अक्सर *शरा* के उल्लंघन का आरोप लगता है। शाहज़ादा के रूप में दक्खन अभियान से प्राप्त लूट के उपयोग के संदर्भ में, क़ाज़ी मुग़ीसुद्दीन और अलाउद्दीन के बीच बरनी द्वारा दर्ज किए गए विख्यात वार्तालाप में अलाउद्दीन पर *शरीयत* का अनुसरण न करने का आरोप लगाया गया है। अलाउद्दीन दृढ़ इच्छा शक्ति वाला सुल्तान था, उसने *उलमा* से अपने मतभेदों के संदर्भ में अपनी सत्ता का स्पष्ट इज़हार किया है। उसके लिए 'राज्य-सत्ता तथा प्रशासन के मुद्दे *शरीयत* के नियम और आदेशों से काफ़ी हद तक

स्वतंत्र थे' (निज़ामी 1982: 362)। आख़िरकार, मात्र 'राजनीतिक लाभ ने ही शासक की अभिवृत्ति का निर्धारण किया' (निज़ामी 1982: 118)। इसी प्रकार, बहुसंख्यक ग़ैर-मुस्लिमों पर शासन करते हुए किसी भी सुल्तान के लिए ग़ैर-मुस्लिमों की भावनाओं और हितों को अनदेखा करना काफ़ी मुश्किल था। मुग़ीसुद्दीन की आपत्ति पर अलाउद्दीन का ज़वाब बिलकुल स्पष्ट था:

> तुम कह सकते हो कि मेरे कृत्य *शरीयत* के ख़िलाफ़ हैं। पर, मैं ऐसे ही काम करता हूँ ... मैं भ्रष्ट अधिकारियों से शक्ति और ताकत के बल पर सार्वजनिक धन वापस माँगता हूँ, और जब तक कि आख़िरी *जीतल* वसूल नहीं हो जाता है, मैं उन्हें ज़ंजीरों और सलाखों में रखता हूँ। राजनीतिक अपराधियों को मैं ताउम्र क़ैद रखता हूँ. क्या तुम कहोगे कि यह सब *शरीयत* के ख़िलाफ़ है?... मैं वह हुक्म जारी करता हूँ जो मुझे राज्य के हित में प्रतीत होता है तथा उन परिस्थितियों में उपयुक्त मालूम होता है। मैं नहीं जानता कि *शरीयत* में इनकी इजाज़त है या नहीं (**निज़ामी 1982: 363-364**)।

इसी प्रकार, मुहम्मद तुग़लक़ की सोच अत्यंत मौलिक थी और वह किसी भी प्रकार के प्रभावों तथा दबावों से ऊपर था, उसने कभी भी धर्म को राजनीति से ऊपर नहीं रखा। *उलमा* तथा अभिजात्य तुर्की *उमरा* के व्यापक विरोध के बावजूद मुहम्मद बिन तुग़लक़ ने उच्च पदों के द्वार प्रतिभावानों के लिए खोल दिए, चाहे उनका जन्म किसी भी कुल में हुआ हो: उसने अज़ीज़ खुम्मार (शराब कशीद), फ़िरोज़ हज्जाम (नाई), लड्ढा बाग़बान (माली) को उच्च पदों पर नियुक्त किया। अज़ीज़ खुम्मार को मालवा का गवर्नर बनाया गया तो पीरा माली को *दीवान ए-विज़ारत* में नियुक्त किया गया।

दिल्ली के सुल्तानों की शक्ति की चर्चा करते हुए कुरैशी (1971) उचित ही कहते हैं, 'किसी एक व्यक्ति की क़ानूनी संप्रभुता एक मिथक है'। कोई भी शासक लोगों के मत और जन-प्रतिरोध की अवहेलना नहीं कर सकता था। रज़िया दिल्ली के सुल्तान के रूप में अपनी स्थिति को दिल्ली में प्राप्त लोकप्रिय समर्थन के बल पर ही सुरक्षित कर पाई थी। हसन निज़ामी और फ़ख़्र-ए मुदब्बिर ने भी मुस्लिम राजव्यवस्था में *शुरा* (परामर्श) के महत्व पर ज़ोर दिया है। व्यवस्था को प्रभावी ढंग से चलाने के लिए भी सुल्तान *उमरा* वर्ग के अबाध समर्थन पर निर्भर था। अक्सर प्रभावशाली *उलमा* और *उमरा* मिलकर किसी उम्मीदवार को चुनते और उसे सुल्तान घोषित कर देते: इल्तुतमिश को *सिपहसालार* अमीर अली इस्माइल के नेतृत्व में तुर्की *उमरा* वर्ग द्वारा गद्दी पर अधिकार करने हेतु आमंत्रित किया गया था, इसी प्रकार, अलाउद्दीन मसूद शाह, नसीरूद्दीन महमूद, कुतबुद्दीन मुबारकशाह, ग़ियासुद्दीन तुग़लक़ (1320-1325) ये सभी *उमरा*/कुलीन वर्ग की पसंद थे। 'बुद्धिमान बहलोल ज़रूरत पड़ने पर *उमरा* के पाँवों में पगड़ी रख उनसे विनम्रता से पेश आता था, अनुभवहीन इब्राहीम ने उनको अलग-थलग कर अपनी गद्दी गंवा दी' (कुरैशी 1971: 52-53)।

इस प्रकार, यद्यपि सुल्तान निरंकुश और सर्वशक्तिशाली था, व्यवहार में, अपने पद व प्रशासन के प्रभावी संचालन के लिए वह *उलमा, उमरा* और लोकमत की अनदेखी नहीं कर सकता था।

राजत्व की प्रकृति

युद्धों में विजयों के आधार पर उत्तर भारत में प्रारंभिक मुस्लिम तुर्की राज्य की स्थापना हुई। जीते हुए प्रदेशों में जहाँ तुर्की शासन स्थापित किया गया, स्थानीय जनसंख्या की तुलना में तुर्क संख्या में काफी कम थे। साथ ही उनके पास साधनों की भी कमी थी। इसलिए इन प्रदेशों के साधनों पर अधिकार करना उनके लिए अत्यावश्यक था। इसका (साधनों पर अधिकार करने की आवश्यकता) प्रभाव तुर्की राज्य की प्रकृति पर पड़ा।

सैद्धांतिक और औपचारिक रूप से दिल्ली सुल्तानों ने इस्लामी कानूनों (*शरियत*) की सर्वोच्चता को मान्यता दी और उसके खुलेआम उल्लंघन को रोकने का प्रयास किया। इस्लामी कानूनों के अतिरिक्त उन्होंने धर्म-निरपेक्ष अधिनियम (secular regulation) या (*ज़वाबित*) भी बनाए। कुछ विद्वानों के अनुसार तुर्की राज्य धर्म पर आधारित राज्य था, हालांकि व्यवहार में तुर्की राज्य उस कार्यसाधकता और अनिवार्यता की उपज था, जिसमें नवस्थापित राज्य की जरूरतें सर्वाधिक महत्वपूर्ण थीं। समकालीन इतिहासकार जियाउद्दीन बरनी '*जहांदारी*' (धर्मनिरपेक्ष) और '*दीनदारी*' (धार्मिक) के अंतर को रेखांकित करता है। साथ ही, बरनी कुछ धर्म-निरपेक्ष लक्षणों की अपरिहार्यता या आवश्यकता को भी आकस्मिक परिस्थितियों की पूर्ति के लिए स्वीकार करता है। इस प्रकार, नव-स्थापित राज्य ने बहुत-सी ऐसी नीतियों और प्रथाओं को जन्म दिया जो मूलभूत इस्लामी परम्परा

के अनुकूल नहीं थीं। उदाहरण के लिए, इल्तुतमिश के शासनकाल (1211-1236) में मुस्लिम धार्मिक वर्ग के एक कट्टर समुदाय (शफाई) ने सुल्तान से कहा कि वह इस्लामी कानून को सख्ती से लागू करे, विशेष कर हिन्दुओं से यह कहा जाए कि या तो वे इस्लाम धर्म को स्वीकार करें या मृत्यु। सुल्तान की ओर से उसके *वज़ीर* जुनैदी ने जवाब दिया कि यह विचार स्वीकार नहीं किया जा सकता क्योंकि मुसलमान खाने में नमक के बराबर (संख्या में कम) हैं। इतिहासकार बरनी सुल्तान अलाउद्दीन खलजी और उसके राज्य के एक धर्मशास्त्री काज़ी मुग़ीसुद्दीन के वार्तालाप का वर्णन करता है। यह वार्तालाप युद्ध में जीते गए माल के बँटवारे के संबंध में है। क़ाज़ी ने सुल्तान से कहा कि धार्मिक कानून (इस्लामी) के अनुसार सुल्तान युद्ध में जीते गए माल का अधिकांश हिस्सा अपने पास नहीं रख सकता। जवाब में सुल्तान ने इस बात पर ज़ोर दिया कि वह राज्य की आवश्यकता के अनुसार कार्य करेगा, जो उसकी दृष्टि में सर्वाधिक महत्वपूर्ण है। उपरोक्त उदाहरण यह दर्शाते हैं कि व्यवहार में तुर्की राज्य एक धर्म-आधारित या धर्म-केन्द्रित राज्य नहीं था। हालांकि शासक वर्ग इस्लाम धर्म का अनुयायी था, फिर भी राज्य की नीतियों का निर्धारण अपनी विशिष्ट आवश्यकताओं तथा परिस्थितियों के अनुसार होता था।

इस प्रकार, 'क़ानून, परम्परा और औचित्य ने ... सुल्तानों की राजनीतिक विश्वदृष्टि को आकार प्रदान किया और उनकी राजत्व की अवधारणा का स्वरूप निर्धारित किया। जहाँ तक वे स्वयं को ''ख़लीफ़ा का *नायब*'' समझते थे और बग़दाद से अभिषेक-पत्र प्राप्त पाने की इच्छा रखते थे, उनकी यह अभिवृत्ति उस युग की क़ानूनी ज़रूरतों से निर्धारित हुई थी' (निज़ामी 2002: 101)। सुल्तानों के विचार उनके *वसाया* (उपदेशों) में भली-भाँति स्पष्ट होते हैं और दिल्ली के सुल्तानों की *वसाया* में केवल बलबन की *वसाया* ही उपलब्ध है, जिसमें उसके पुत्रों महमूद और मुहम्मद तथा बाद में बुग़रा ख़ान को दिए गए निर्देश शामिल हैं। 'बलबन वस्तुतः एक आदर्श शासक था ... मज़बूत, निष्पक्ष और भय पैदा करने वाला। वह विरल राजनीतिक दृष्टि और ऊर्जा से भरपूर था, जिसने प्रशासन की अव्यवस्थित और अनिश्चित स्थिति को व्यवस्थित किया और सुल्तान की प्रतिष्ठा और सम्मान में वृद्धि की' (निज़ामी 2002: 104)। लेनपूल ने उचित ही कहा है, 'भारत में राजत्व की परिस्थितियों/शर्तों को बलबन से बेहतर कोई नहीं समझ सका है'। बलबन की *वसाया* 'न केवल मध्यकालीन राजनीतिक विचारधारा को अपनी सम्पूर्णता में प्रकट करती है, बल्कि उसके स्वयं के राजनीतिक व्यक्तित्व के आंतरिक संघर्षों को भी सामने लाती है ...' (निज़ामी 2002: 104)। बलबन सलाह देता है (निज़ामी 2002:105-109):

महमूद और मुहम्मद को सम्बोधित वसायाः

a) राजा के हृदय में ईश्वर का यश प्रतिबिम्बित होता है।

b) यदि राजा निम्न-कुलीन, अधम, अधार्मिक और बेईमान लोगों को प्रशासन के मामलों में हस्तक्षेप करने देता है तो वह न केवल ईश्वर के प्रति कृतघ्न होता है बल्कि क़यामत के दिन के नियमों के विपरीत ईश्वर के क्षेत्राधिकार में भी दख़ल देता है।

c) उसको अनिवार्य रूप से इस तरह व्यवहार करना चाहिए कि उसके शब्द, आदेश, कार्य, वैयक्तिक गुण और आचरण लोगों को *शरीयत* के नियमों के अनुरूप जीने में सक्षम बनाए।

d) शुद्ध और धार्मिक आचरण वाले, न्यायपूर्ण और ईश्वर से ख़ौफ़ खाने वाले लोगों को ही *क़ाज़ी*, *अमीरदाद*, अधिकारी, *मुहतसिब* और अन्य पदों पर नियुक्त किया जाना चाहिए, ताकि उनके माध्यम से *शरीयत* के नियम लागू किए जा सकें।

e) निजी तथा सार्वजनिक, दोनों रूपों में शाही प्रतिष्ठा को बनाए रखना चाहिए।

f) तुम्हें समझना चाहिए कि राजत्व ईश्वर का प्रतिनिधित्व है।

g) केवल कुलीन, सदाचारी, बुद्धिमान, और प्रतिभावान लोगों को ही अपने निकट आने देना चाहिए।

h) किसी भी परिस्थिति में अधम, अशिष्ट तथा बेईमान लोगों को अपने निकट एकत्र नहीं होने देना चाहिए।

i) अगर एक राजा उसी तरह रहता है जैसे अन्य आम-जन रहते हैं तथा लोगों को वही प्रदान करता है जो अन्य लोग भी प्रदान कर सकते हैं, तो राजा की संप्रभुता धूमिल पड़ जाती है। एक राजा को अन्य लोगों से भिन्न तरीक़े से जीना तथा व्यवहार करना चाहिए।

j) इनके बिना राजत्व सम्भव नहीं है – न्याय, अनुदान, शान, सेना, कोष, जनता का विश्वास तथा सुल्तान की सहायता व सेवा के लिए कुछ चुनिंदा और प्रतिष्ठित लोग। अगर न्याय न हो तो शासन में स्थिरता भी नहीं हो सकती है।

k) अपनी जनता, गवर्नरों, सेना और धर्मात्माओं से अच्छी तरह पेश आओ।

l) अपनी जनता के मामलों को तय करने या सुलझाने में उदारता से काम लो।

m) अपनी जनता की धूर्त जनों से रक्षा करो।

बुग़रा खान को संबोधित *वसाया*:

a) लखनौती के किसी भी शासक के लिए दिल्ली के सुल्तान के विरुद्ध विद्रोह करना उचित नहीं है।

b) *विलायत दारी* (गवर्नरशिप) तथा *इक्लीम दारी* (राजत्व) दो अलग-अलग चीज़ें हैं। अगर कोई *मुक्ती* ग़लती करता है तथा अपने कर्तव्य का उचित पालन नहीं करता है, तो राजा द्वारा उसे बर्खास्त कर दिया जाता है तथा समस्या वहीं समाप्त हो जाती है; वहीं दूसरी ओर, यदि कोई संप्रभु/अधिराज ग़लती करता है तो इससे प्रत्येक दिशा में अव्यवस्था और मतभेद हावी हो जाते हैं। लोग उपद्रवी बन जाते हैं, सरकार अपनी स्थिरता खो देती है, और सेना अधीर हो जाती है।

दिल्ली के सुल्तानों, ख़ासकर बलबन के राजत्व के विचार सीधे तौर पर सासानी ईरान से लिए गए थे। बलबन के राजत्व सिद्धांत की मुख्य विशेषताएँ इस प्रकार थीं:

a) उसका राजत्व का आदर्श दैवीय था। उसने राजा को ईश्वर का प्रतिनिधि (*नियाबत-ए ख़ुदाई*) घोषित किया। उसने राजा को धरती पर ईश्वर की छाया (*ज़िल अल-अल्लाह फ़िल अर्ज़*) बताया। जिसका तात्पर्य था कि उसकी सत्ता और शक्ति का स्रोत *उमरा* या जनता नहीं बल्कि ईश्वर में निहित था, इस तरह उसने स्वयं को तथा अपने कृत्यों को 'समीक्षा' से परे रख दिया।

b) वह संप्रभुता के बाह्य प्रदर्शन पर विश्वास रखता था। चूँकि वह आमजन और कुलीनों से ऊपर था, उसने स्वयं के तथा जनता के बीच एक दूरी बनाए रखी, यहाँ तक कि उसने सीधे आम जनता से बात करने से भी इंकार किया। इल्तुतमिश के अमीर मलिक इज़्ज़ुद्दीन सलारी और मलिक क़ुतबुद्दीन हसन ने भी इल्तुतमिश को 'शाही प्रतिष्ठा बनाए रखने' की सलाह दी थी। बरनी लिखता है कि उन्होंने इल्तुतमिश को समझाने की कोशिश की कि, 'सुल्तान के लिए लोगों के दिलों में भय और आतंक पैदा करना ज़रूरी है', और क्योंकि, 'एक व्यक्ति सुल्तान के कर्तव्यों का निर्वाह नहीं कर सकता, यदि वह प्रतिष्ठापूर्ण व्यवहार न करे' (निज़ामी 2002: 103)।

c) दरबार में वह सख्त शिष्टाचार बनाए रखता था। वह दरबार में संपूर्ण 'राजचिह्नों' और शाही अलंकार-आभूषणों के साथ विराजमान होता था।

d) उच्च कुलीन और निम्न कुल के व्यक्ति के बीच विशेष भेद किया गया। किसी निम्न कुल के व्यक्ति के साथ बात करना भी प्रतिष्ठा से नीचे गिरना माना जाता था। बरनी लिखता है, बलबन कहा करता था, 'जब मेरी किसी निम्न कुल के व्यक्ति पर नज़र पड़ती है, मेरे शरीर की धमनी और शिराएँ ग़ुस्से से फड़कने लगती हैं'।

e) बलबन ने अपनी वंशावली को फ़िरदौसी के *शाहनामा* में उल्लिखित मिथकीय ईरानी नायक अफ़रासियाब से अनुरेखित किया। बलबन के बारे में यह भी कहा गया है कि उसने अपने *अमीरों* तथा अधिकारियों की वंशावलियों की छान-बीन वंशावली विशेषज्ञों से करवाई।

f) राजत्व के उच्च आदर्शों पर बल देने के लिए उसने ईरानी प्रथाओं और जीवन शैली का अनुकरण किया। सुल्तान बनने से पहले पैदा हुए उसके पुत्रों के नाम महमूद और मुहम्मद थे, किंतु सुल्तान बनने के बाद पैदा हुए पुत्रों के नाम उसने ईरानी राजाओं के नाम पर रखे: कैक़ुबाद, कैख़ुसरो और कैकौस।

g) ईरानी दरबारी रीति-रिवाज़ों तथा समारोहों को अपनाया गया। उसने *सिजदा* (झुकना) और *पैबोस* (पाँव-चूमना) पर ज़ोर दिया। दरबार में फ़ालतू बातें करने और मज़ाक़ करने की किसी की हिम्मत न थी। शाही समारोहों के दौरान दरबार को भव्य रूप से इस सीमा तक सजाया जाता था कि बरनी लिखता है, यह आमजन के बीच चर्चा का विषय बन जाता था। जब सुल्तान शाही जुलूस लेकर निकलता था तो सीस्तानी सिपाही नंगी तलवारें साथ लेकर उसके साथ चलते थे।

h) बलबन के राजत्व का एकमात्र राहत देने वाला पक्ष न्याय पर उसका बल था। उसने अपने अधिकारियों की गतिविधियों पर नज़र रखने के लिए *बरीद* (ख़ुफ़िया अधिकारियों) की नियुक्ति की। उसने बदायूँ के *इक्तादार*, क़रा बेग के पिता, मलिक बक़ बक़, और अवध के *इक्तादार*, मलिक क़िरा के पिता, हैबत ख़ान को अपने नौकरों को मारने के लिए कड़ी सजाएँ दीं.

बलबन द्वारा राजत्व के उच्च आदर्शों पर बल दिए जाने के प्रयासों पर टिप्पणी करते हुए के. ए. निज़ामी तर्क देते हैं कि इन बार-बार किए गए आग्रहों के पीछे असल में बलबन के '*एहसास-ए कमतरी* और अपराधबोध की अभिव्यक्ति' छुपी है। '*मलिकों* तथा *अमीरों*, जिनमें से अधिकांश उसके भूतपूर्व साथी और सहयोगी थे, के कान में बार-बार यह चीख़कर भरना कि राजत्व को देव-कृपा से ही प्राप्त किया जाता है, के द्वारा वह राजहत्या के कलंक को मिटाना चाहता था और उनके दिमाग़ में यह बैठना चाहता था कि ''ईश्वर की कृपा'' के कारण ही उसे राजगद्दी मिली है, न कि ज़हर

के प्याले या हत्यारे की कटार के कारण' (हबीब और निज़ामी 1982: 281)। संभवतः उसे कभी दासता से मुक्त ही नहीं किया गया था। 'लोगों के ऊपर शासन करने की इस मूलभूत अनर्हता को वह राज-सत्ता की दैवीय-कृपा के चतुराई से बनाए गए नक़ाब के पीछे छुपाने की कोशिश करता है' (हबीब और निज़ामी 1982: 281)। तथापि, 'शक्ति, प्राधिकार और प्रतिष्ठा के इस प्रदर्शन ने, जो उसके विचार में राजत्व के सिद्धांत से अभिन्न रूप से जुड़ा हुआ था, देश के सर्वाधिक दुर्दम्य तत्वों को झुकने पर मजबूर कर दिया और जनता के दिल में भय और आतंक पैदा किया' (हबीब और निज़ामी 1982: 285)।

उत्तराधिकार का प्रश्न

सल्तनत में किसी स्पष्ट और परिभाषित उत्तराधिकार के नियम का विकास नहीं हुआ। वंशानुगत या पैतृक उत्तराधिकार का सिद्धांत स्वीकार तो किया जाता था, परन्तु हमेशा उसका पालन नहीं किया जाता था। ऐसा भी कोई नियम नहीं था कि केवल बड़ा पुत्र ही सिंहासन का उत्तराधिकारी होगा। एक बार तो एक पुत्री को भी शासन दिया गया (उदाहरण के लिए – रज़िया)। परन्तु किसी भी हालत में कोई गुलाम तब तक शासक नहीं बन सकता था, जब तक कि वह अपना मुक्ति-पत्र या स्वतंत्रता न प्राप्त कर ले। वास्तव में, उत्तराधिकार जिस रूप में सल्तनत में प्रचलित था, उसके विषय में कहा जा सकता है कि 'जिसकी जितनी लंबी तलवार उसका उतना ही अधिक अधिकार'।

इस प्रकार, उत्तराधिकार के नियम के अभाव के कारण आंरभ से ही सत्ता पर अधिकार करने के लिए षड्यंत्र होने लगे। ऐबक की मृत्यु के बाद उसका पुत्र आराम शाह नहीं बल्कि ऐबक का दामाद और गुलाम इल्तुतमिश पदारूढ़ हुआ। इल्तुतमिश की मृत्यु (1236) के बाद भी लम्बे समय तक सत्ता का संघर्ष और संकट चलता रहा। अंततः 1266 में इल्तुतमिश के गुलाम बलबन ने, जो 'चालीस के दल' का सदस्य भी था, गद्दी पर अधिकार कर लिया। आप पहले ही पढ़ चुके हैं कि किस प्रकार बलबन ने राजत्व के विचार को एक नया रूप दिया और सुल्तान के पद की प्रतिष्ठा को पुनर्स्थापित करने का प्रयास किया। लेकिन बलबन की मृत्यु के बाद हुए सत्ता के संघर्ष ने एक बार फिर दिखा दिया कि उत्तराधिकार का फैसला 'तलवार' ही कर सकी। बलबन द्वारा नामांकित कैखुसरो की जगह कैकुबाद गद्दी पर बैठा दिया गया। बाद में खलजी *अमीरों* ने उसकी भी हत्या कर दी और खलजी वंश की नींव डाली। 1296 में अलाउद्दीन खलजी ने अपने चाचा जलालुद्दीन खलजी की हत्या करके सत्ता पर अधिकार कर लिया। अलाउद्दीन की मृत्यु के बाद भी गृह युद्ध और सत्ता छीनने का संघर्ष शुरू हो गया। *अमीरों* के विद्रोहों के कारण मुहम्मद तुगलक का शासन कमजोर हुआ। फिरोज़ तुगलक की मृत्यु के बाद सत्ता की स्पर्धा ने तुगलक वंश का अंत करके सैय्यद वंश (1414-1451) की स्थापना का मार्ग प्रशस्त किया।

लोदी वंश (1451-1526) की स्थापना के साथ एक नया तत्व – अफगान सामने आया। प्रभुसत्ता या राजतंत्र के विषय में अफगानों के विचार बहुत भिन्न थे। वे अपने ऊपर सुल्तान की सत्ता मानने को तो तैयार थे, परन्तु पूरे राज्य को अपने प्रजातीय दलों या कुल (फरमूली, सरवानी, नियाज़ी, आदि) में बांटना चाहते थे। सिकन्दर लोदी की मृत्यु के बाद (1517) साम्राज्य का बंटवारा इब्राहिम और जलाल के बीच हो गया। शाही विशेषाधिकार और सुविधाओं का भोग भी कुल के सदस्य समान रूप से बाँटते थे। उदाहरण के लिए, हाथी रखना सुल्तान का विशेषाधिकार था, परन्तु कहा जाता है कि आजम हुमायूँ सरवानी के पास लगभग 700 हाथी थे। इसके अतिरिक्त अफगान अपनी प्रजातीय सेना रखने के सिद्धांत में भी विश्वास करते थे। इसने आगे चलकर केन्द्रीय सरकार की सैनिक क्षमता को हानि पहुँचाई। सिकन्दर लोदी ने अफगान *अमीरों* पर नियंत्रण रखने की चेष्टा की, परन्तु अफगान विचारधारा का झुकाव विकेंद्रीकरण की ओर था। इस विचार ने अंत में राज्य में दरार पैदा कर दी।

बोध प्रश्न-1

1) ख़लीफ़ा के प्रति निष्ठा के संदर्भ में दिल्ली के सुल्तानों द्वारा किन प्रतीकों को ग्रहण किया गया?

.....

.....

.....

2) दिल्ली के सुल्तानों की शक्ति और स्थिति की चर्चा कीजिए।

.....

.....

.....

.....

3) बलबन के राजत्व के सिद्धांत की प्रमुख विशेषताएँ क्या थीं?

.....

.....

.....

.....

4) किस सीमा तक ज्येष्ठाधिकार के नियम की अनुपस्थिति ने सल्तनत के पतन में योगदान दिया?

.....

.....

.....

.....

3.4 *तुर्कान-ए चिहिलगानी*

तुर्कान-ए चिहिलगानी (बरनी उन्हें ***बंदगान तुर्क चिहिलगान*** कहता है; 'चालीस तुर्क गुलाम' अधिकारियों का समूह) का निर्माण इल्तुतमिश ने किया था, जिसने उनकी विशेषज्ञता, अदम्य साहस, बिना-शर्त निष्ठा तथा नवजात सल्तनत के एकीकरण में उनकी दक्षता का उपयोग किया। इन तुर्क दासों की परवरिश अत्यंत सावधानी से हुई थी। उन्हें इल्तुतमिश ने ऊँची क़ीमतों (प्रत्येक के लिए 50000 *जीतल* या अधिक) में ख़रीदा था। वे साहस तथा वीरता में दक्ष थे तथा क्षेत्र विशेष में शासन करने के उत्तम गुणों से सम्पन्न थे। मिन्हाज इस 'चालीस के समूह' में से पच्चीस का उल्लेख करता है। इनमें से कुछ को मिन्हाज ने मुइज़्ज़ी कहा है, जिससे पता चलता है कि इनमें से कुछ को इल्तुतमिश ने मुइज़्ज़ुद्दीन बिन साम से विरासत में पाया था, इन गुलाम अधिकारियों ने युद्ध-कला में सुप्रशिक्षित होने के साथ-साथ फ़ारसी, अरबी और *शरीयत* का शैक्षिक प्रशिक्षण भी प्राप्त किया था।

इनमें सबसे प्रमुख थेः मलिक इज़्ज़ुद्दीन कबीर ख़ान अयाज़। इल्तुतमिश ने उसे मलिक नसीरूद्दीन हुसैन के उत्तराधिकारियों से ख़रीदा था। रुक्नुद्दीन फ़िरोज़ ने उसे सुनाम का *इक्तादार* बनाया। रज़िया ने उसे लाहौर में नियुक्त किया तथा मुल्तान का *इक़्ता* भी प्रदान किया। मलिक इज़्ज़ुद्दीन सलारी को रज़िया ने बदायूँ का *इक्तादार* बनाया; मलिक सैफ़ुद्दीन कूची को हांसी का *इक्तादार* बनाया गया; मलिक अलाउद्दीन जानी के पास लाहौर की *इक्तादारी* थी; इख्तियारूद्दीन क़रक़श ख़ान ऐतिगिन एक क़ारा-खिता तुर्क था, इल्तुतमिश ने उसे मुल्तान का *इक्ता* दिया। उसने उसे अमीर ऐबक सुनामी से ख़रीदा था। रज़िया ने उसे बदायूँ का *इक्तादार* बनाया और बाद में *अमीर-ए हाजिब* बनाया; इख्तियारूद्दीन अल्तुनिया इल्तुतमिश की मौत के समय *सर चत्रदार* था। रज़िया ने उसे पहले बरन और बाद में तबरहिंद (भटिंडा) का *इक्तादार* बनाया।

लेकिन इल्तुतमिश ने कभी नहीं सोचा होगा कि ये तुर्क गुलाम जिन्हें उसने इतने प्यार और विश्वास के साथ पाला-पोसा था और सर्वोच्च पदों तक पहुँचाया था, वे एक दिन उसके वंशजों की सिलसिलेवार हत्याओं के लिए ज़िम्मेदार होंगे तथा एक दिन पूर्ण रूप से उसकी पुरुष संतानों का नामों-निशान मिटा देंगे। इल्तुतमिश की मृत्यु के बाद वे, विशेषतः, राज-निर्माताओं के रूप में उभरे तथा अंततः बलबन (जो 'चालीस के समूह' का एक सदस्य था) के सिंहासनारोहण के साथ उन्होंने राज-सत्ता हासिल कर ली। वे सब समान शक्ति धारण करते थे तथा एक ही मालिक (शम्सी) के गुलाम होने के कारण आपस में बराबरी का दावा करते थे और उन्होंने एक समूह (तुर्क-दासों के) का निर्माण किया था। बरनी ने उल्लेख किया है कि उनका दावा थाः 'मैं और कोई नहीं ... तुम क्या हो जो मैं नहीं हूँ और तुम क्या रहे हो जो मैं नहीं रहा हूँ'। बरनी शिकायत करता है, 'शम्सुद्दीन के उत्तराधिकारियों की अयोग्यता और शम्सी गुलामों के प्रभाव के कारण, सर्वोच्च सत्ता की कोई गरिमा नहीं बची थी ...; तथा शम्सुद्दीन का

दरबार, जिसकी ताक़त और स्थिरता में इतनी वृद्धि हो चुकी थी कि आबाद दुनिया के समस्त राजाओं के दरबार से अधिक थी, अब अपना समस्त वैभव खो चुका था' (हबीब और निज़ामी 1982: 233)।

जल्दी ही रज़िया को तुर्क दासों की बढ़ती हुई शक्ति का एहसास हो गया था, उसने एक समानांतर प्रतिरोधी *उमरा* वर्ग को सृजित कर उन्हें प्रति-संतुलित करने की कोशिश की। इसी कारण उसे **ताजिक** (स्वतंत्र जन्मे ग़ैर-तुर्क उच्च कुलीन, मुख्यतः ईरानी), तुर्क और तुर्क गुलाम अधिकारियों से सीधा संघर्ष करना पड़ा। निज़ामउल मुल्क जुनैदी ने, जो ताजिक था और इल्तुतमिश का *वज़ीर* रह चुका था, *तुर्कान-ए चिहिलगानी* (मलिक अलाउद्दीन जानी, मलिक सैफुद्दीन कूची, मलिक इज़्ज़ुद्दीन कबीर खान अयाज़ और मलिक इज़्ज़ुद्दीन मुहम्मद सलारी) के समर्थन से रज़िया के गद्दीनशीं होने का विरोध किया। उसी प्रकार रज़िया द्वारा एक अबीसीनियाई मलिक जमालुद्दीन याकूत की ***अमीर-ए आखुर*** के पद पर की गई नियुक्ति का विरोध तुर्क गुलाम अधिकारियों द्वारा किया गया। यह पद कभी भी एक गैर-तुर्क को नहीं दिया गया था। ऐतिग़िन और अल्तूनिया ने विद्रोह का झंडा उठाया, रज़िया को दरकिनार करते हुए उन्होंने मुइज़्ज़ुद्दीन बहरामशाह को गद्दी पर बिठाया। रज़िया ने पुनः सत्ता पाने के प्रयास में अल्तुनिया से विवाह किया, तथापि रज़िया और अल्तूनिया पराजित हुए और बाद में, 1240 में, उनकी हत्या कर दी गई ।

बहरामशाह के अधीन चालीस सरदारों का यह समूह *नायब-ए ममालकत* का पद सृजित करने में सक्षम हुआ जिसका प्रत्यक्ष उद्देश्य समानांतर सत्ता केंद्र स्थापित करना और राजशाही की शक्ति को कमजोर करना था। मलिक इख्तियारूद्दीन ऐतिग़िन को इस पद पर नियुक्त किया गया जबकि मुहज़्ज़बुद्दीन एवाज़ को *वज़ीर* का पद दिया गया। ऐतिग़िन ने न केवल मृत सुल्तान की तलाकशुदा बहन से विवाह किया बल्कि वह अपने दरवाजे पर हाथी और *नौबत* (नगाड़े) भी रखने लगा जो सुल्तान के विशेष अधिकार का प्रत्यक्ष उल्लंघन था। बहराम ने ऐतिग़िन और एवाज़ से मुक्ति पाने की कोशिश की और ऐतिग़िन की हत्या करवा दी, लेकिन एवाज़ भाग गया। फिर से *सद्र-उल मुल्क* सैय्यद ताजुद्दीन अली मुसावी ने बहराम के विरुद्ध एक षड्यंत्र रचा। हालांकि बहराम ने उसकी भी हत्या करवा दी, किंतु वह लंबे समय तक तुर्क गुलामों के षड्यंत्रों से बच नहीं सका और 1242 में उसकी हत्या कर दी गई। इस प्रकार, ये तुर्क गुलाम अधिकारी राज-निर्माताओं के रूप में उभरे। उन्होंने इल्तुतमिश के दो उत्तराधिकारियों की पहले ही हत्या कर दी थी। लेकिन वे प्रशासनिक शक्ति ग्रहण कर ही संतुष्ट थे तथा उनका इरादा शम्सी वंश का स्थान लेने का नहीं था। इसके अलावा उनका समूह के भीतर एक-दूसरे पर विश्वास था और उन्होंने एक-दूसरे की हत्या करने का प्रयास नहीं किया, ऐसी नीति, जिसको बाद में बलबन अपनाने वाला था।

अब, तुर्क गुलामों ने अलाउद्दीन मसूद शाह को गद्दी पर बैठाया, जो रुक्नुद्दीन फ़िरोज़ का बेटा था। ताजिक और तुर्क-गुलाम सरदारों ने पसंदीदा पदों को आपस में बांट लिया: मलिक कुतबुद्दीन हसन ग़ौरी को *नायब-ए ममालकत*; इख्तियारुद्दीन क़रकश को *अमीर-ए हाजिब* और मलिक इज़्ज़ुद्दीन बलबन किशलू खान को मंदौर और अजमेर का *इक़्ता* दिया गया; जबकि मलिक ताजुद्दीन संजर कुतलग़ को बदायूं दिया गया। बलबन किशलू ख़ान 'चालीस' सरदारों के समूह में सबसे महत्वाकांक्षी था। बलबन को तुर्किस्तान से बगदाद लाया गया था और ख्वाजा जमालुद्दीन बशीर ने उसे खरीदा था, जो उसे हिंदुस्तान लेकर आया था और उसे उसके सौतेले भाई सैफुद्दीन ऐबक (किश्ली ख़ान) और उसके पिता के भाई के लड़के नसीरूद्दीन शेर ख़ान के साथ इल्तुतमिश को बेच दिया गया। इल्तुतमिश के अधीन बलबन ने *खासदार* की भूमिका निभाई; बहराम शाह ने उसे *अमीर-ए आखुर* नियुक्त किया तथा रिवाड़ी का *इक़्ता* भी प्रदान किया, बाद में उसे हांसी की गवर्नरशिप भी हासिल हुई। मुहज़्ज़बुद्दीन की हत्या के बाद उसे *अमीर-ए हाजिब* का पद दिया गया। क्रमिक रूप से, बलबन ने *तुर्कान-ए चिहिलगानी* के सभी शक्तिशाली मलिकों को समाप्त करने का प्रयास किया। 1246 में मसूद शाह को तुर्क गुलामों ने बंदी बना लिया, जहां उसकी मृत्यु हो गई। इसके पश्चात् तुर्क गुलामों ने नसीरूद्दीन महमूद को गद्दी पर बैठाया, जो इल्तुतमिश का पोता था।

नसीरूद्दीन महमूद, जिसे सत्ता शम्सी मलिकों के कारण प्राप्त हुई थी, के पास उनकी आज्ञा पालन करने के अलावा कोई चारा न था। नसीरूद्दीन महमूद के इस विनम्र समर्पण पर टिप्पणी करते हुए इसामी लिखता है कि, 'वह अपने दिल से उनमें से प्रत्येक का शुभ सोचने वाला था ... वह उनकी पूर्व-अनुमति के बिना कोई भी मत प्रकट नहीं करता था, वह, उनके आदेश के बिना न अपने हाथ-पैरों को हिलाता था और न ही उनको बताए बिना पानी पीता था और न सोता था' (हबीब और

निज़ामी 1982: 257)। लेकिन, जब तक 'चालीस सरदारों का समूह' संगठित रहा नसीरुद्दीन महमूद को उनकी सनक से सामंजस्य बैठाने में कोई मुश्किल नहीं हुई। बलबन उनमें सबसे महत्वाकांक्षी और शक्तिशाली था, जो दिल्ली में नियुक्त था। नसीरूद्दीन महमूद वही करता जो बलबन उसे कहता था। नसीरूद्दीन महमूद ने 1249 में बलबन की लड़की से शादी की, जिसके बाद बलबन को *नायब-ए ममालकत* के पद पर नियुक्त किया गया और उलुग़ ख़ान (प्रमुख ख़ान) की पदवी भी दी गई। बलबन के छोटे भाई सैफुद्दीन ऐबक को किश्ली खान की उपाधि दी गई और उसे *अमीर-ए हाजिब* बनाया गया। 1250 तक साम्राज्य का एक बड़ा हिस्सा इस, बलबन के, ख़ानदान के हाथ में आ चुका थाः जिसके केंद्र में उलुग़ खान और किश्ली ख़ान थे; संपूर्ण सिंध उसके चचेरे भाई शेर ख़ान के पास था; तो लखनौती (बंगाल) यज़बेक तुग़रिल ख़ान के अधीन था, जो इल्तुतमिश का गुलाम था और जिसकी नियुक्ति बलबन द्वारा की गई थी। उलुग़ ख़ान के पास हांसी और शिवालिक के क्षेत्र भी थे; जबकि नागौर सैफुद्दीन किश्ली ख़ान के पास था।

इसने अन्य तुर्क गुलाम सरदारों के भीतर संदेह को जन्म दिया और उन्हें चेताया। इमादुद्दीन रेहान के उदय के साथ परिस्थितियों में बदलाव आया जो एक भारतीय मुसलमान था, जिसकी नियुक्ति 1252-53 में *वकील-ए दर* (न्यायिक मामलों में राजा का *नायब*) के पद पर की गई थी, इसने न केवल तुर्क गुलामों के बीच बल्कि ताजिक (स्वतंत्र जन्मे ग़ैर-तुर्क) सरदारों के बीच भी खलबली पैदा कर दी, जिन्होंने उसकी नियुक्ति और शक्ति के उभार का विरोध किया। बलबन उसे पराजित करने और बाद में, 1255 में, उसकी हत्या करने में सफल हुआ। इसके तुरंत बाद, आश्चर्यजनक रूप से उलुग़ ख़ान ने मलिक कुतबुद्दीन हसन ग़ौरी के सार्वजनिक क़त्ल का आदेश दिया। इससे पहले कभी भी ताजिकों के बीच आपस में और *तुर्कान-ए चिहिलगानी* के भीतर मतभेद इस सीमा तक नहीं बढ़े थे। 1257 में इस समूह के अन्य प्रमुख सदस्य इख्तियारउद्दीन युज़बेक तुग़रिल ख़ान की मृत्यु लखनौती में हो गई थी; जबकि बलबन ने 1258 में कुतलग़ ख़ान और अरसलन ख़ान को जहर दे दिया। इस तरह बलबन की 'चालीस' सरदारों के समूह के भीतर से प्रमुख विरोधियों को मिटा देने की नीति की शुरुआत हुई। बलबन के हित में उलुग़ ख़ान के सौतेले भाई किश्ली ख़ान की मृत्यु भी 1259 में हो गई। उसने अपने चचेरे भाई शेर ख़ान की भी ज़हर देकर हत्या कर दी। अंततः, उलुग़ ख़ान ने 1266 में नसीरूद्दीन महमूद की भी ज़हर देकर हत्या करने के बाद ग़ियासुद्दीन बलबन की उपाधि धारण कर राजमुकुट पर क़ब्ज़ा कर लिया। फरिश्ता यह वर्णन करता है कि, 'उसने शम्सुद्दीन इल्तुतमिश के कई वंशजों को मौत के घाट उतार दिया जिन्हें वह गद्दी के लिए अपना प्रतिद्वंद्वी समझता था'। बलबन के राज्यारोहण पर इसामी टिप्पणी करता है, 'जब उलुग़ ख़ान गद्दी पर बैठा, सभी सरदारों के दांत टूट गए, वह बिना किसी बहस और नुक्ताचीनी के उसके नियंत्रण में आ गए' (हबीब और निज़ामी 1982: 276)। इस प्रकार *तुर्कान-ए चिहिलगानी* के कई लोगों के मर जाने या मार दिए जाने के बाद बलबन को शायद ही इस समूह से किसी प्रतिरोध का सामना करना पड़ा। एकमात्र मज़बूत शम्सी मलिक जो बचा था, वह तुग़रिल बेग था, जो लखनौती में था, जिसकी बलबन ने अपने अधिकारियों की मदद से, अंततः, क्रूरतापूर्वक हत्या करवा दी और उसका समर्थन करने वालों को भी नहीं बख्शा।

इस तरह 'चालीस के समूह' ने, जिसे इल्तुतमिश ने स्थापित किया था और अपने नवजात साम्राज्य के एकीकरण हेतु जिसका प्रभावी ढंग से उपयोग किया था, ने न केवल शम्सी वंश के उत्तराधिकारियों को क्रूरतापूर्वक ख़त्म किया बल्कि संपूर्ण तुर्क *उमरा* वर्ग की कमर तोड़ दी। बलबन की 'ज़हर और कटार' की नीति घातक साबित हुई तथा उसने 'प्रतिभावान और मेधावी तुर्क अमीरों' को नष्ट कर दिया। 'निजी और खानदानी हितों की सुरक्षा के लिए लालायित बलबन ने तुर्क सत्ताधारी वर्ग के हितों की पूर्णतः अवहेलना की। उसने तुर्क *उमरा* के बीच प्रतिभा को इस निर्ममता से नष्ट किया कि जब ख़लजी उनके विरुद्ध गद्दी के प्रतिद्वंद्वी के रूप में मैदान में उठ खड़े हुए तो उन्होंने इन तुर्क सरदारों को आसानी से मात दे दी और उन पर विजय पाई। भारत में तुर्क सत्ता के पतन के लिए बलबन के उत्तरदायित्व से इनकार नहीं किया जा सकता है। उसके सुदृढ़ीकरण के कार्यक्रम ने, निःसंदेह, दिल्ली सल्तनत की निरंतरता को तो सुरक्षित किया और भविष्य में ख़लजियों के अधीन सल्तनत के विस्तार का रास्ता भी तैयार किया। किंतु तुर्क कुलीन वर्ग के प्रति उसके रवैए ने उसे पंगु बना दिया और उसके जीवनकाल को कम कर दिया' (हबीब और निज़ामी 1982: 286)।

बोध प्रश्न-2

1) इल्तुतमिश की मृत्यु के बाद *तुर्कान-ए चिहिलगानी* की राज-निर्माता के रूप में भूमिका की चर्चा कीजिए।

.....

.....

.....

2) *तुर्कान-ए चिहिलगानी* को नष्ट करने की बलबन की नीति का क्या प्रभाव हुआ?

.....

.....

.....

3.5 सल्तनत कालीन शासक वर्ग/कुलीनों की संरचना

(मुहम्मद) ग़ौरी के आक्रमण के समय उत्तर भारत छोट-छोटे अनेक ऐसे राज्यों में बंटा हुआ था, जिन पर *राय* और *राना* (स्थानीय राजा) शासन कर रहे थे। गांव के स्तर पर *खोत* और *मुकद्दम* (ग्राम प्रमुख) ग्रामीण अभिजात वर्ग थे। इन दोनों (*राय, राना* और *खोत, मुकद्दम*) के बीच *चौधरी* को माना जा सकता है, जो 100 गांवों का प्रमुख था।

कुल मिलाकर ग़ौरी के आक्रमण से पूर्व के शासक वर्ग उस वर्ग के रूप में परिभाषित किए जा सकते हैं, जो किसानों के अधिशेष (उनकी अपनी आवश्यकता से अधिक उत्पादन) पर अधिकार करता था। यह वर्ग किसानों के अधिशेष पर अधिकार करने के लिए भूमि पर अपने उच्च अधिकारों का दावा करते थे। सल्तनत के शासक वर्ग के संघटन का विश्लेषण करने में इससे जुड़े कई प्रश्न सामने आते हैं: पुराने शासक वर्ग को किस प्रकार हटाकर नए शासक वर्ग ने उसका स्थान ले लिया? इस वर्ग (नए शासक वर्ग) ने अधिशेष पर अधिकार करने के लिए कौन-से तरीके अपनाए? यह वर्ग पुराने हटाए गए शासक वर्ग से किस प्रकार भिन्न था?

लगभग सम्पूर्ण तेरहवीं शताब्दी में तुर्की सैन्य शक्ति ने उत्तर भारत पर नियंत्रण स्थापित किया। चौदहवीं शताब्दी के मध्य तक इसका विस्तार दक्खन में भी हो गया। अब एक विशाल प्रतिकूल क्षेत्र को शांत रखना और शासित करना था। इस कार्य के लिए एक शासक वर्ग को बनाए और जारी रखना था। प्रारंभिक तुर्की शासक वर्ग का राजनीतिक और वित्तीय सत्ता पर अधिकार का स्वरूप सुल्तान के साथ हिस्सेदारी का था। प्रारंभिक काल में दूर-दराज के नवविजित प्रांतों में भेजे गए अमीर लगभग पूर्ण स्वतंत्र थे। यह अमीर या कुलीन इन प्रदेशों में गवर्नर के रूप में भेजे जाते थे। यह *अमीर मुक्ती* या *वली* कहलाते थे और इनके अधीन प्रदेश को *इक्ता* कहा जाता था। समय के साथ, *मुक्तियों* को एक *इक्ते* से दूसरे *इक्ते* में स्थानांतरित करने की प्रथा प्रारंभ हुई (*इक्ता* पर विस्तृत चर्चा **इकाई 4** में की गई है)। संभवतः ग़ौरी के आक्रमण से पूर्व की राजनीतिक व्यवस्था जारी रही। इस व्यवस्था में *राय* और *रानाओं* से अंशदान या निश्चित राशि माँगी जाती थी तथा इनसे यह अपेक्षा की जाती थी कि पहले की भांति ही कर वसूल करें।

समकालीन इतिहासकार मिन्हाज-उस सिराज और बरनी के अनुसार सल्तनत की स्थापना के प्रारंभिक वर्षों में अधिकांश महत्वपूर्ण कुलीन और सुल्तान गुलाम परिवारों से संबंध रखते थे। प्रारंभिक काल के बहुत से तुर्की कुलीन और सुल्तानों ने अपने सैनिक अथवा राजनीतिक जीवन का आरंभ एक गुलाम के रूप में किया था। परन्तु सुल्तान बनने से पहले ही उन्होंने अपना दास्य मुक्ति पत्र (***खत-ए आजादी***) प्राप्त कर लिया था। ऐसा ही एक सुल्तान कुतबुद्दीन ऐबक था। सन् 1210 में उसकी मृत्यु के पश्चात् उसके एक कृपापात्र इल्तुतमिश ने दिल्ली पर अधिकार कर लिया और स्वयं को सुल्तान घोषित कर दिया। उसने गुलामों का अपना एक दल तैयार किया, जिन्हें शम्सी मलिक (शम्सी; शम्सुद्दीन इल्तुतमिश के नाम पर) कहा गया। बरनी इन्हें *तुर्कान-ए-चिहिलगानी* ('चालीस का दल') कहता है। इल्तुतमिश के अमीरों में बहुत से ताजिक या जन्म से स्वतंत्र (गुलाम के विपरीत) अधिकारी भी थे। मिन्हाज-उस सिराज के अनुसार,

नसीरूद्दीन महमूद के सिंहासनारोहण के समय (1246) शासक वर्ग में अप्रवासी (बाहर से आए हुए) स्वतंत्र अमीर भी थे। इल्तुतमिश की मृत्यु के बाद उत्तराधिकार के संघर्ष ने अमीरों के मतभेदों को उजागर किया।

शासक वर्ग में आपसी मतभेदों के बावजूद इनमें एक बुनियादी भाईचारा था, जिसकी झलक इस वर्ग से बाहर के व्यक्तियों के विरुद्ध शत्रुता में दिखाई देती है। रज़िया (1236-1240) ने जब एक हब्शी (एबीसीनियन) गुलाम जमालुद्दीन याकूत को *अमीर-ए आखुर* ('शाही घोड़ों के विभाग का प्रधान') का पद दिया तो अत्यधिक असंतोष उभरा। इसी प्रकार का विरोध इमादउद्दीन रेहान (सुल्तान नसीरूद्दीन महमूद के काल में) को एक महत्वपूर्ण पद देने का हुआ क्योंकि वह एक हिन्दू था, जो धर्म-परिवर्तन करके मुसलमान हो गया था। इस प्रकार, कुलीन होना या शासक वर्ग में स्थान कुछ विशेष वर्गों का विशेषाधिकार समझा जाता था। कभी-कभी यह कार्य 'कुलीन जन्म' के सिद्धांत के आधार पर किया जाता था, जैसा कि बलबन की नीतियों से दिखाई देता है। बरनी इन नीतियों का श्रेय बलबन को देता है।

अब आप समझ सकते हैं कि समान हितों के कारण कैसे प्रभावशाली गुट एकजुट रहते थे। शासक वर्ग की संरचना में प्रजाति और संभवतः धर्म भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाते थे। वास्तव में, शासक वर्ग एक एकाश्म या समरूपी संगठन नहीं था। इसके कई तरह के दल और गुट थे तथा प्रत्येक गुट ईर्ष्यापूर्वक अपने विशेष हितों की रक्षा करता था। ग़ौरी के आक्रमण के समय जो तुर्की अधिकारी या सेनानायक उसके साथ थे, वे प्रारंभिक तुर्की शासक वर्ग के केन्द्र में थे।

3.5.1 इलबरी

मुहम्मद गौरी द्वारा विजित भारतीय क्षेत्रों पर कुतबुद्दीन ऐबक ने अधिकार प्राप्त किया। इन क्षेत्रों पर उत्तराधिकार प्राप्त करने का ऐबक को उतना ही अधिकार था, जितना यल्दूज़ या कुबाचा जैसे अमीरों को था जिन्होंने क्रमशः ग़ज़ना और सिंध पर अपनी स्वतंत्रता और स्वायत्तता घोषित की। यही सल्तनत के प्रारंभिक इतिहास की विशेषता रहीं। स्वयं को सिंहासनारूढ़ करने और सत्ता में बने रहने के लिए सुल्तान को अमीरों के समर्थन की आवश्यकता रहती थी। उदाहरण के लिए, इल्तुतमिश ने दिल्ली के अमीरों की सहायता से सिंहासन पर अधिकार किया। सिंहासन प्राप्त करने के प्रयासों में अथवा सुल्तान बनाने में तुर्की अमीरों की भूमिका बहुत महत्वपूर्ण होती थी। बरनी के अनुसार, अनुभवी तुर्की अमीर एक दूसरे से कहते थे कि 'तुम क्या हो जो मैं नहीं हूँ और तुम क्या बनोगे जो मैं नहीं बन सकूँगा'।

प्रारंभिक तुर्की कुलीन वर्ग शासन करने के अपने विशिष्ट एकाधिकार पर बहुत अधिक बल देते थे। उनके इस एकाधिकार को जब अन्य सामाजिक दल चुनौती देते थे तो यह वर्ग नाराज हो जाता था और वे उसका विरोध करते थे।

इल्तुतमिश के शासक वर्ग में मुख्यतः तुर्की दास शामिल थे। इल्तुतमिश की मृत्यु के बाद उसके अमीरों के दल *तुर्कान-ए चिहिलगानी* ('चालीस का दल') के हाथ में काफी शक्ति आ गई। यह वर्ग काफी महत्वपूर्ण था। जब सुल्तानों ने अन्य दलों को सत्ता में भागीदार बनाने का प्रयास किया, तो इस गुट ने तीव्र विरोध किया। आप जानते ही हैं कि जब रज़िया ने एबीसीनिया के एक गुलाम याकूत को *अमीर-ए आखुर* का पद दिया तो तुर्की अमीरों ने विरोध किया। जब नसीरूद्दीन महमूद (1246-1266) ने इस गुट की शक्ति का दमन करने के लिए बलबन (जो 'चालीस के गुट' में था) को महत्वपूर्ण पद से हटाकर इमादउद्दीन रेहान, जो एक धर्म-परिवर्तित मुस्लिम था, को उसके स्थान पर बैठाया तो सफलता नहीं मिली। समकालीन इतिहासकार मिन्हाज 'शुद्ध नस्ल के तुर्कों' का पक्ष लेते हुए कहता है कि वह 'हिन्दुस्तान की प्रजाति की इमादउद्दीन रेहान का अपने ऊपर शासन करना कैसे सहन कर सकते थे'। तुर्की अमीर वर्ग के विरोध के सामने असमर्थ सुल्तान ने रेहान को हटाकर बलबन को पुनर्स्थापित कर दिया।

तुर्की दासों के अलावा, *उमरा* (कुलीन वर्ग) में स्वतंत्र जन्में ताजिकों का एक प्रमुख तथा शक्तिशाली गैर-तुर्क वर्ग भी शामिल था। इनमें सर्वाधिक प्रभावशाली निज़ामुल मुल्क जुनैदी था, जिसने इल्तुतमिश के *वज़ीर* के रूप में सेवा की थी। इल्तुतमिश के अन्य शक्तिशाली ताजिक अमीरों में मलिक कुतबुद्दीन हसन ग़ौरी तथा फख़्र-उल मुल्क इसामी (इसामी के दादा) थे। तुर्क तथा ताजिक

इल्तुतमिश के साम्राज्य की रीढ़ थे तथा साम्राज्य के एकीकरण में सहायक हुए।

जब बलबन स्वयं सुल्तान बना (1266-1286) तो उसने *तुर्कान-ए चिहिलगानी* की शक्ति का दमन करने के लिए कई कदम उठाए। वह स्वयं ऐसे अमीरों की सहायता से सत्ता में आया था, जो उसके प्रति वफादार थे। बरनी के अनुसार, बलबन ने अनेक वरिष्ठ तुर्की अमीरों की हत्या कराई। यह उन तुर्की अमीरों को, जो सुल्तान को चुनौती दे सकते थे, भयभीत करने का प्रयास था। बरनी के अनुसार, बलबन ने स्वयं सुल्तान नसीरूद्दीन को अपनी 'कठपुतली' (*नमूना*) बनाकर रखा था। इसलिए वह अग्रणी तुर्की अमीरों के प्रति सशंकित था (*तुर्कान-ए चिहिलगानी* पर विस्तृत वर्णन के लिए देखें **भाग 3.4**)।

3.5.2 खलजी

सन् 1290 में खलजी वंश ने इलबरी वंश को उखाड़ फेंका। खलजियों का सत्ता में आना समकालीन इतिहासकारों के लिए एक बिलकुल नई बात थी। बरनी कहता है कि खलजी तुर्कों से भिन्न एक अलग 'नस्ल' के थे। सी.ई. बॉसवर्थ जैसे आधुनिक इतिहासकार उन्हें तुर्क ही मानते हैं, परन्तु तेरहवीं शताब्दी में उन्हें कोई तुर्क नहीं मानता था इसलिए उनका सत्ता में आ जाना एक विलक्षण और नवीन घटना के रूप में देखा गया, क्योंकि वह अमीर और शासक वर्ग के महत्वपूर्ण अंग नहीं थे। अलाउद्दीन खलजी ने तुर्की *अमीरों* की शक्ति का अंत करने के लिए अपने कुलीन या अमीर वर्ग में नए लोगों को सम्मिलित किया। इनमें प्रमुख थे मंगोल (*नव* या नए मुस्लिम), भारतीय और अबीसीनियाई (मलिक काफूर अबीसीनियाई वर्ग का सुप्रसिद्ध उदाहरण है)। अमीर वर्ग की संरचना में विस्तार की यह प्रक्रिया तुगलक वंश के काल में भी जारी रही।

प्रसंगवश हम यहाँ बता दें कि अलाउद्दीन खजली और बलबन के काल में दिल्ली में *कोतवालियान* (*कोतवाल* का बहुवचन) नामक अमीरों का एक छोटा सा गुट था। वास्तव में यह एक परिवार का गुट था जिसका प्रमुख दिल्ली का *कोतवाल* फखरूद्दीन था। ऐसा प्रतीत होता है कि बलबन की मृत्यु के बाद के काल में इस गुट की भी एक राजनीतिक भूमिका थी।

3.5.3 तुगलक

मुहम्मद तुगलक के काल में भारतीय और अफगान अमीरों के प्रवेश के अतिरिक्त अमीर वर्ग में अभूतपूर्व विषमता आ गई। इसमें काफी संख्या में विदेशी तत्व, विशेषकर खुरासानी, सम्मिलित हो गए जिन्हें सुल्तान ***अइज्जा*** (प्रिय) कहता था। इनमें से बहुत से ***अमीर सादह*** ('एक सौ के नायक') के रूप में नियुक्त किए गए। बरनी इस बात के लिए शोक प्रकट करता है कि सुल्तान ने 'निम्न कुल में जन्मे' (*जवाहर-ए लुतराह*) व्यक्तियों को ऊँचे पद प्रदान कर दिए हैं। वह कहता है कि गाने-बजाने वाले, नाई और रसोइयों को उच्च पद दे दिए गए। वह नामों के साथ कुछ उदाहरण देता है जैसे पीरा माली को *दीवान-ए विज़ारत* दिया गया। धर्म (इस्लाम) में नए परिवर्तित अज़ीज़उद्दीन खम्मार (अर्क निकालने वाला या आसवक) और कवामुल मुल्क मक़बूल, तथा मलिक मख और मलिक शाहू लोदी अफगान जैसे अफगानों; और साई राज धार तथा भीरन राय जैसे हिन्दुओं को *इक्ता* और पद दिए गए।

फिरोज़ तुगलक के काल में कुलीनों की सामाजिक पृष्ठभूमि के विषय में कोई स्पष्ट संकेत नहीं मिलते। ऊपरी तौर पर सुल्तान और *अमीरों* के बीच अस्थिर शांति प्रतीत होती है।

अमीरों के लिए खान, मलिक और *अमीर* जैसे पदनामों का प्रयोग किया जाता था। अफगान कुलीनों के लिए बहुधा *खान* पदनाम प्रयोग किया जाता था, *अमीर* का तात्पर्य *नायक* से था; मलिक का उपयोग राजा, शासक या प्रधान के अर्थ में होता था। सम्मानसूचक उपाधियों के अतिरिक्त अमीरों को कुछ वैभव तथा सम्मान के प्रतीक चिह्न भी दिए जाते थे, जिन्हें *मरातिब* कहते थे और जो अमीरों के विशेषाधिकार के प्रतीक थे। जैसे – *खिल्लत* (सम्मान सूचक वस्त्र), सुल्तान द्वारा तलवार या कटार भेंट करना, शोभा यात्रा में घोड़े और हाथी प्रयोग करने का अधिकार, राजचिह्न-युक्त छतरी, राजचिह्न धारण करने और नगाड़ा तथा नक्कारा बजाने का अधिकार।

यह तथ्य विशेष ध्यान देने योग्य है कि प्रत्येक सुल्तान अमीरों का एक ऐसा गुट संगठित करने का प्रयास करता था, जो स्वयं उसके प्रति वफादार हों। इस नीति के द्वारा सुल्तान को पहले से मौजूद

उस अमीर वर्ग पर निर्भर रहने की आवश्यकता नहीं रहती थी जिसकी वफादारी संदेहास्पद होती थी। समकालीन इतिहासकारों के विवरणों में हमें इसीलिए अमीरों के संदर्भ कुतबी (कुतबुद्दीन ऐबक के), शम्सी (शम्सुद्दीन इल्तुतमिश के), बलबनी (बलबन के) और अलाई (अलाउद्दीन खलजी के) *अमीरों* के रूप में मिलते हैं। यहाँ यह स्पष्ट करना प्रासंगिक होगा कि चाहे सुल्तान शक्तिशाली हो या कमजोर, *अमीरों* का प्रत्येक गुट उसकी कृपा-दृष्टि प्राप्त करने का भरसक प्रयास करता था क्योंकि सभी विशेषाधिकार और शक्तियों का स्रोत सुल्तान ही था। अगर सुल्तान दृढ़ इच्छा-शक्ति का स्वामी होता था तो उसकी यह स्थिति उसकी सत्ता को मजबूत करने में बहुत सहायक सिद्ध होती थी।

दिल्ली सल्तनत के इस सामंती अधिकारी वर्ग में अफगान काफी संख्या में शामिल रहते थे। लोदी वंश (1451-1526) के सत्ता में आने से *अमीर* वर्ग में अफगानों की प्रधानता स्थापित हो गई।

बोध प्रश्न-3

1) इलबरी शासकों के काल में शासक वर्ग की संरचना का विश्लेषण कीजिए।

.....

.....

.....

2) खजली और तुगलक शासकों के समय में अमीर वर्ग के संघटन एवं संरचना में क्या परिवर्तन आए?

.....

.....

.....

3) निम्न कथनों के समक्ष सही (✓) या गलत (×) का चिह्न लगाइए:

क) तेरहवीं शताब्दी में तुर्की अमीरों को वेतन नकद धन के रूप में मिलता था। ( )

ख) मुहम्मद तुगलक ने अपने अमीर वर्ग में विभिन्न सामाजिक पृष्ठभूमि के व्यक्तियों को सम्मिलित किया। ( )

ग) बरनी खलजियों को तुर्क मानता है। ( )

3.6 शासक वर्ग के मध्य राजस्व संसाधनों का वितरण

सल्तनत की आय का प्रमुख साधन था, भूमिकर। जिस भूमि की आय सुल्तान के लिए सुरक्षित रहती थी, उसे *खालिसा* कहा जाता था। *इक्ता* वह भू-भाग था, जिसकी आय *अमीरों* को अनुदान में दी जाती थी। आप एक संस्था के रूप में *इक्ता*, इस्लामी विश्व में इसका आरंभिक इतिहास और भारत में इसके प्रयोग के विषय में **इकाई 4** में अध्ययन करेंगे। *मुक्ती* अथवा *इक्ता*-धारकों को अपने क्षेत्र से भू-राजस्व जमा करना होता था और वहाँ कानून व्यवस्था बनाए रखनी होती थी। साथ ही साथ, आवश्यकता पड़ने पर इन लोगों को सुल्तान के लिए सैनिक सहायता की व्यवस्था भी करनी होती थी।

यह राजस्व या भूमि अनुदान स्थानांतरणीय थे और वंशानुगत नहीं होते थे। वास्तव में, *इक्ता* व्यवस्था द्वारा ही सुल्तान अमीरों पर अपना नियंत्रण स्थापित करता था। *मुक्ती* अपने क्षेत्र के किसानों को भू-राजस्व वसूल करने के पश्चात् उसमें से स्वयं अपना और अपने सैनिकों का वेतन ले लेता था। अतिरिक्त या बचे हुए धन (*फवाज़िल*) को *दीवान-ए विज़ारत* में भेजना केंद्रीकरण का द्योतक था। *मुक्ती* को अपनी आय और व्यय का विवरण भी केन्द्रीय कोषागार को भेजना होता था। धोखधड़ी रोकने के लिए कठोर लेखा-परीक्षण किया जाता था।

अलाउद्दीन खलजी ने अपने अमीरों पर नियंत्रण रखने के लिए कई कदम उठाए। *बरीदों* (गुप्तचर अधिकारी) के नियमित विवरण (या रिपोर्ट) द्वारा सुल्तान को *अमीरों* की गतिविधियों की सूचना प्राप्त होती रहती थी। उनके आपसी मेल-मिलाप पर भी नज़र रखी जाती थी। *अमीरों* और उनके परिवारों

के बीच आपसी वैवाहिक संबंध स्थापित करने के लिए भी सुल्तान की अनुमति लेना आवश्यक था। राज्य के इन उपायों को बार-बार होने वाले विद्रोहों की पृष्ठभूमि में देखना होगा। अपने-अपने क्षेत्रों के संसाधनों का दुरुपयोग करके *मुक्ती* विद्रोह करते थे या सिंहासन पर अधिकार करने की चेष्टा करते थे। इसी कारण से *इक्तों* का स्थानांतरण भी युक्तिसंगत माना जा सकता है। मुहम्मद तुगलक के काल में (1325-1351) अमीरों को तो नकद वेतन के बदले में *इक्ता* दिया जाता था, परन्तु पूर्व व्यवस्था के विपरीत उनके सैनिकों के वेतन का विवरण कोषागार से नकद धन के रूप में किया जाता था। यह नई वित्तीय व्यवस्था और *इक्ता* अनुदानों पर बढ़ा हुआ नियंत्रण ही संभवतः सुल्तान और *अमीरों* के बीच संघर्ष का कारण बना क्योंकि इस नई व्यवस्था के कारण अमीरों को *इक्ता* से होने वाले अनेकों लाभों से हाथ धोना पड़ा। परन्तु फिरोज़ तुगलक के काल में राज्य की नीति में बदलाव आया और *इक्ता* पर केन्द्रीय नियंत्रण में ढील दी गई। यहाँ तक कि फिरोज़ ने *इक्ता*-धारकों की मृत्यु के बाद उनके पुत्रों और वंशजों को *इक्ता* देने की परम्परा आरंभ की। तुलनात्मक दृष्टि से फिरोज़ तुगलक के लम्बे शासन काल में बहुत कम विद्रोह हुए, परन्तु इसी काल में राज्य का विकेंद्रीकरण और बिखराव भी शुरू हुआ। लोदी वंश (1451-1526) के काल तक *इक्ता*-धारकों (इन्हें अब *वजहदार* कहा जाता था) का स्थानांतरण अथवा बदली करने की प्रथा समाप्त हो गई।

3.7 *अमीरों* तथा सुल्तानों के मध्य संघर्ष

सल्तनत काल का राजनैतिक इतिहास दर्शाता है कि सल्तनत का संगठन और ह्रास मुख्यतः ***अमीरों*** / कुलीनों (***उमरा***) की रचनात्मक और विनाशकारी गतिविधियों का परिणाम था। *अमीरों* की लगातार यह चेष्टा थी कि वे अधिकतम राजनीतिक एवं आर्थिक लाभ प्राप्त कर लें।

इलबरी वंश (1206-90) के दौरान संघर्ष के तीन प्रमुख मुद्दे थे – उत्तराधिकार, *अमीर* वर्ग का संघटन और सुल्तान तथा *अमीरों* के बीच आर्थिक एवं राजनीतिक शक्तियों का विभाजन। जब कुतबुद्दीन ऐबक सुल्तान बना तो प्रभावशाली *अमीरों* ने उसकी सत्ता को स्वीकार नहीं किया। इनमें प्रमुख थे कुबाचा (मुल्तान और उच्छ का गवर्नर), यल्दूज़ (ग़ज़नी का गवर्नर) तथा अली मर्दान (बंगाल का गवर्नर)। इल्तुतमिश को भी यह समस्या उत्तराधिकार में मिली। उसने कूटनीतिज्ञता और शक्ति के प्रयोग से इसका समाधान किया। बाद में इल्तुतमिश ने अमीरों को *तुर्कान-ए चिहिलगानी* ('चालीस का दल') नामक सामूहिक गुट में संगठित किया। यह गुट व्यक्तिगत रूप से उसके प्रति वफादार था। 'चालीस के दल' के अमीरों की प्रतिष्ठा और विशेषाधिकारों से ईर्ष्या रखना *अमीरों* के अन्य दलों के लिए स्वाभाविक ही था (देखें भाग **3.5**)।

परन्तु इसका अर्थ यह नहीं था कि 'चालीस के दल' में आंतरिक मतभेद और कलह नहीं थी। केवल एक बात पर इनके विचारों में पूरी एकता थी – इस विशिष्ट गुट में गैर-तुर्की *अमीरों* के प्रवेश को रोकना। 'चालीस का दल' लगातार यह कोशिश करता रहता था कि सुल्तान पर उसका प्रभाव बना रहे। सुल्तान भी इस दल को नाराज़ नहीं करना चाहता था, लेकिन सुल्तान अन्य दलों के *अमीरों* को उच्च पदों पर नियुक्त करने का अधिकार भी नहीं छोड़ना चाहता था। इस सबके बीच इल्तुतमिश ने एक अत्यन्त कौशलपूर्ण संतुलन बनाए रखा, परन्तु उसकी मृत्यु के बाद यह संतुलन समाप्त हो गया। उदाहरण के लिए, इल्तुतमिश ने अपने जीवनकाल में ही अपनी पुत्री रज़िया को अपना उत्तराधिकारी घोषित कर दिया था। परन्तु उसकी मृत्यु के बाद कुछ *अमीरों* ने रज़िया को शासक स्वीकार नहीं किया, क्योंकि उसने 'चालीस के दल' के दबाव का मुकाबला करने के लिए गैर-तुर्की (अबीसीनियाई और भारतीय) *अमीरों* को संगठित करना शुरू किया।

इस दल ('चालीस का दल') के काफी *अमीरों* द्वारा रज़िया का विरोध करने का यही एक मुख्य कारण था। इन लोगों ने उसके भाई रूक्नुद्दीन को समर्थन दिया, क्योंकि वह अयोग्य और कमज़ोर था। उन्हें पूरी आशा थी कि वह उनकी शक्ति को नष्ट करने का प्रयास नहीं करेगा। नसीरूद्दीन महमूद (1246-66) के शासनकाल में भी यही संघर्ष चलता रहा। बलबन का हटाया जाना सबसे बड़ा शक्ति परीक्षण था। बलबन सुल्तान महमूद का *नायब* (deputy) था और 'चालीस का दल' का सदस्य था। सुल्तान ने उसे हटाकर उसके स्थान पर एक भारतीय मुसलमान इमादउद्दीन रेहान की नियुक्ति की। *अमीरों* के तीव्र विरोध के सामने सुल्तान को झुकना पड़ा। रेहान को हटाकर बलबन को पुनर्स्थापित किया गया।

बलबन के शासनकाल (1266-87) में *तुर्कान-ए चिहिलगानी* का प्रभाव कम हो गया। सुल्तान बनने से पहले बलबन स्वयं 'चालीस का दल' का सदस्य था। इसलिए वह *अमीरों* की विद्रोही प्रवृत्ति से भली-भाँति परिचित था। अतः बलबन ने उनमें से सर्वाधिक शक्तिशाली *अमीरों* को अपना निशाना बनाया और कई *अमीरों* की हत्या करा दी। उसने अपने रिश्ते के भाई को भी नहीं छोड़ा और उसे मरवा दिया। साथ ही उसने अपने प्रति वफादार *अमीरों* के एक गुट का गठन भी किया, जिन्हें 'बलबनी' कहा गया। 'चालीस का दल' के अनेकों अनुभवी *अमीरों* के हटाए जाने से राज्य उनकी सेवाओं से वंचित रह गया। 'बलबनी' गुट के अनुभवहीन *अमीर* इस कमी को पूरा नहीं कर पाए। इसके परिणामस्वरूप इलबरी वंश के शासन का अंत और खलजी वंश की स्थापना हुई।

अलाउद्दीन खलजी के शासन काल (1296-1316) में *अमीरों* के समूह की संरचना का विस्तार हुआ। अब *अमीरों* का कोई एक दल राज्य पर अपने एकाधिकार का दावा नहीं कर सकता था। अब नियुक्ति का मुख्य आधार स्वामीभक्ति और योग्यता था कोई विशेष प्रजाति या मत नहीं। साथ ही, वह *अमीरों* पर विभिन्न प्रकार से नियंत्रण भी रखता था (देखिए **भाग 3.5**)। इसके अतिरिक्त अलाउद्दीन द्वारा भू-राजस्व की दर को 50 प्रतिशत तक बढ़ाने से (देखिए **इकाई 9**) भी *अमीरों* को संतुष्टि हुई होगी क्योंकि *इक्तों* की आय बढ़ने से उनके वेतन भी बढ़ गए होंगे। सीमाओं के विस्तार के कारण संसाधनों में भी इतनी वृद्धि हो गई कि योग्यता के आधार पर नए व्यक्तियों को स्थान मिल सके। मलिक काफूर नामक अबीसीनियाई गुलाम का उदाहरण सुप्रसिद्ध है (वह गैर-तुर्की होते हुए भी सर्वाधिक महत्वपूर्ण *अमीर* बन गया)। परन्तु यह स्थिति बहुत लम्बे समय तक न चल सकी। अलाउद्दीन खलजी की मृत्यु के बाद *अमीरों* के बीच षड्यंत्र और संघर्ष खुलकर होने लगे तथा खलजी वंश के शासन का अंत हो गया।

जहाँ तक तुगलक़ वंश का प्रश्न है तो आप देख ही चुके हैं (देखें **इकाई 3.5**) कि मुहम्मद तुगलक ने किस प्रकार बार-बार प्रयत्न कर *अमीरों* को संघटित करने का प्रयास किया। लेकिन उन पर नियंत्रण रखने के उसके सभी प्रयत्न विफल हुए। खुरासानी *अमीरों*, जिन्हें वह '*अइज़्ज़ा*' (प्रिय) कहता था, ने भी उसे धोखा दिया। *अमीरों* द्वारा उत्पन्न की गई समस्याओं का अनुमान इस बात से लगाया जा सकता है कि उसके विरुद्ध लगभग 22 विद्रोह हुए और उसे अपना एक बड़ा क्षेत्र खोना पड़ा (दक्खन का यह क्षेत्र बाद में बहमनी राज्य के नाम से प्रसिद्ध हुआ)।

मुहम्मद तुगलक की मृत्यु के बाद समस्या नियंत्रण से बाहर हो गई। इन परिस्थितियों में फिरोज़ तुगलक से *अमीरों* के प्रति सख्ती बरतने की अपेक्षा नहीं की जा सकती थी। उसके काल में *अमीरों* को बहुत सी सुविधाएँ दी गईं। *अमीर* अपने *इक्तों* को वंशानुगत बनाने में सफल हुए। सुल्तान की तृष्टिकरण की नीति *अमीरों* को प्रसन्न रख सकी, परन्तु आगे चलकर यह विनाशकारी सिद्ध हुई। सेना अत्यन्त अयोग्य और अक्षम हो गई, क्योंकि अलाउद्दीन खलजी द्वारा प्रारंभ की गई घोड़े दागने की प्रथा लगभग समाप्त कर दी गई थी। अतः फिरोज़ तुगलक के बाद उसके उत्तराधिकारी और बाद के शासकों के लिए दिल्ली सल्तनत के पतन के प्रवाह को रोकना असंभव था।

सैय्यद (1414-51) और लोदी वंश (1451-1526) के काल में स्थिति कुछ उत्साहवर्धक नहीं दिखाई देती है। सैय्यद तो संकट से निबटने की न तो इच्छा ही रखते थे और न ही वह इस योग्य थे। सिकन्दर लोदी ने आते हुए विनाश को रोकने का अंतिम प्रयास किया। लेकिन अफगानों के आंतरिक मतभेद और उनकी असीमित व्यक्तिगत महत्वाकांक्षाओं के पतन की प्रक्रिया को और तीव्र कर दिया। अंततः दिल्ली सल्तनत पर अंतिम प्रहार बाबर के हाथों हुआ।

3.8 *उलमा*

सल्तनत में ***उलमा*** अथवा धार्मिक वर्ग का महत्वपूर्ण स्थान था। महत्वपूर्ण वैधानिक और न्यायिक पदों पर नियुक्ति इसी वर्ग से की जाती थी। इनमें प्रमुख थेः *सद्र, शेख-उल इस्लाम, काज़ी, मुफ्ती, मुहतसिब, इमाम* तथा *खतीब*। *उलमा* को शासक वर्गों का ही एक अंग माना जा सकता है। इस वर्ग के रख-रखाव के लिए भी सुल्तान द्वारा कर मुक्त राजस्व भू-अनुदान दिए जाते थे। बहुधा यह अनुदान *अमीर* वर्ग द्वारा भी दिये जाते थे। वैचारिक अथवा सैद्धांतिक धरातल पर *उलमा* का महत्व काफी अधिक था, क्योंकि यह शासक वर्ग के पद और स्थिति की वैद्यता प्रमाणित करते थे। यह एक ऐसा प्रभाव डालते थे, जो केवल धार्मिक ही नहीं, बल्कि कई बार राजनीतिक भी होता था।

उलमा मुस्लिम समाज के सर्वाधिक विद्वतापूर्ण और सम्मानित वर्ग से सम्बंध रखते थे। उन्होंने मुख्यतः स्वयं को अध्यापन और विद्यार्जन के मार्ग में समर्पित किया था। वे धर्म तथा उच्च नैतिक आचरण का अनुशीलन करने वाले व्यक्ति थे। यह माना जाता था कि वे पैग़म्बर के *इल्म-फ़राज़* (मुस्लिम क़ानून) के उत्तराधिकारी थे। यद्यपि वे विधिवत रूप से पुरोहित नहीं थे, लेकिन कोई भी धर्मशील व्यक्ति जो विद्वता तथा उच्च नैतिक आदर्श रखता हो, समाज द्वारा स्वीकारा जा सकता था और *आलिम* (बहुवचन *उलमा*) बन सकता था। दुनियावी मामलों के प्रति अपने रवैये के अनुसार *उलमा* को दो श्रेणी में बाँटा गया थाः *उलमा-ए अख़रात* – वे जो धर्म के अनुशीलन और अध्ययन का जीवन जीते तथा भौतिक व राजनीतिक लक्ष्यों से स्वयं को दूर रखते थे। इनमें निज़ामुद्दीन औलिया के गुरु, बदायूँ के अलाउद्दीन उसूली का सल्तनत काल में अत्यंत सम्मान था। मेरठ के मौलाना शिहाबुद्दीन, मौलाना अहमद और मौलाना कथली का निज़ामुद्दीन औलिया ने अपने समय के दानिशमंदों के रूप में उल्लेख किया है। बाबा फ़रीद गंज-ए शकर ने मौलाना नूर तुर्क की भी अत्यंत प्रशंसा की है।

दूसरी श्रेणी *उलमा-ए दुनिया* की थी, जो *उमरा* और राजाओं से बेझिझक घुलत-मिलते थे तथा सांसारिक दृष्टिकोण रखते थे। *उलमा-ए दुनिया* भौतिक लाभों की आकांक्षा रखते थे और अक्सर राज्य के धार्मिक प्रकृति के कई पदों पर आसीन होते थे। राज्य का सर्वोच्च धार्मिक अधिकारी *क़ाज़ी-ए ममालिक / सद्र-ए जहाँ / सद्र-उस सुदूर* था। *शेख़-उल इस्लाम* धार्मिक मामलों का सर्वोच्च पद था जो धार्मिक अनुदानों और धर्मात्माओं व निर्धन-जनों के रख-रखाव के लिए उत्तरदायी था। इल्तुतमिश ने सैय्यद नूरूद्दीन मुबारक ग़जनवी को *शेख़-उल इस्लाम* के पद पर नियुक्त किया था। शेख़ जलालुद्दीन बिस्तामी ने भी इल्तुतमिश के अधीन *शेख-उल इस्लाम* का पद ग्रहण किया था।

लगभग सभी क़स्बों में *क़ाज़ी* की नियुक्ति की जाती थी, जो विशेषरूप से *शरीयत* के अनुसार दीवानी मामलों को सुलझाने के लिए उत्तरदायी थे। बलबन ने अपने राज्य के *क़ाज़ियों* के बारे में उचित ही कहा हैः 'मेरे तीन *क़ाज़ी* हैं, उनमें से एक मुझसे भय नहीं खाता है लेकिन खुदा से डरता है; दूसरा, जो खुदा से नहीं लेकिन मुझसे डरता है; तीसरा, जो न तो मुझसे डरता है और न ही खुदा से ... फ़ख़्र नक़ीला मुझसे डरता है पर खुदा से नहीं डरता है; *क़ाज़ी-ए लश्कर* खुदा से डरता है पर मुझसे नहीं डरता है'; मिन्हाज न तो मुझसे डरता है और न ही खुदा से डरता है'।

ख़तीब और *इमाम* की नियुक्ति अक्सर मस्जिदों में की जाती थी और वह विलासितापूर्ण जीवन शैली अपनाते थे। वे अक्सर *तज़कीर* (प्रवचन सभाओं) का आयोजन करते थे। मिन्हाज-उस सिराज *क़ज़ा, ख़ित्तात, इमामत* और *इहतिसाब* के पदों पर रह चुका था। वह इतना श्रेष्ठ था कि निज़ामुद्दीन औलिया अपनी युवावस्था में प्रत्येक सोमवार को उसके प्रवचन सुनने जाया करते थे। कई बार उनसे संकट के क्षणों में भी प्रवचन देने का आग्रह किया जा सकता था, ताकि सेना व जनता को प्रेरित व प्रोत्साहित किया जा सके। जब मंगोलों ने आक्रमण किया तो बहराम शाह ने अपने क़स्र-ए सुफ़ैद में तज़कीर देने का आग्रह किया। यद्यपि इनमें से कोई भी पद वंशानुगत नहीं था, अक्सर कुछ निश्चित परिवार *क़ाज़ियों* के परिवारों के रूप में उभर कर आए।

कई *उलमा* मदरसों में अध्यापकों के रूप में नियुक्त हुए तथा उनमें से प्रतिष्ठित *आलिम* मदरसों में प्रधान *उस्ताद* (प्रिंसिपल) का पद ग्रहण करते थे। मिन्हाज ने दिल्ली के मुईज़ी और नसीरीयाई मदरसों में प्रिंसीपल का पद ग्रहण किया था। मौलाना ज़ैनुद्दीन को मुईज़ी मदरसा में अध्यापक नियुक्त किया गया था।

उलमा को दिल्ली सुल्तानों के दरबार में अत्यधिक सम्मान प्राप्त था। हसन निज़ामी ऐबक द्वारा *उलमा* के प्रति प्रदर्शित किए गए अत्यंत आदर का उल्लेख करता है। इल्तुतमिश के शासनकाल में इल्तुतमिश ने अपने सिंहासनारोहण के समय *उलमा* के प्रथम विरोध का सामना किया, जब *क़ाज़ी* वजहउद्दीन काशानी के नेतृत्व में *उलमा* ने उससे पूछा, क्या उसकी उचित रूप से दास-मुक्ति हुई है? यद्यपि इल्तुतमिश ने इस स्थिति का तर्कपूर्ण ढंग से समाधान किया और वे इस सीमा तक उसके समर्थक बन गए कि जब उसने रज़िया को अपना उत्तराधिकारी

सुनिश्चित किया तो *उलमा* ने उसके गद्दीनशीं होने का विरोध नहीं किया। बहराम शाह के शासनकाल में *उलमा* अत्यंत शक्तिशाली हो गए यहाँ तक कि कुछ *क़ाज़ी* शाही खानदान के साथ वैवाहिक संबंधों में बंधने लगे। *क़ाज़ी* नसीरूद्दीन ने मुइज्जुद्दीन बहरामशाह की बहन के साथ शादी की। *उलमा* अक्सर ही भ्रष्ट राजनीति में शामिल रहते थे और उन्होंने अपनी नैतिक और धार्मिक प्रतिष्ठा को खो दिया था।

बोध प्रश्न-4

1) *अमीर* वर्ग को नियंत्रित करने के लिए अलाउद्दीन खलजी ने क्या नीतियाँ अपनाईं?

.....

.....

.....

2) *अमीरों/* कुलीनों तथा दिल्ली सुल्तान के मध्य संघर्ष का आलोचनात्मक विश्लेषण कीजिए। क्या आप इस मत से सहमत हैं कि कुलीन वर्ग की महत्वाकांक्षाओं ने सल्तनत के पतन में योगदान दिया? व्याख्या कीजिए?

.....

.....

.....

3) सल्तनत राजनीति में *उलमा* ने क्या भूमिका अदा की?

.....

.....

.....

3.9 सारांश

दिल्ली सल्तनत वस्तुतः पूर्वी ख़िलाफ़त का हिस्सा थी। क़ानूनी रूप से सल्तनत का राजनीतिक प्रमुख ख़लीफ़ा था। तथापि, सभी व्यावहारिक उद्देश्यों में सुल्तान स्वतंत्र और सर्वशक्तिमान था। दिल्ली के सुल्तानों ने *ख़लीफ़ा* की सत्ता को स्वीकार किया तथा *ख़लीफ़ा* के शाही-दूतों, *मंशूर* और *ख़िल्लत* का आदरपूर्वक और शाना-शौकत के साथ स्वागत भी किया।

सल्तनत की स्थापना के साथ एक नया शासक वर्ग सत्ता में आया, जो संरचना और प्रकृति में अपने से पहले के सभी शासक वर्गों से भिन्न था प्रारंभ में इसने मुख्य रूप से अपना विदेशी (तुर्की) चरित्र बनाए रखा, परन्तु धीर-धीरे सम्मिश्रण की प्रक्रिया बढ़ती गई। सुल्तानों ने भी विभिन्न सामाजिक वर्गों से अमीरों को लेना प्रारंभ कर दिया। इस प्रकार अमीर वर्ग की प्रकृति और चरित्र विस्तृत होता गया। इसमें केवल तुर्क ही नहीं, बल्कि भारतीय मुसलमान, गैर-मुस्लिम और विदेशी (अबीसीनियाई) भी सम्मिलित हो गए।

सल्तनत के पतन का एक राजनीतिक कारण उत्तराधिकार के किसी स्थापित और सार्वभौमिक नियम का अभाव था। सभी इस्लामी राज्यतंत्रों के इतिहास में स्थिति यही थी। जब तक सुल्तान शक्तिशाली था और उसे अमीरों के कुछ वर्गों का समर्थन प्राप्त था, तो कुछ हद तक वंशीय शासन की स्थिरता बनाए रखने में सक्षम था। ऐसी परिस्थितियों में अमीर वर्गों में मतभेद और आंतरिक कलह दबे हुए रहते थे, परन्तु जरा सा अवसर मिलते ही उनके आंतरिक संघर्ष बहुधा हिसंक रूप में सामने आ जाते थे।

उलमा वर्ग को भी शासक वर्ग का एक अंग माना जा सकता है। इनके रख-रखाव के लिए भी राज्य द्वारा कर मुक्त राजस्व भू-अनुदान अथवा *वज़ीफ़ा* (नकद) मिलता था।

हालांकि सुल्तान ने *उलमा* की शक्ति को मान्यता दी तथा *शरिया* का अनुपालन करने की कोशिश की, लेकिन सल्तनत कालीन राज्य धर्मराज्य नहीं था। बल्कि दिल्ली के सुल्तानों, विशेषकर अलाउद्दीन ख़लजी और मुहम्मद बिन तुग़लक़ ने राजनीतिक परिस्थितियों के अनुरूप ही व्यवहार किया और प्रायः *शरियत* की सीमाएँ लांघीं।

3.10 शब्दावली

अइज़्ज़ा	'जो प्रिय हो' (मुहम्मद तुगलक अपने खुरासानी अमीरों की *अइज़्ज़ा* कहता था)
अमीर-ए आखुर	शाही-अस्तबल / घोड़ों का प्रमुख
अमीर-ए सादह	'शतपति', एक सौ का नायक
खत-ए आज़ादी	दाम मुक्ति-पत्र
ताजिक	एक प्रजाति 'स्वतंत्र पैदा हुए अमीर' (जो जन्म से गुलाम नहीं हों)
तुर्कान-ए चिहिलगानी	'चालीस का दल' (इल्तुतमिश के तुर्की *अमीरों* का समूह)
उलमा	धर्मशास्त्री
उमरा	कुलीन (*अमीर* का बहुवचन)
वजहदार	वेतनभोगी कर्मचारी / *इक्ता*-धारक

3.11 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न-1

1) भाग 3.2 देखें
2) भाग 3.3 देखें
3) भाग 3.3 देखें
4) भाग 3.3 देखें

बोध प्रश्न-2

1) भाग 3.4 देखें
2) भाग 3.4 देखें

बोध प्रश्न-3

1) उप-भाग 3.5.1 देखें
2) उप-भाग 3.5.2 तथा 3.5.3 देखें
3) a) × b) ✓ c) ×

बोध प्रश्न-4

1) भाग 3.6 देखें
2) भाग 3.7 देखें
3) भाग 3.8 देखें

3.12 संदर्भ ग्रंथ

हबीब, मोहम्मद और निज़ामी, के. ए., (संपा.) (1982) *कांप्रिहेंसिव हिस्ट्री ऑफ इंडिया*, भाग-V: *दिल्ली सल्तनत ए डी 1206-1526* (दिल्ली: पीपल्स पब्लिशिंग हाउस).

हबीबुल्लाह, ए.बी.एम., (1967) *द फ़ाउंडेशन ऑफ मुस्लिम रूल इन इंडिया* (नई दिल्ली: सेंट्रल बुक डिपो).

जैकसन, पीटर, (1999) *द दिल्ली सल्तनत: ए पॉलिटिकल हिस्ट्री* (कैम्ब्रिज: कैम्ब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस).

लाल, के.एस., (1980) *हिस्ट्री ऑफ द ख़लजीस* (नई दिल्लीः मुंशीराम मनोहरलाल पब्लिशर्स).

निगम, एस.बी.पी., (1968) *नोबिलिटी अंडर द सुल्तांस ऑफ देल्ही, ए डी 1206-1398* (नई दिल्लीः मुंशीराम मनोहरलाल).

पांडे, अवध बिहारी, (1970) *अर्ली मिडिवल इंडिया* (इलाहाबादः सेंट्रल बुक डिपो).

कुरैशी, आइ.एच., *द एडमिनिस्ट्रेशन ऑफ द सल्तनत देल्ही* (नई दिल्लीः ओरियंटल बुक्स रिप्रिंट कारपोरेशन).

त्रिपाठी, आर.पी., (1959) *सम आस्पेक्ट्स ऑफ मुस्लिम एडमिनिस्ट्रेशन* (इलाहाबादः सेंट्रल बुक डिपो).

3.13 शैक्षणिक वीडियो

पॉलिटिकल स्ट्रकचर ऑफ द दिल्ली सल्तनतः 13 एंड 14 सेंचुरीज
https://www.youtube.com/watch?v=2hscPJx6_KQ

पॉलिटिकल स्ट्रकचर ऑफ द दिल्ली सल्तनतः 13 एंड 14 सेंचुरीज
https://www.youtube.com/watch?v=-pc-36H7PFA

ignou
THE PEOPLE'S
UNIVERSITY

इकाई 4 प्रशासनिक संस्थाएँ*

इकाई की रूपरेखा

4.0 उद्देश्य

4.1 प्रस्तावना

4.2 दिल्ली सल्तनत के अधीन केंद्रीय प्रशासन

- 4.2.1 शाही राज-दरबार/राजपरिवार (The Royal Household)
- 4.2.2 *दीवान-ए विज़ारत*
- 4.2.3 *दीवान-ए अर्ज़*
- 4.2.4 *दीवान-ए रिसालत*
- 4.2.5 *दीवान-ए इंशा*
- 4.2.6 *बरीद* (खबरनवीस)

4.3 दिल्ली सल्तनत के अधीन प्रांतीय शासन

- 4.3.1 *इक्ता* प्रणाली
- 4.3.2 *मुक्ती/वली*
- 4.3.3 *साहिब-ए दीवान*
- 4.3.4 *शिक़*
- 4.3.5 *परगना* और ग्राम अधिकारी

4.4 नगर, किले और *थाना*

4.5 डाक व्यवस्था

4.6 दिल्ली सल्तनत कालीन शासन की प्रकृति

4.7 सारांश

4.8 शब्दावली

4.9 बोध प्रश्नों के उत्तर

4.10 संदर्भ ग्रंथ

4.11 शैक्षणिक वीडियो

4.0 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के पश्चात् आपः

- दिल्ली सल्तनत के अधीन राज्य की प्रशासनिक प्रकृति के बारे में जान सकेंगे,
- दिल्ली सल्तनत के अधीन केंद्रीय और प्रांतीय स्तर के विभिन्न विभागों की सूची बना सकेंगे और उसकी कार्यप्रणाली को समझ सकेंगे,
- दिल्ली सुल्तानों के अधीन *इक्ता* प्रणाली की आधारभूत विशेषताओं को जान सकेंगे,
- *इक्ता* प्रणाली में 14वीं शताब्दी में आए परिवर्तनों को जान सकेंगे,
- स्थानीय स्तर पर प्रमुख प्रशासनिक विभागों और उनके केन्द्र के साथ संबंधों का उल्लेख कर सकेंगे, और

* डॉ. किरण दत्तार, जानकी देवी महाविद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली; प्रो. शीरीन मूसवी, सेंटर ऑफ एडवांस्ड स्टडी इन हिस्ट्री, अलीगढ़ मुस्लिम यूनिवर्सिटी, अलीगढ़ और प्रो. आभा सिंह, सामाजिक विज्ञान विद्यापीठ, इंदिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय, नई दिल्ली। यह इकाई आंशिक रूप से हमारे पाठ्यक्रम ई.एच.आई.-03: *भारतः 8वीं सदी से 15वीं सदी तक*, खंड 5 इकाई 16 और खंड 6, इकाई 19 से ली गई है।

- दिल्ली सल्तनत के अधीन किस प्रकार विभिन्न अधिकारियों द्वारा नियंत्रण रखा जाता था, इसका मूल्यांकन कर सकेंगे।

4.1 प्रस्तावना

इकाई 2 में आपने पढ़ा कि कुतबुद्दीन ऐबक ने किस प्रकार 1206 में दिल्ली सल्तनत की आधारशिला रखी और मध्य एशिया से संबंध विच्छेद की प्रक्रिया आरंभ हुई। हम आपको दिल्ली सल्तनत की सीमाओं के विस्तार के विषय में भी बता चुके हैं। 13वीं शताब्दी की प्रारंभिक तुर्की विजयों ने अनेक छोटे स्थानीय राजाओं का अंत कर दिया। अपने राज्य के सुदृढ़ीकरण के लिए तुर्की शासकों ने अपने अमीरों को नगद वेतन के स्थान पर भू-राजस्व अनुदानों (*इक्ता*) का आवंटन किया। इस इकाई में हम आपको दिल्ली सल्तनत के केंद्रीय और प्रांतीय प्रशासन, *इक्ता*, व्यवस्था की कार्यप्रणाली तथा सल्तनत कालीन प्रशासन की प्रकृति के विषय में बताएंगे।

4.2 दिल्ली सल्तनत के अधीन केंद्रीय प्रशासन

सल्तनत के केंद्रीय प्रशासन का संचालन सुल्तान की अधीनता में विभिन्न अमीरों की देख-रेख में होता था।

4.2.1 शाही राज-दरबार/राजपरिवार (The Royal Household)

शाही राज-दरबार/राजपरिवार वह स्थान था जहाँ सुल्तान के द्वारा राज्य के समस्त कार्यों को संपन्न किया जाता था। सभी विचार-विमर्श तथा निर्णय यहाँ सुल्तान के द्वारा किए जाते थे। राज्य के कामकाज के कुशल निर्वाह के लिए दरबार में कई अधिकारी भी होते थे, जो अत्यधिक दक्षता के साथ अपने कर्तव्यों का निर्वाह करते थे।

वकील-ए दर

वकील-ए दर पर पूरे महल या राजपरिवार की देखभाल का उत्तरदायित्व था। सुल्तान के निजी कर्मचारियों के वेतन, आदि बांटना भी उसका कार्य था। शाही दरबार के सभी विभाग शाही रसोई, अस्तबल, शाही परिवार के बच्चों और रानियों के मामले सभी उसके अधीन थे। सुल्तान को भेजे जाने वाले सभी मामले पहले उसके पास भेजे जाते थे तथा समस्त जारी किए गए आदशों को आगे भेजने से पहले यहाँ प्रविष्ट और दर्ज किया जाता था। सही अर्थों में, वह सुल्तान के *नायब* की तरह था, उसका कर्तव्य था कि वह प्रशासन के समस्त मामले सुल्तान को सूचित करे। चूँकि उसे सुल्तान, रानियों, राजकुमारों और अन्य अधिकारियों से सीधे संबंध रखना पड़ता था, अतः उसे अत्यधिक कुशल, विनम्र और व्यवहार कुशल होना पड़ता था। *नायब-ए वकील-ए* दर उसके सहयोगी की तरह काम करता था।

अमीर-ए हाजिब

अमीर-ए हाजिब (मुख्य शाही प्रबंधक), जिसे *बारबेक* के तौर पर भी जाना जाता था, शाही दरबार के समारोहों और शिष्टाचारों का उत्तरादायित्व था। सुल्तान के समक्ष सभी आवेदन और याचिकाएँ *अमीर-ए हाजिब* द्वारा प्रस्तुत की जाती थीं। कई अन्य छोटे पदाधिकारी भी होते थे। वह दरबार में *अमीरों* के स्थान उनकी श्रेणी के मुताबिक तय करता था। उसकी सहायता के लिए कई *हाजिब* हुआ करते थे। कोई भी व्यक्ति सुल्तान से बिना उसके परिचय कराए नहीं मिल सकता था। सुल्तान को जारी की जाने वाली सभी याचिकाएं *अमीर-ए हाजिब* के माध्यम से भेजी जाती थीं। सुल्तान की अनुपस्थिति में वह राजधानी में उसके *नायब* की तरह काम करता था। कुछ *हाजिब* हमेशा सुल्तान की सेवा में हाजिर रहते थे, जिन्हें *खास हाजिब* कहा जाता था। सुल्तान को दिए जाने वाले उपहारों की सूची को व्यवस्थित करने वाला व्यक्ति *हाजिब-ए फ़स्ल* कहलाता था। *अमीर-ए हाजिब* का पद अत्यधिक महत्व का था, और सामान्यतः शाही खानदान से संबंध रखने वाले राजकुमारों को दिया जाता था या बहुत प्रतिष्ठित और विश्वसनीय *अमीरों* को दिया जाता था।

नक़ायब-उल नुक़्बा

नक़ायब-उल नुक़्बा सुल्तान के आदेशों को *अमीरों*, सिपाहियों और आम जनता के बीच उद्घोषित

करने का कार्य करता था। उसका स्थान सभा कक्ष की ओर जाने वाले दरवाजे के सामने होता था। उसका यह कर्तव्य था कि दरबार में आने वाले सभी लोगों का वह निरीक्षण करे।

सर-जानदार और सर-सिलहदार

सुल्तान के अंगरक्षकों को *जानदार* के नाम से जाना जाता था और इनका प्रधान *सर-जानदार* कहलाता था। उससे उम्मीद की जाती थी कि वह एक युवा और आकर्षक व्यक्तित्व वाला दक्ष सिपाही और सबसे अधिक एक निष्ठावान और विश्वसनीय *अमीर* हो। मुख्यतः *जानदारों* को विश्वसनीय और निष्ठावान गुलामों के बीच से चुना जाता था। बलबन ने सीस्तानी *अमीरों* को *जानदार* के रूप में भर्ती किया और साठ से सत्तर हजार *जीतल* सालाना जितने ऊँचे वेतन उन्हें प्रदान किए।

सिलहदार अन्य संपूर्ण रुप से सशस्त्र सिपाही होते थे और उनके मुखिया को *सर-सिलहदार* के नाम से जाना जाता था। वे नंगी तलवारों के साथ सुल्तान की बगल में खड़े होते थे, जब वह आमजन के बीच सभा करता या शाही जुलूस में शामिल होता। आमतौर पर दो *सर-सलहदार* होते थे, प्रत्येक विंग (wing) के लिए एक-एक।

इसके अलावा *उहदादार-ए दरहा* का यह कर्तव्य होता था कि वह रात में सभी दरवाजों की सुरक्षा और रक्षा को सुनिश्चित करे। उससे आशा की जाती थी कि वह स्वयं जाकर देखे कि सभी दरवाज़े भली-भाँति बंद किए गए हैं और प्रहरी अपनी जगहों पर तैनात हैं।

अमीर-ए मजलिस सुल्तान की सभी निजी सभाओं को सुरक्षित करने का प्रबंध करता था।

4.2.2 *दीवान-ए विज़ारत*

केंद्रीय प्रशासन में वित्त विभाग (***दीवान-ए विज़ारत***) के प्रमुख के रूप में *वज़ीर* (प्रधानमंत्री) का स्थान सर्वाधिक महत्वपूर्ण था। हालांकि वह चार प्रमुख विभागों में से एक विभाग का प्रमुख था, लेकिन वह अन्य विभागों का निरीक्षण करने का अधिकार रखता था। समस्त वित्तीय मामले उसके क्षेत्राधिकार में थे। *विज़ारत* विभाग के प्रमुख कार्य थेः

- राजस्व वसूल करना,
- व्यय पर नियंत्रण रखना,
- लेखा या हिसाब-किताब रखना,
- वेतन बांटना, तथा
- सुल्तान के आदेश पर *इक्ता* आवंटन की व्यवस्था करना।

वास्तव में लोक प्रशासन का कोई भी क्षेत्र उसके अधिकार क्षेत्र से बाहर नहीं था।

वज़ीर को सामान्यतः *सद्र-ए अली* कहा जाता था, बाद में वह *ख्वाजा-ए जहाँ* के नाम से जाना जाने लगा। *वज़ीर* दो तरह के होते थे, *वज़ीर-ए तफवीज़* और *वज़ीर-ए तनफीज़*; जहां इनमें से पहला असीमित शक्ति और अधिकार रखता था, वहीं दूसरा सुल्तान के मात्र एक अधीनस्थ की तरह कार्य करता था। वस्तुतः *वज़ीर* की शक्ति सुल्तान के व्यक्तित्व पर निर्भर करती थी। यदि सुल्तान कमजोर होता था तो अक्सर *वज़ीर* असीमित शक्ति का उपयोग करता था। जैसा कि हमने इल्तुतमिश की मृत्यु के बाद की घटनाओं में देखा है। इल्तुतमिश के *वज़ीर* निज़ाम-उल मुल्क जुनैदी ने उसकी मृत्यु के बाद विद्रोह करते हुए रज़िया को सुल्तान के रूप में स्वीकारने से इंकार कर दिया था। तब से लेकर, जब तक बलबन ने सिंहासन पर कब्जा नहीं कर लिया सभी शम्सी सुल्तान *वज़ीरों* के हाथ की कठपुतली मात्र थे। लेकिन, बलबन और अलाउद्दीन जैसे सुल्तानों के अधीन *वज़ीर* मात्र सुल्तान की इच्छा या आदेशों के अनुपालन करने वाले थे। इसी तरह हम देखते हैं कि फ़िरोज़ शाह तुग़लक़ के बाद के वर्षों में खान-ए जहाँ अत्यंत शक्तिशाली होकर उभरा।

इस पद पर उच्च चरित्र, विश्वसनीय और विद्वान व्यक्ति की नियुक्ति की जाती थी। षड्यंत्रों के समय उससे भली-भांति स्वयं को परिस्थितियों से अवगत रखने की उम्मीद की जाती थी और उसे दरबार की गतिविधियों व *अमीरों* के कार्यों के प्रति सचेत रहना होता था।

विज़ारत की सहायता के लिए अनेक अधिकारी होते थे। उसकी सहायता के लिए एक *नायब-वज़ीर* होता था। ***मुशरिफ़-ए मुमालिक*** महालेखाकार था, वहीं *मुस्तौफ़ी-ए मुमालिक* महालेखा-परीक्षक था। लेकिन, फ़िरोज़ शाह के अधीन *मुशरिफ़* और *मुस्तौफ़ी* शक्तियों को दो भागों में बांट दिया गया; जहाँ पहला आय का प्रभारी था; वहीं दूसरा व्यय के मामलों को देखता था। इन अधिकारियों की सुल्तान तक सीधी पहुंच थी। अल-कलकशंदी यह उल्लेख करता है कि इनमें से प्रत्येक पदाधिकारी के अधीन 300 लिपिक उन्हें सहायता देने के लिए नियुक्त थे। *नज़ीर, मुशरिफ़* के सहायक के रूप में कार्य करता था। जलालुद्दीन ख़लजी ने स्थानीय अधिकारियों के व्यय का निरीक्षण करने के लिए *वकूफ़* का एक नया पद सृजित किया। अलाउद्दीन खलजी के शासनकाल में *दीवान-ए मुस्तख़राज* नामक अधिकारी को राजस्व का बकाया (arrears) वसूल करने का कार्य भार सौंपा गया था। मुहम्मद बिन तुग़लक़ ने कृषि के लिए एक अलग *दीवान*, जिसे *दीवान-ए अमीर-ए कोही* कहा जाता था, नियुक्त किया। लेकिन, इस सुल्तान की मृत्यु के बाद यह पद नेपथ्य में चला गया।

नायब-उल मुल्क/ममालिकत

नायब-उल मुल्क अन्य अधिकारी था, जो सुल्तान के *नायब* की तरह काम करता था। हबीबुल्लाह (1927: 228) उसे एक 'असाधारण अधिकारी' कहते हैं। उसकी शक्ति राजप्रतिनिधि और *वज़ीर* से कहीं अधिक थी। *वज़ीर* मात्र एक नौकरशाह था, जबकि '*नायब* ' राजा की अनुपस्थिति में महत्वपूर्ण निर्णय ले सकता था और दिशा-निर्देश जारी कर सकता था। किंतु उसकी सत्ता और शक्ति सुल्तान के व्यक्तित्व पर निर्भर थी। कमज़ोर शम्सी सुल्तानों के अधीन वह सर्वशक्तिमान पदाधिकारी के रूप में उभरा। किंतु मजबूत शासकों के अधीन यह एक पदवी मात्र थी। बहराम को एतिगिन को अपना *नायब* नियुक्त करने की सहमति देने के लिए बाध्य किया गया। एतिगिन ने सुल्तान के विशेषाधिकारों, *नौबत* और हाथी रखने का भी प्रयोग किया। *नायब* के रूप में बलबन ने व्यावहारिक रूप से राजशाही की सभी शक्तियों का उपभोग किया था और नसीरूद्दीन महमूद को एक शक्तिहीन शासक के रूप में परिवर्तित कर दिया था। लेकिन, बलबन जिसने स्वयं *नायब* की अपार शक्तियों का उपभोग किया था, *नायब* के पद के इन ख़तरों के प्रति सचेत था अतः उसने *नायब* के पद को समाप्त कर दिया। उसका *नायब* कोतवाल फ़ख़रूद्दीन मात्र उसके प्रतिनिधि के तौर पर कार्य करता था और उसके पास कोई भी स्व-निर्णयगत शक्तियाँ नहीं थीं।

इसी प्रकार जब सुल्तान राजधानी शहर में नहीं होता था, उसके *नायब* के रूप में *नायब-ए ग़ैबत* को नियुक्त किया जाता था, जो सुल्तान की अनुपस्थिति में उसके प्रतिनिधि के रूप में उसके कार्य को करता था।

4.2.3 *दीवान-ए अर्ज़*

दीवान-ए अर्ज़ अथवा सैन्य विभाग का प्रमुख *आरिज़-ए मुमालिक* था। वह सैनिक और सेना संबंधी कार्यों के लिए उत्तरदायी था। वह *इक्ता*-धारकों के सैनिकों का निरीक्षण करता था। वह सुल्तान की सेना के रसद विभाग और परिवहन विभाग की देखभाल और नियंत्रण करता था। अलाउद्दीन खलजी के शासनकाल में सेना की भर्ती और योग्यता पर नियंत्रण रखने के लिए कुछ नए नियम बनाए गए। उसने प्रत्येक सैनिक का हुलिया (सैनिक के पहचान चिह्न, आदि) रखने पर बल दिया। साथ ही, यह भी आदेश दिया कि घोड़ों पर *दाग* (चिह्न) लगाया जाए ताकि हाजिरी के समय *अमीर* या *इक्ता*-धारक धोखा देकर बार-बार एक ही घोड़ा न पेश कर सकें, या खराब और निम्न कोटि के घोड़े न रखें। ऐसा प्रतीत होता है कि घोड़े दागने की प्रथा मुहम्मद तुगलक के समय तक सख्ती से जारी रही।

सैन्य संगठन

सैन्य अभियानों के दौरान *आरिज़* सभी व्यवस्थाओं का प्रभारी था और वह प्रत्येक सिपाही का व्यक्तिगत निरीक्षण करता था। सेना के प्रस्थान के दौरान प्रत्येक सिपाही का एक निर्धारित स्थान होता था; तथा *नक़ीबों* के पास इस व्यवस्था के अनुसार सिपाहियों को व्यवस्थित करने के लिए एक चार्ट होता था। सेना के लिए एक अलग न्यायिक व्यवस्था होती थी जिसे *क़ाज़ी-ए लश्कर* के नाम से जाना जाता था, जो सैन्य अदालत थी और सैन्य कानूनों को प्रशासित करती थी।

फ़िरोज़ शाह के नरम रुख ने सेना में अनुशासन को भंग कर दिया था और प्रायः वे सेना के मुआयने में हाज़िर नहीं होते थे।

दिल्ली में नियुक्त सेना को *हश्म-ए क़ल्ब* के नाम से जाना जाता था, जो *खासा खेल* (शाही गुलाम और अंगरक्षक) तथा *अफ़वाज-ए क़ल्ब* को मिलाकर बनती थी। प्रांतों में रहने वाली सेना को *हश्म-ए अतराफ़* के नाम से जाना जाता था। अलाउद्दीन के विषय में कहा जाता है कि उसके पास 4,75,000 घुड़सवार थे; वहीं मुहम्मद बिन तुग़लक़ के अधीन सैनिकों की संख्या बढ़कर नौ लाख तक हो गई थी।

अश्वारोही सेना तुर्की सफलता की कुंजी थी। घोड़े की *रकाब* और *नाल* की खोज ने, जिससे घोड़े पर सवार धनुर्धर तीव्र गति से तीर चला सकता था बिना नीचे गिरने के भय के, हिंदुस्तानी सेनाओं के ऊपर तुर्क सेनाओं को उच्चता प्रदान की (तुर्कों द्वारा लाई गई नई प्रौद्योगिकी के संबंध में विस्तृत विवरण के लिए देखें **इकाई 11**)।

घुड़सवार सेना *मुरत्तब* (जिसके पास अपना घोड़ा नहीं होता था), *सवार* (जिसके पास घोड़ा होता था) और *दो-अस्पा* (जिसके पास दो घोड़े होते थे) में बँटी थी। सल्तनत की सेनाओं में ग़ज़, तुर्क, मंगोल, यवन, रूसी, ईरानी, ताजिक, और हिंदू सिपाही होते थे। यह दिलचस्प तथ्य है कि सल्तनत सेना में बहुत से घुड़सवार सिपाही हिंदू थे। कुतबुद्दीन की सेना में बड़ी संख्या में हिंदू अश्वारोही सिपाही थे। बलबन की सेना में इतनी अधिक संख्या में हिंदू अश्वारोही सिपाही थे कि उनके लिए एक पृथक *अर्ज़, रावत अर्ज़* की स्थापना करनी पड़ी थी। सेना के लिए घोड़ों को बड़ी संख्या में अरब, तुर्किस्तान, और रूस से खरीदा जाता था; हालांकि हिंदुस्तान में भी घोड़ों की नस्लें तैयार की जाती थीं। शाही *पैगाहों* में, राजधानी के निकट और प्रांतों में बड़ी संख्या में घोड़ों की नस्लें तैयार की जाती थीं। सुल्तान फ़िरोज़ तुग़लक़ ने ऐसे कई घोड़ों की नस्ल तैयार करने के केंद्र, *पैगाह*, स्थापित किए थे। इसके कारण दिल्ली के सुल्तान तब भी घोड़ों की व्यवस्था कर सके, जब मंगोलों के उपद्रव ने उनकी आपूर्ति को बाधित कर दिया था। अलाउद्दीन ख़लजी के पास 70,000 घोड़े होने का उल्लेख मिलता है।

हाथियों का विभाग सल्तनत सेना की एक अन्य विशेषता थी। बलबन ने एक हाथी की तुलना 500 घुड़सवारों से की है। बंगाल इनकी आपूर्ति का मुख्य केंद्र था। बुग़रा खान को अपनी सलाह में बलबन उससे समय-समय पर दिल्ली के लिए हाथी भेजने की बात करता है। फ़िरोज़ ने हाथियों का इस्तेमाल नदी की धारा को रोककर सेना को नदी पार कराने में भी किया था। हाथियों के विभाग की देख-रेख के लिए एक पृथक *शहना-ए फ़ील* की स्थापना की गई थी।

दिल्ली के सुल्तानों ने एक बड़ी पैदल सेना की भी व्यवस्था की थी। पैदल सैनिक (*पायक*) अधिकांशतः हिंदू, गुलाम और निम्न तबकों से आते थे। उनकी नियुक्ति मुख्यतः अंगरक्षकों, द्वारपालों, इत्यादि के रूप में होती थी। अलाउद्दीन की ज़िंदगी उसके *पायक*-अंगरक्षक द्वारा बचाई गई, जब अकत खान ने उस पर हमला किया था। यह मलिक काफूर के विरुद्ध *पायकों* का ही षड्यंत्र था, जिसने कुतबुद्दीन मुबारक शाह को राजगद्दी दिलवाई थी। *पायकों* में से कुछ लोग धनुर्धर (*धानुक*) भी थे, कुछ *पायक, पायक बा-अस्प* (ऐसे पैदल सैनिक जिनके पास घोड़े थे) भी थे। सर्वोत्कृष्ट *पायक* बंगाल से आते थे।

घोड़े, हाथी और सिपाही उत्कृष्ट कवच के अतिरिक्त समुचित रूप से लोहे की चादर की पट्टियों, ढालों, ज़िरहबख्तर और शस्त्रों (कटार, तलवार और धनुष) से सुसज्जित होते थे। यहाँ तक कि हाथी की सूँड़ और दाँत भी हँसियानुमा लोहे के कवर (sythe) से सुसज्जित होते थे। युद्ध-प्रदर्शन के दौरान शत्रु सेना के सिपाहियों से अलग दिखने के लिए सिपाहियों द्वारा विशिष्ट यूनीफार्म धारण की जाती थी।

सल्तनत सेना के पास आग्नेय अस्त्र भी थे। दिल्ली के सुल्तान ने तैमूर के खिलाफ आतिशबाज़ी और रॉकेट का भी इस्तेमाल किया था। नाफ्था की जानकारी थी। *संग-ए मग़रीबी* या *मिदफ़ा* जैसे शब्दों के प्रयोग से थोड़ा बहुत यह संकेत मिलता है कि अलाउद्दीन की सेना के पास प्राथमिक 'तोपख़ाना' था। वे शिला-प्रक्षेपक या पत्थर फेंकने के यंत्रों का इस्तेमाल भी करते थे। लेकिन, सल्तनत ने इस दिशा में बहुत प्रगति नहीं की थी, ऐसा प्रतीत होता है कि गुजरात और दक्कन जैसे प्रांतीय राज्यों में सेना की यह शाखा समुचित ढंग से विकसित हुई थी (कुरशी 1971: 145)।

तलाया/यज़्की सेना की एक प्रमुख शाखा थी, जो हमेशा मार्गदर्शकों की तरह सेना के आगे-आगे चलती थी। उनका मुख्य कार्य शत्रु की सेना की ताज़ा जानकारी लाना होता था। लेकिन, वह प्रशिक्षित सिपाही थे और उन जासूसों से बहुत अलग थे जो विपक्षी सेना के शिविर में भेष बदलकर जाते थे और सूचना इकट्ठा करते थे।

ज़र्रादख़ाना तीर और पत्थरों-प्रक्षेपकों की आपूर्ति करता था और टूटे हुए हथियारों को बदलता था। इसी तरह *कूरख़ाना* घोड़ों का भंडार-गृह था और यह *कूरबेग* के अधीन था। सेना के अभियान के दौरान अलग से ख़बर नवीस नियुक्त होते थे। जिन्हें *साहिब-ए बरीद-ए लश्कर* कहा जाता था। उनका कर्तव्य था कि अभियान से संबंधित सभी खबरों को केंद्र को भेजे।

सेना के प्रयाण के दौरान सेना के प्रमुख भोजन आपूर्तिकर्ता अनाजों का व्यापार करने वाले *बंजारे* थे।

सल्तनत का सैन्य संगठन मंगोलों की दशमलव प्रणाली से प्रभावित था। निम्नलिखित पदसोपान क्रम तुर्की सेना में पाया जाता थाः सबसे निचले स्तर पर *सरखेल* (10 घुड़सवारों के ऊपर) होता था; एक *सिपहसालार* के अधीन 10 *सरखेल* होते थे; एक *अमीर* के अधीन 10 *सिपहसालार* और एक *मलिक* के अधीन 10 *अमीर* और एक *ख़ान* के अधीन 10 *मलिक*। इस तरह किसी *ख़ान* के अधीन 10,000 या उससे ज्यादा घुड़सवार होते थे। यह स्पष्ट करता है कि यह व्यवस्था अप्रत्यक्ष कमान पर आधारित थी। *मुफ़रद* स्वतंत्र सैनिक होते थे। शाही आदेशों को *नक़ीब* द्वारा पढ़ा जाता था, जबकि *चौशे* और *सहम-उल हश्म* का कार्य सिपाहियों को पंक्तिबंद्ध करना होता था।

अलाउद्दीन ख़लजी के अधीन एक सिपाही को 234 *तनका* प्राप्त होता था, जो अलाउद्दीन द्वारा कठोर मूल्य नियंत्रण के बाद तय किया गया था। मुहम्मद बिन तुग़लक़ के अधीन भोजन और कपड़ों के अतिरिक्त उसे 500 *तनका* मिलता था। *मसालिक-उल अबसार* दिल्ली के सुल्तानों के अधीन सेना के अधिकारियों के वेतन का विवरण प्रदान करती हैः *ख़ान* – एक लाख *तनका*; *मलिक* – 50 से 60 हज़ार *तनका*; *अमीर* – 30 से 40 हजार *तनका*; *सिपहसालार* – लगभग 20,000 *तनका*; निम्न श्रेणी अधिकारी – 1000 से 10000 *तनका* सालाना। ऐसे सिपाही जिन्हें नियमित तनख्वाह मिलती थी, वे *वजही* कहलाते थे; वहीं ऐसे सिपाही जिन्हें फुटकर व्यय के आधार पर भर्ती किया जाता था, उन्हें ग़ैर-*वजही* सिपाही कहा जाता था।

4.2.4 *दीवान-ए रिसालत*

दीवान-ए रिसालत नामक विभाग का प्रमुख *सद्र-उस सुदूर* था। वह सर्वोच्च धर्माधिकारी था। इस विभाग का कार्य धार्मिक कार्यकर्ताओं पर दृष्टि रखना और *काज़ियों* की नियुक्ति करना था। यही अधिकारी विभिन्न प्रकार के अनुदानों, जैसे ***वक्फ***, धार्मिक और शिक्षण संबंधित संस्थाओं के लिए, विद्वानों और निर्धनों को *वज़ीफ़ा* और *इदरार* को अनुमोदित करता था।

सुल्तान न्यायपालिका का प्रधान था और *दीवान-ए मज़ालिम* के माध्यम से सिविल तथा फ़ौजदारी, दोनों के, मामले में अपील की अंतिम अदालत था। सुल्तान की अनुपस्थिति में इसकी अध्यक्षता *अमीर-ए दाद* द्वारा की जाती थी। सिकंदर लोदी के काल में *वज़ीर, मज़ालिम* अदालतों का पीठासीन अधिकारी था। अधिकारियों के ख़िलाफ़ शिकायतों को इस अदालत में सुना जाता था। *अमीर-ए दाद*, राजधानी में एक महत्वपूर्ण और शक्तिशाली अधिकारी था। यह *अमीर-ए दाद* अली इस्माइल ही था जिसने इल्तुतमिश को दिल्ली की गद्दी पर आसीन होने के लिए आमंत्रित किया था। उसके सहायक प्रांतों के साथ-साथ सेना में भी होते थे। वास्तव में वह न्याय के क्रियान्वयन संबंधी मामले को देखता था। उसका यह कर्तव्य था कि वह देखे कि *क़ाज़ियों* द्वारा जारी किए गए आदशों को समुचित ढंग से लागू किया जा रहा है या नहीं।

सुल्तान के बाद राज्य का प्रमुख न्यायाधीश *काज़ी-उल मुमालिक* (या *काज़ी-उल कुज़्ज़ात*) था। बहुधा *सद्र-उस सुदूर* तथा *काज़ी-उल मुमालिक* का पद एक ही व्यक्ति के पास होता था। यह प्रमुख *काज़ी* न्याय-व्यवस्था का प्रमुख था तथा अधीनस्थ न्यायालयों के मुकदमों की अपील उसके यहाँ की जा सकती थी। उसकी सहायता के लिए एक *नायब* भी उसके प्रतिनिधि के तौर पर था।

न्याय के मामलों में निर्णय देते समय दिल्ली के सुल्तान अक्सर ही पूर्ण निष्पक्षता बरतते थे। बरनी उल्लेख करता है, बलबन ने अपने गवर्नर को गंभीर रूप से दंड दिया, जब उसे हत्या के अपराध का दोषी पाया गया। यहां तक कि एक *अमीर* द्वारा मुहम्मद बिन तुग़लक़ के ख़िलाफ़ शिकायत करने पर कि उसने अपने भाई की हत्या अन्यायपूर्ण तरीके से की है, इब्न बतूता वर्णन करता है कि, *क़ाज़ी* द्वारा सुल्तान को कानून की अदालत में बुलाया गया।

मुहतसिब (public censor; नागरिक नियंत्रक) न्याय विभाग की सहायता करता था। इनका कार्य

यह देखना था कि जनता द्वारा कहीं इस्लामी कानूनों का उल्लंघन तो नहीं किया जा रहा।

4.2.5 *दीवान-ए इंशा*

दीवान-ए इंशा नामक विभाग पर राज्य के पत्राचार का उत्तरदायित्व था। इस विभाग का प्रमुख *दबीर-ए मुमालिक* था। यह विभाग सुल्तान और अन्य देशों के बीच तथा सुल्तान और प्रांतीय शासकों के बीच पत्राचार पर नियंत्रण रखता था। इसी विभाग द्वारा *फरमान* (शाही आदेश) जारी किए जाते थे और अधीनस्थ अधिकारियों के पत्र प्राप्त किए जाते थे। उसकी सहायता कई *दबीर* करते थे। सुल्तान के निजी पत्र व्यवहार का प्रबंध करने वाले को *कातिब-ए ख़ास* कहा जाता था।

4.2.6 *बरीद* (खबरनवीस)

बरीद-ए मुमालिक राज्य के समाचार विभाग का प्रमुख था। उसे पूरी सल्तनत में होने वाली घटनाओं का लेखा-जोखा रखना होता था। राज्य के प्रत्येक प्रशासनिक खंडों या प्रशासनिक केंद्रों पर *बरीद* नामक स्थानीय अधिकारी रहता था, जो केंद्रीय विभाग को उस स्थान की घटनाओं और समाचारों की सूचना भेजा करता था। *बरीद* राज्य संबंधी सूचनाएँ जैसे युद्ध, विद्रोह, स्थानीय मामले, वित्त तथा कृषि की स्थिति, आदि प्रेषित करता था। यह पद सल्तनत के बहुत ही शुरुआती समय से अस्तित्व में था। कुतबुद्दीन ऐबक के पास खुद के *बरीद* होने का उल्लेख मिलता है। यद्यपि, बाद के शम्सी सुल्तानों के समय यह विभाग अवनति की ओर चला गया था। अलाउद्दीन ख़लजी और बलबन ने इसकी कुशलता को फिर से नया जीवन दिया। अलाउद्दीन के आर्थिक सुधारों की सफलता मुख्यतः इस गुप्तचर व्यवस्था के प्रभावी संचालन पर आधारित थी। इब्न बतूता भी मुहम्मद बिन तुग़लक़ की खुफ़िया सेवाओं की बहुत तारीफ़ करता है।

बरीद संपूर्ण साम्राज्य में फैले हुए थे और सुल्तान को विदेशियों के आगमन, अधिकारियों की गतिविधि, ख़ास घटनाओं की जानकारी, बाजार में होने वाली चर्चाओं, इत्यादि के बारे में सूचित करते थे। *बरीद* के अतिरिक्त एक अन्य कर्मचारी वर्ग, जिसे *मुनहियान* कहते थे, सूचनाएँ भेजने का कार्य करता था। यह *मुन्हियान* गोपनीय जासूस होते थे और स्वतंत्र रूप से कार्य करते थे; उन्हें अक्सर ख़ास अभियानों पर भेजा जाता था।

बोध प्रश्न-1

1) राजपरिवार की प्रशासनिक व्यवस्था का उल्लेख कीजिए।

.....

.....

.....

2) *दीवान-ए विज़ारत* के प्रमुख कार्यों की रूपरेखा दीजिए।

.....

.....

.....

3) दिल्ली के सुल्तानों के सैन्य संगठन की चर्चा कीजिए।

.....

.....

.....

4) *दीवान-ए रिसालत* की क्या भूमिका और कार्य थे?

.....

.....

.....

4.3 दिल्ली सल्तनत के अधीन प्रांतीय शासन

दिल्ली सुल्तानों के अधीन *इक्ताओं* (प्रांतों) का विशेष महत्व था। लेकिन, बाद में लोदी सुल्तानों के

अधीन ऐसा प्रतीत होता है कि प्रांतीय और स्थानीय स्तर पर कुछ परिवर्तन किए गए जब *सरकार* एक विशिष्ट घटक के रूप में उभरी।

4.3.1 *इक्ता* प्रणाली

नए शासकों ने *इक्ता* व्यवस्था कायम की, जिसमें राजनैतिक संरचना की एकता को बिना हानि पहुंचाए, राजस्व संग्रह और वितरण दोनों कार्य सम्मिलित किए गए। *इक्ता* एक भूमि अनुदान था एवं उसका प्राप्तकर्त्ता *मुक्ती* या ***वली*** कहलाता था।

इक्ता क्या थे?

तेरहवीं शताब्दी की प्रारंभिक तुर्की विजयों ने अनेक छोटे स्थानीय राजाओं का अंत कर दिया (समकालीन लेखक इन छोटे राजाओं को *राय* अथवा *राना* कहते हैं)। अपने राज्य के सुदृढ़ीकरण के लिए तुर्की शासकों ने अपने अमीरों को नकद वेतन के स्थान पर राजस्व अधिकार (*इक्ता*; राजस्व भू-अनुदान) का आवंटन किया। जिन व्यक्तियों को यह अधिकार दिया गया उन्हें *मुक्ती* या *वली* कहा जाता था। वे अपने *इक्ता* से कर वसूल करके अपने सैनिकों को वेतन देते थे, और स्वयं अपने खर्च के लिए एक निश्चित राशि ले लेते थे। बचे हुए अतिरिक्त राजस्व (***फवाज़िल***) को केन्द्रीय सरकार को भेज देते थे। *इक्ता* एक अरबी शब्द है और प्रारंभिक इस्लामी राज्यों में यह व्यवस्था अपनाई गई थी। राज्य की सेवा करने के पुस्स्कार के रूप में यह *इक्ते* दिए जाते थे। *खिलाफत* के प्रशासन में यह प्रथा धन की व्यवस्था करने और असैनिक तथा सैनिक अधिकारियों को वेतन देने के लिए प्रचलित थी। *इक्ता* के अनुदान का अर्थ भूमि पर अधिकार देना नहीं था। यह अनुदान वंशानुगत भी नहीं था। परन्तु फिरोज़ तुगलक के काल में *इक्ता*-धारियों ने वंशानुगत अधिकार अर्जित कर लिए थे। यह राजस्व-अनुदान स्थानांतरणीय भी थे। *इक्ता*-धारकों का तीन या चार वर्ष के अंतराल पर एक स्थान से दूसरे स्थान पर स्थानांतरण किया जाता था। अतः *इक्ता* को सामंती मध्यकालीन यूरोप में प्रचलित फीफ (fief) के समान नहीं माना जा सकता क्योंकि यूरोप की यह फीफ व्यवस्था वंशानुगत थी और स्थानांतरणीय नहीं थी। यह *इक्ता* अनुदान काफी बड़े भी हो सकते थे (एक पूरा प्रांत या उसका भाग) और छोटे भी। अमीरों या कुलीनों को दिए जाने वाला राजस्व-अनुदान (*इक्ता*) में *इक्ता*-धारियों को राजस्व वसूलने के अतिरिक्त सैनिक और कानून तथा व्यवस्था का उत्तरदायित्व भी निभाना होता था। इस प्रकार यह *मुक्ती* या *वली* (जिसे *इक्ता* दिया जाता था) प्रांतीय पशासन का प्रमुख होता था। उसे पैदल और घुड़सवारों से युक्त एक सेना रखनी होती थी। *इक्ता* व्यवस्था की आदर्श परिभाषा सेल्जुक राज्यवेत्ता निज़ाम-उल मुल्क तूसी द्वारा दी गई है:

> उन्हें (*मुक्ती*) यह समझना चाहिए कि प्रजा (किसानों) पर उनका अधिकार केवल शान्तिपूर्ण तरीके से उचित धन (भूमि कर) अथवा प्राधिकार (*माल-ए हक*) वसूल करने का है। प्रजा के जीवन, सम्पत्ति और परिवार को कोई हानि नहीं पहुँचाना चाहिए, *मुक्ती* को उन पर कोई ऐसा अधिकार नहीं है, अगर प्रजा सुल्तान से सीधे कोई आवेदन या प्रार्थना करना चाहती है तो *मुक्ती* को उन्हें रोकना नहीं चाहिए। जो *मुक्ती* इन नियमों का उल्लंघन करे उसे बर्खास्त और दण्डित करना चाहिए... *मुक्ती* और *वली* पर उसी प्रकार (बहुत से) नियंत्रक हैं जैसे कि शासक अन्य मुक्तियों पर नियंत्रण रखता है... तीन या चार वर्ष बाद *आमिल* और *मुक्ती* का स्थानांतरण कर देना चाहिए ताकि ये स्थानीय स्तर पर अधिक शक्तिशाली न हो जाएँ।
>
> ***मुक्ती* के अधिकारों के विषय में निज़ाम-उल मुल्क तूसी के *सियासत नामा* में किया गया वर्णन। इसके अंग्रेजी प्रारूप के लिए देखें ए.बी.एम. हबीबुल्लाह, *द फांउडेशन ऑफ मुस्लिम रूल इन इंडिया*, इलाहाबाद, 1976, पृ. 209-210.**

इस प्रकार तूसी की परिभाषा के अनुसार, *इक्ता* एक प्रकार का राजस्व संबंधी कार्यभार था, जो *मुक्ती* को सुल्तान की इच्छानुसार प्राप्त होता था। *मुक्ती* सुल्तान को देय भूमि कर और अन्य करों को उचित ढ़ंग से प्राप्त करने का अधिकारी था, लेकिन उसका किसानों के लिए कार्य करने वालों, स्त्रियों तथा बच्चों एवं उनकी अन्य जायदाद पर कोई हक नहीं था। *मुक्ती* की सुल्तान के प्रति कुछ जिम्मेदारियाँ थीं, जिनमें प्रमुख सैन्य दलों का अनुरक्षण करना एवं आवश्यकता पड़ने पर उन्हें सुल्तान के लिए हाज़िर करना था। *इक्ता* एक स्थानांतरणीय कार्यभार था और *इक्ताओं* के स्थानांतरण की प्रथा प्रचलन में थी।

ऐसा कहा जाता है कि इल्तुतमिश (1210-36) द्वारा सुल्तान की फौज (***हश्म-ए कल्ब***) के सैनिकों को वेतन की जगह *दोआब* प्रदेश में "छोटे *इक्ता*" प्रदान किए गए। बलबन (1266-86) ने उनके पुनर्ग्रहण हेतु एक उत्साहहीन असफल प्रयास किया। वह अलाउद्दीन खलजी (1296-1316) ही था जिसने सैनिकों को नकद वेतन देने की प्रथा को दृढ़ता से स्थापित किया। इस प्रथा को पुनः फिरोज़ तुगलक द्वारा बदला गया जिसने सैनिकों को उनके वेतन के स्थान पर गांवों को प्रदान करना प्रारंभ किया। इन्हें *वजह* कहा जाता था और उनके स्वामियों को ***वजहदार***। ये आवंटन न केवल स्थायी बल्कि वंशानुगत प्रकृति के होते थे।

इक्ता व्यवस्था का संचालन

सल्तनत की स्थापना के प्रारंभिक वर्षों में न तो इन आवंटनों की राजस्व आय ज्ञात थी न ही अधिन्यासी के सैन्यदल का आकार निश्चित था। तथापि, बलबन (1266-86) द्वारा कतिपय संशोधन और केन्द्रीय नियंत्रण की दिशा में कुछ प्रयास किए गए, जब उसने प्रत्येक *मुक्ती* के साथ एक *ख्वाजा* (लेखाकर) की नियुक्ति की। इससे यह अर्थ निकाला जा सकता है कि सल्तनत *इक्ता* की वास्तविक आय और *मुक्ती* के व्यय को आँकने का प्रयास कर रही थी।

इक्ता प्रशासन में प्रभावी परिवर्तन अलाउद्दीन खलजी के काल में हुआ। केन्द्रीय वित्त विभाग (*दीवान-ए विज़ारत*) ने संभवतः प्रत्येक *इक्ता* द्वारा होने वाली अनुमानित राजस्व आय का आकलन किया। लेखा-परीक्षण सख्त होता था, दंड कठोर थे, तबादले बार-बार होते थे और कई बहानों के आधार पर *इक्ता* की अनुमानित राजस्व आय में अक्सर वृद्धि (*तौफीर*) की जाती थी।

गियासुद्दीन तुगलक (1320-25) ने कुछ उदार नीति अपनाई। *मुक्तियों* को अपने स्वीकृत वेतनों के अतिरिक्त 1/10वें से 1/20वें भाग तक की आय अपने पास रखने की इजाजत दी गई।

मुहम्मद तुगलक (1325-51) के काल में केन्द्रीय हस्तक्षेप अपने चरम बिंदु पर पहुंच गया। मुहम्मद तुगलक के काल में ***मुक्ती*** और ***वली*** के हाथ में कुछ वित्तीय अथवा राजस्व संबंधी अधिकार वापस लिए गए और केंद्रीय अधिकारियों को दे दिए गए। इब्न बतूता के अनुसार, अमरोहा का *इक्ता* दो अधिकारियों के अधीन था। एक *अमीर* कहलाता था (संभवतः सेना और प्रशासन का प्रमुख) तथा दूसरा *वली-उल ख़राज* (राजस्व वसूलने का प्रमुख) था। मुहम्मद तुगलक का यह भी आदेश था कि *इक्ता*-धारकों के सैनिकों को *दीवान-ए विज़ारत* से वेतन दिया जाए ताकि यह अधिकारी छल-कपट न कर सकें।

कई मामलों में एक ही क्षेत्र के लिए एक *वली* और एक ***अमीर*** की नियुक्ति की गई। *वली* का कार्य राजस्व संग्रह कर, उसमें से अपने वेतन को रखकर शेष को राजकोष भेजना होता था। *अमीर* अथवा सेनानायक का राजस्व वसूली से कोई संबंध नहीं था और वह अपना तथा अपने अधीन सैनिकों का वेतन संभवतः स्थानीय कोष से प्राप्त करता था। मुहम्मद तुगलक के शासनकाल में *इक्ता*-धारियों को राजकोष से नकद भुगतान किया जाता था। इससे सेनानायकों में असंतोष फैला और मुहम्मद तुगलक के लिए राजनैतिक समस्याएँ उत्पन्न हुईं। फिरोज़ तुगलक ने इसमें कुछ रियायत देने का निश्चय किया। उसने सरदारों के नकद वेतनों में वृद्धि की तथा राजस्व (*महसूल*) का नवीन आकलन तैयार किया, जो *जमा* कहलाया।

फिरोज़ तुगलक के उत्तराधिकारियों द्वारा केन्द्रीय नियंत्रण को पुनः स्थापित करने का कोई प्रयास नहीं किया गया। लोदी शासकों (1451-1526) के काल में प्रशासनिक और राजस्व कार्यभारों को संयुक्त कर दिया गया तथा उन्हें *इक्ता* नहीं बल्कि *सरकार* और *परगना* कहा जाता था। सिकन्दर लोदी (1489-1517) के शासनकाल में एक प्रकार की उप-आवंटन की व्यवस्था प्रचलित थी। मुख्य अधिन्यासी (*इक्ता*-धारी) अपने अधिन्यास (*इक्ता*) के कुछ भागों को अपने अधीनस्थों को हस्तांतरित करते थे, जो बाद में अपने सैनिकों को आंवटन करते थे।

इक्ता और शासक वर्ग में संसाधनों का वितरण

सल्तनत की आय का प्रमुख साधन था भूमिकर। जिस भूमि की आय सुल्तान के लिए सुरक्षित रहती थी, उसे ***खालिसा*** कहा जाता था। *इक्ता* वह भू-भाग था, जिसकी आय *अमीरों* को अनुदान में दी जाती थी *मुक्ती* अथवा *इक्ता*-धारकों को अपने क्षेत्र से भू-राजस्व जमा करना होता था और वहाँ कानून व्यवस्था बनाए रखनी होती थी। साथ ही साथ, आवश्यकता पड़ने पर इन लोगों को सुल्तान के लिए सैनिक सहायता की व्यवस्था भी करनी होती थी।

यह राजस्व या भूमि अनुदान स्थानांतरणीय थे और वंशानुगत नहीं होते थे। वास्तव में, *इक्ता* व्यवस्था द्वारा ही सुल्तान *अमीरों* पर अपना नियंत्रण स्थापित करता था। *मुक्ती* अपने क्षेत्र के किसानों से भू-राजस्व वसूल करने के पश्चात् उसमें से स्वयं अपना और अपने सैनिकों का वेतन ले लेता था। अतिरिक्त या बचे हुए धन (*फवाज़िल*) को *दीवान-ए विज़ारत* में भेजना केंद्रीकरण का द्योतक था। *मुक्ती* को अपनी आय और व्यय का विवरण भी केन्द्रीय कोषागार को भेजना होता था। धोखाधड़ी रोकने के लिए कठोर लेखा-परीक्षण किया जाता था।

अलाउद्दीन खलजी ने अपने अमीरों पर नियंत्रण रखने के लिए कई कदम उठाए। *बरीदों* (गुप्तचर अधिकारी) की नियमित रिपोर्ट द्वारा सुल्तान को *अमीरों* की गतिविधियों की सूचना प्राप्त होती रहती थी। उनके आपसी मेल-मिलाप पर भी नजर रखी जाती थी। *अमीरों* और उनके परिवारों के बीच आपसी वैवाहिक संबंध स्थापित करने के लिए भी सुल्तान की अनुमति लेना आवश्यक था। राज्य के इन उपायों को बार-बार होने वाले विद्रोहों की पृष्ठभूमि में देखना होगा। अपने-अपने क्षेत्रों के संसाधनों का दुरुपयोग करके *मुक्ती* विद्रोह करते थे या सिंहासन पर अधिकार करने की चेष्टा करते थे। इसी कारण से *इक्तों* का स्थानांतरण भी युक्तिसंगत माना जा सकता है। मुहम्मद तुगलक के काल में (1325-1351) *अमीरों* को तो नकद वेतन के बदले में *इक्ता* दिया जाता था, परन्तु पूर्व व्यवस्था के विपरीत उनके सैनिकों के वेतन का वितरण कोषागार से नकद धन के रूप में किया जाता था। यह नई वित्तीय व्यवस्था और *इक्ता* अनुदानों पर बढ़ा हुआ नियंत्रण ही संभवतः सुल्तान और *अमीरों* के बीच संघर्ष का कारण बना क्योंकि इस नई व्यवस्था के कारण *अमीरों* को *इक्ता* से होने वाले अनेकों लाभों से हाथ धोना पड़ा। परन्तु फिरोज़ तुगलक के काल में राज्य की नीति में बदलाव आया और *इक्ता* पर केंदीय नियंत्रण में ढील दी गई। यहाँ तक कि फिरोज़ ने *इक्ता*-धारकों की मत्यु के बाद उनके पुत्रों और वंशजों को *इक्ता* देने की परम्परा आरंभ की। तुलनात्मक दृष्टि से फिरोज़ तुगलक के लम्बे शासन काल में बहुत कम विद्रोह हुए, परन्तु इसी काल में राज्य का विकेंद्रीकरण और बिखराव भी शुरू हुआ। लोदी वंश (1451-1526) के काल तक *इक्ता*-धारकों (इन्हें अब *वजहदार* कहा जाता था) का स्थानांतरण करने की प्रथा समाप्त हो गई।

बोध प्रश्न-2

1) आप *इक्ता* को किस प्रकार परिभाषित करेंगे?

.....

.....

.....

2) मुहम्मद तुगलक द्वारा *इक्ता* व्यवस्था में क्या-क्या परिवर्तन किए गए?

.....

.....

.....

3) सही वाक्य के आगे (✓) और गलत वाक्य के आगे (×) चिह्न लगाइए:

   अ) अलाउद्दीन खलजी ने *मुक्तियों* को *इक्ताओं* द्वारा प्राप्त अतिरिक्त आय अपने पास रखने की अनुमति प्रदान की। ( )

   ब) ग़ियासुद्दीन तुगलक द्वारा ठेके पर राजस्व वसूल करने वालों को *इक्ता* प्रदान किए गए। ( )

   स) फिरोज़ तुगलक के अधीन *जमा का* अर्थ अनुमानित राजस्व आय से था। ( )

4.3.2 *मुक़्ती/वली*

प्रांतों को *विलायत* और *इक़्ता* के रूप में जाना जाता था। प्रांतीय प्रमुख को ***मुक़्ती*** या ***वली*** कहा जाता था। यद्यपि ऐसा प्रतीत होता है कि *वली* का पद *मुक़्ती* से ऊँचा था क्योंकि हम छोटे प्रांतों के लिए *वली* की नियुक्ति के बारे में नहीं सुनते हैं। अतः *वली* ऐसे प्रांत प्रमुख थे जिनके पास कुछ 'असाधारण शक्तियाँ' थीं। प्रारंभिक दौर में गवर्नर सैन्य और राजस्व दोनों मामलों का प्रभारी था। लेकिन, जब राज्य व्यवस्थित होने लगा तो अधिक केंद्रीकरण के प्रयास होने लगे। प्रांतीय प्रशासन

में भी परिवर्तन हुए। अब वित्तीय और सैनिक उत्तरदायित्व को पृथक करने की प्रक्रिया आरंभ हुई। मुहम्मद तुगलक के काल में *वली/मुक्ती* के राजस्व अधिकारों को पृथक कर दिया गया (उपर्युक्त विवरण देखें)।

लेकिन, *मुक़्ती/वली* के अतिरिक्त, जो प्रांतीय स्तर पर पूरी तरह से सेना की ज़िम्मेदारी रखता था, प्रांतों में *आरिज़* भी होता था, जो सेना में भर्ती और उसके निरीक्षण का कार्य करता था। लेकिन वह सीधे केंद्रीय *आरिज़* के अधीन कार्य करता था।

मुक़्ती/वली की नियुक्ति सुल्तान के द्वारा की जाती थी और उसे 'सुल्तान की इच्छा पर स्थानांतरित और पद मुक्त किया जा सकता था और दंड दिया जा सकता था'। लेकिन सल्तनत के विघटन के साथ *वली/मुक्ती* का पद समाप्त सा हो गया। हम महत्वपूर्ण प्रांतों में वायसराय की नियुक्ति के बारे में सुनते हैं। जब बहलोल लोदी ने जौनपुर के शर्की राज्य पर क़ब्ज़ा किया तो बारबक को वहाँ का वायसराय नियुक्त किया गया।

बोध प्रश्न-3

1) *इक्ता* पर एक टिप्पणी लिखिए।

.....

.....

.....

2) *वली* अथवा *मुक्ती* के क्या कार्य थे ?

.....

.....

.....

3) चौदहवीं शताब्दी में *मुक्ती* की शक्तियों को नियंत्रित करने के लिए क्या कदम उठाए गये?

.....

.....

.....

4) निम्नलिखित वक्तव्यों के समक्ष सही (✓) या गलत (×) का चिह्न लगाइए:

क) *इक्ता*

i) वंशानुगत अनुदान थे। ( )

ii) *इक्ता* अमीरों की व्यक्तिगत सम्पत्ति होते थे। ( )

iii) सामान्यतः *इक्ता* स्थानांतरणीय राजस्व अनुदान होते थे। ( )

iv) *मुक्ती* सुल्तान के व्यक्तिगत अंगरक्षक होते थे। ( )

v) *मुक्ती* धार्मिक शिक्षा देते थे। ( )

vi) *मुक्ती* प्रांतीय गवर्नर होते थे, जिन्हें *इक्ता* अनुदान दिए जाते थे। ( )

ख) *फवाज़िल*

i) अमीरों को दिया जाने वाला अतिरिक्त धन था। ( )

ii) वह अतिरिक्त आय थी, जो *इक्ता*-धारकों द्वारा राजकीय खज़ाने में जमा की जाती थी। ( )

iii) नकद वेतन के स्थान पर दिया जाने वाला राजस्व अनुदान था। ( )

4.3.3 *साहिब-ए दीवान*

वित्त संबंधी मामलों में राज्य का नियंत्रण बढ़ गया। केंद्र में *दीवान* के कार्यालय में प्रांतों से आय और व्यय का विस्तृत लेखा भेजने की व्यवस्था की गई, जिसकी बारीकी से जाँच होती थी। *दीवान* का

कार्यालय प्रांतों में नियुक्त अधिकारियों के कार्य की देखभाल और निरीक्षण भी करता था। प्रांतों में *साहिब-ए दीवान*, जो *ख्वाजा* के नाम से जाना जाता था, नामक अधिकारी की नियुक्ति भी की गई। यह कार्यालय बही-खाते का हिसाब रखता था तथा केंद्र को सूचनाएँ तथा जानकारी प्रेषित करता था। उसकी नियुक्ति भी *वज़ीर* की सिफ़ारिश पर सुल्तान के द्वारा की जाती थी, वह लेखा-खातों का विशेषज्ञ होता था। वह आय-व्यय का ब्योरा केंद्र को भिजवाता था। यद्यपि पदों के सोपानक्रम में उसका स्थान *मुक़्ती/वली* से नीचे था, वह बराबर की शक्ति और अधिकार रखता था क्योंकि उसकी नियुक्ति सीधे सुल्तान के द्वारा की जाती थी और वह केंद्र के प्रति जवाबदेह था न कि *वली* के प्रति। इस अधिकारी की सहायता के लिए ***मुतसर्रिफ*** नियुक्त किए जाते थे। राजस्व विभाग के समस्त अधीनस्थ कर्मचारियों को *कारकुन* कहा जाता था।

4.3.4 *शिक़*

13वीं शताब्दी के अंत में समकालीन स्रोतों में एक अन्य प्रशासनिक इकाई *शिक* का वर्णन भी मिलता है। *शिक़* के विषय में पर्याप्त जानकारी उपलब्ध नहीं है। बरनी किसानों के विद्रोह के बारे में वर्णन करते हुए यह जानकारी देता है कि *शिक़दारों* और *फ़ौजदारों* को विद्रोहियों को पकड़ने के आदेश दिए गए। इससे यह संकेत मिलता है कि प्रांतों में कई *शिक़दार* होते थे और जिसका तात्पर्य है, प्रांतों में कई *शिक़* होते थे। कुतबुद्दीन ऐबक के समय बड़ी *विलायतें* (प्रांत) *तरफ़* में बँटी थीं, 'अधिक सम्भावना यह है कि प्रांतों के यह नए और पुराने विभाग चौदहवीं सदी में *शिक़ों* के रूप में उभर कर सामने आए' (कुरैशी 1971: 202)। जब बहलोल लोदी ने कांपिल, पटियाली, शमसाबाद, सकित, कोइल, मरहरा और जलाली के *परगनों* को क़ब्ज़े में लिया तो उसने प्रत्येक *परगने* में *शिक़दारों* की नियुक्ति की। ऐसा प्रतीत होता है कि लोदी शासकों के समय *शिक़दार* की स्थिति घटकर *परगने* स्तर के अधिकारी की हो गई थी। लेकिन, कुछ भी निश्चित तौर पर नहीं कहा जा सकता है, सम्भवतः *शिक़* का प्रयोग समान रूप से नहीं होता था और केवल 'अप्रबंधनीय' प्रांतों में ही इस तरह का विभाजन था। संभवतः बड़े प्रांतों के *शिक़* बाद में *सरकार* के रूप में उभरे। परंतु शेरशाह के काल (1540-1545) में *शिक़* एक सुनिश्चित प्रशासनिक इकाई के रूप में स्थापित हो गई, जिसे *सरकार* कहा जाने लगा। *शिक़* से संबंधित प्रशासनिक अधिकारियों के विवरण *शिक़दार* या *फ़ौजदार* के रूप में मिलते हैं। इन अधिकारियों के कार्यों के विभाजन के विषय में जानकारी स्पष्ट नहीं हैं।

4.3.5 *परगना* और ग्राम अधिकारी

इब्न बतूता के अनुसार, *चौधरी* एक सौ गांवों (*सदी*) का प्रधान होता था। उसका हिंदपत के *सदी* से तात्पर्य दिल्ली के उपनगर में स्थित *परगना* इंद्रपत से था। लेकिन, सरकारी दस्तावेज़ों में *सदी* पद की सर्वथा अनुपस्थिति यह इशारा करती है कि *सदी* को कभी भी सरकारी रूप से अपनाया नहीं गया था। आगे चलकर यह *परगना* नामक प्रशासनिक इकाई का केंद्र-बिंदु बना। *परगना* स्तर पर *मुतसर्रिफ* राजस्व संग्रहण का प्रभारी था। बरनी उसके लिए *आमिल* शब्द का प्रयोग करता है। बरनी *आमिल* के अतिरिक्त *मुशरिफ़, मुहासिल, गुमाश्ता, सरहंग* का उल्लेख करता है। *मुशरिफ़* फसल का मुआयना करके राज्य का हिस्सा तय करता था; *मुहासिल* किसानों से राजस्व का भुगतान हासिल करता था; *गुमाश्ता* एक तरह का एजेंट/प्रतिनिधि था; *सरहंग* का कर्तव्य सरकारी आदेशों को किसानों तक पहुँचाना था।

अफ़ग़ानों के अधीन *आमिल/मुतसर्रिफ* को *शिक़दार* के रूप में जाने, जाने लगे। शेरशाह के अधीन *परगना* स्तर पर *शिक़दार* स्थानीय प्रशासन का प्रभारी था; *मुशरिफ़* को अब ***अमीन***/*मुंसिफ़* कहने लगे और *मुहासिल* अब *फ़ोतादार/ख़ज़ांची/ख़जानदार* हो गया था (कुरैशी 1971: 209)।

गाँव प्रशासन की सबसे छोटी इकाई था। गाँव की प्रशासनिक व्यवस्था लगभग वही रही, जो तुर्की आक्रमण से पहले थी। गाँव के प्रमुख पदाधिकारी और कार्यकर्ता *खोत,* ***मुकद्म*** (ग्राम प्रधान) तथा ***पटवारी*** थे।

प्रांतों तथा अन्य प्रशासनिक इकाइयों में न्याय-व्यवस्था का स्वरूप केंद्रीय ढाँचे के अनुरूप था। प्रांतों में *काज़ी* और *सद्र* के न्यायालय थे। गाँव के स्तर पर दीवानी और संपत्ति संबंधी मामलों का निपटारा *ग्राम पंचायत* करती थी।

4.4 नगर, किले और *थाना*

शहरों में *कोतवाल* क़ानून व्यवस्था बनाए रखने के लिए ज़िम्मेदार था और रक्षा सम्बंधी काम भी देखता था। प्रारम्भ में वह एक सैन्य अधिकारी था, एक क़िलाबन्द शहर का फ़ौजी कमांडर। लेकिन 'नागरिक प्रशासन के विस्तार के साथ वह पुलिस अधिकारी बन गया था'।

क़िले एक अन्य प्रशासनिक इकाई थे। इनका निर्माण लुटेरों/चोरों को दंड देने के लिए किया गया। किलों का प्रशासन *कोतवाल* के अधीन था। कालांतर में ये *कोतवाल, फ़ौजदार* के रूप में पहचाने जाने लगे, जैसा कि बरनी उल्लेख करता है। किलों के अतिरिक्त बलबन ने सैन्य चौकियाँ (*थाने*) भी स्थापित किए। विद्रोही तत्वों को क़ाबू में रखने के लिए *थानेदारों* के अधीन इन *थानों* की स्थापना की गई थी। कटेहर क्षेत्र में कटेहरियों को नियंत्रित करने के लिए उसने कांपिल, पटियाली और भोजपुर में *थानों* की स्थापना की थी। इन केंद्रों में उसने अफ़ग़ानों को बसाया और मस्जिदों की स्थापना की और वहाँ *क़ाज़ी* नियुक्त किए।

बोध प्रश्न-4

1) *वली* या *मुक़्ती* के क्या कार्य थे?

.....

.....

.....

2) *शिक़* से क्या तात्पर्य है? उसके प्रमुख पदाधिकारियों की चर्चा कीजिए।

.....

.....

.....

3) संक्षेप में, *परगना* और ग्राम स्तर के अधिकारियों का उल्लेख कीजिए।

.....

.....

.....

4.5 डाक व्यवस्था

डाक व्यवस्था के माध्यम से चलने वाला सल्तनत का संचार-तंत्र अत्यंत कुशल और तीव्रगामी था। *मसालिक-उल अबसार* में अल-उमरी ने इस व्यवस्था को सीरिया और मिश्र में प्रचलित व्यवस्था से भी बेहतर बताया है। अलाउद्दीन और मुहम्मद बिन तुग़लक़ के अधीन इस व्यवस्था के संचालन का विस्तृत वर्णन इब्न बतूता, अल-उमरी और याह्या बिन अहमद सरहिंदी ने उपलब्ध कराया है।

इब्न बतूता वर्णन करता है:

> भारत में डाक दो तरह की होती थी। घोड़े की डाक जिसे *उलाक़* कहा जाता है, जिसे प्रत्येक चार मील पर तैनात शाही घोड़ों द्वारा संचालित किया जाता है। पैदल-डाक के प्रत्येक मील में तीन चौकियाँ होती थीं; जिसे *दावा* कहा जाता है, अर्थात् मील का एक तिहाई। मील को भारतीय लोगों के बीच *कुरोह* के रूप में जाना जाता है। इस तरह, प्रत्येक एक तिहाई मील पर अच्छा-ख़ासा आबाद गाँव होता था, जिसके बाहर तीन तम्बुओं में धोती लपेटे आदमी दौड़ने को तैयार बैठे होते हैं। प्रत्येक के हाथ में एक डंडा होता है, दो क्यूबिट लम्बा जिसके ऊपर ताम्बे की घंटियाँ लगी होती हैं। जब शहर से यह *हरकारा* दौड़ना शुरू करता है तो उसके एक हाथ में चिट्ठी और दूसरे हाथ में घंटी लगा डंडा होता है, और वह जितनी तेज दौड़ सकता है, उतनी तेज़ दौड़ता है। जब तम्बू में बैठे लोग घंटी की आवाज़ सुनते हैं तो वे तैयार हो जाते हैं, जैसे ही संदेश वाहक उन तक पहुँचता है, उनमें से एक व्यक्ति उसके हाथ से चिट्ठी लेकर तीव्र गति से घंटी बजाते हुए दौड़ता है, जब तक कि वह अगले *दावा* में नहीं पहुँच जाता है। और यह प्रक्रिया चलती रहती है जब तक कि चिट्ठी अपने गंतव्य तक नहीं पहुँच जाती है। यह पैदल-डाक घोड़े की डाक से अधिक तीव्र है; और अक्सर खुरासान के फलों को लाने में इसका इस्तेमाल किया जाता है, जिन्हें भारत में काफ़ी पसंद किया जाता है ... इसी प्रकार कुख्यात अपराधियों को भी लाया-ले जाया जाता था ... इसी तरीक़े से सुल्तान के इस्तेमाल के लिए गंगा का पानी दौलताबाद लाया जाता था, जब वह वहाँ होता था ... जो दौलताबाद से चालीस दिन की यात्रा की दूरी पर स्थित है।
>
> **इब्नबतूता, *रेहला*, अनुवाद, महदी हुसैन पृ. 3-4**

लेकिन, मुहम्मद तुग़लक़ के काल में तीन की जगह ऐसे दस दौड़ने वाले तैनात किये जाते थे। ज़ियाउद्दीन बरनी लिखता है कि जब अलाउद्दीन कहीं अभियान भेजता था तो वह राजधानी से उस स्थान के बीच संचार को सुनिश्चित कर लेता था, जहाँ सेना को ठहराना होता था। ऐसी पहली चौकी तिलपत में होती थी और उसके बाद प्रत्येक *कोस* के आधी या *कोस* के छठे भाग के बराबर की दूरी में एक चौकी स्थापित की जाती थी, उस स्थान तक जहाँ सेना को घेरा डालना होता था। केवल एक बार ऐसा हुआ जब मालिक काफ़ूर वारंगल में अभियान पर था, अलाउद्दीन को चालीस दिन तक कोई ख़बर नहीं मिल पाई थी। अन्यथा, सामान्य तौर पर सल्तनत की डाक व्यवस्था काफ़ी तीव्र गति से काम करती थी। अलाउद्दीन को हाजी मौला के विद्रोह के बारे में तीन दिन में ही पता चल गया था। इब्न बतूता इस बात की तारीफ़ करता है कि शाही डाक सिंध से दिल्ली पाँच दिन में पहुँच जाती है, जबकि एक सामान्य यात्री को पहुँचने में पचास दिन लगते हैं। कुशल डाक व्यवस्था ने दिल्ली के सुल्तानों को साम्राज्य के दूर-दराज के इलाक़ों में कड़ी नज़र रखने में मदद की।

अधिक सम्भावना यह है कि यह डाक व्यक्तिगत निजी संदेशों के संचार के लिए नहीं थी लेकिन, इसने सैनिकों को अपने परिवारों से जुड़े रहने और उनकी खोज-ख़बर रखने में सहायता की होगी।

इस डाक व्यवस्था के अलावा, सुल्तानों ने संकेतों की व्यवस्था का भी प्रबंध किया था, ताकि निकट के स्थान में अचानक होने वाले विद्रोहों और हमलों से सुल्तान को आगाह किया जा सके। बड़े शहरी इलाक़ों के बीच नगाड़ों की श्रृंखला होती थी।

4.6 दिल्ली सल्तनत कालीन शासन की प्रकृति

पीटर जैक्सन दिल्ली सल्तनत को 'सैन्यवादी राज्य' कहते हैं। 'दिल्ली सल्तनत मूलभूत रूप से उपमहाद्वीप में दीर्घकाल से स्थापित हो चुकी मुस्लिम सैन्य परंपराओं से मज़बूती से जुड़ी थी' (जैक्सन 1999: 21)। उनका तर्क है कि सुल्तानों की प्राथमिकताएँ सैन्य और रक्षा सम्बंधी आवश्यकताओं के द्वारा ही तय होती थीं विशेषकर मंगोलों का ख़तरा दिल्ली सुल्तानों की नीतियों को दिशा देने वाला सबसे प्रभावी कारक था। जब तक मंग़बरनी और चंगे़ज़ का ख़तरा बना रहा, इल्तुतमिश ने कभी भी अपनी सल्तनत का विस्तार सिंधु के आस-पास तक करने का प्रयास नहीं किया। मंगोलों के ख़तरे ने बलबन का भी सम्पूर्ण ध्यान अपनी ओर ही लगाए रखा, इतना कि उसने रक्षा-पंक्ति को सुदृढ़ करने के विशेष प्रयास किए: उसने सुनाम और भटिंडा के दुर्गों को मज़बूत बनाया और कभी भी दिल्ली छोड़ने की हिम्मत नहीं की। इस प्रक्रिया में उसने अपने सर्वाधिक प्रतिभावान पुत्र शहज़ादे मुहम्मद को, 1285 में, भी खो दिया। अलाउद्दीन ख़लजी भी अपने सम्पूर्ण शासनकाल में मंगोलों के ख़तरे से सल्तनत की रक्षा के लिए इतना आक्रांत था कि उसके आर्थिक सुधार, ख़ासकर मूल्य नियंत्रण, बहुत हद तक इसी से प्रेरित थे। जैक्सन (1999: 25) का तर्क है कि सभी पद 'सल्तनत में तत्वतः सैन्य स्वरूप के थे *सर-ए जानदार* (सुल्तान के अंगरक्षक), *सर-ए सिलहदार* (शस्त्र धारक), *आरिज़* (सेना का प्रबंधक, युद्ध मंत्री के समान), *अमीर-ए हाजिब* (सैन्य बलों का नेतृत्व करने वाला; राजमहल का सैन्य अधिकारी), *अमीर-ए दाद* (सैन्य न्यायाधिकारी), *अमीर-ए आखुर* (सुल्तान के अस्तबल का प्रमुख), *अमीर-ए शिकार* (शाही शिकार का प्रमुख जिसका सैन्य अभ्यास के लिए काफ़ी महत्व था)'। जैक्सन आरम्भिक तुर्की राज्य को 'उपराज्यों का समूह भर' मानते हैं, जिनमें से कुछ पर 'हिंदू राजाओं' का राज था, अन्य पर मुस्लिम शहज़ादों/*अमीरों*/*मुक़्तियों* का। वह सल्तनत राज्य को प्रांतीय दृष्टिकोण से देखते हैं, उनके लिए वे प्रांतीय प्रमुख या *मुक़्ती* ही थे, जिन्होंने सल्तनत शासन की प्रकृति का निर्धारण किया, यद्यपि अलाउद्दीन और मुहम्मद बिन तुग़लक़ के अधीन सल्तनत का 'केंद्र नियंत्रित राज्य' में क्रमिक विकास हो सका।

हर्मन कुल्के का विश्वास है कि अपने प्रारंभिक वर्षों में सल्तनत एक 'विजय-राज्य' था और केवल अलाउद्दीन ख़लजी के काल में जाकर प्रशासन के केंद्रीयकरण के गम्भीर प्रयास किए गए। उनका तर्क है कि अपने सम्पूर्ण काल में यह एक 'वंशगत' व्यवस्था बनी रही। अतः कुल्के के मुताबिक़ ऐसे *सैन्य साधन* होने के बावजूद जो उपमहाद्वीप के बड़े हिस्सों को जीत सकते थे, के बाद भी दिल्ली के सुल्तान कभी भी एक साम्राज्य क़ायम नहीं कर पाए। वे गहरी और दूरस्थ क्षेत्र तक प्रवेश करने वाली ठोस प्रशासनिक व्यवस्था स्थापित करने में असफल रहे (कुल्के और रॉदरमंड 2004: 179)। ऐसे स्थानीय समूह थे, जो अक्सर केंद्रीय प्राधिकार को चुनौती देते थे, जिसमें शक्तिशाली अमीर भी शामिल थे। सल्तनत हमेशा इन विद्रोहों से निपटने में ही व्यस्त रही। मुहम्मद बिन तुग़लक़ के काल

में जब केंद्रीयकरण अपने चरम पर था, सबसे अधिक विद्रोह हुए और कुछ *मुक़्तियों* (प्रांतीय गर्वनरों) और *अमीरों* ने अपनी स्वायत्त रियासतें बनाने का प्रयास किया; ऐसे पहले विभाजन को *अमीरान-ए सादाह* के विद्रोह के रूप में देखा जा सकता है, जिसके परिणामस्वरूप कालांतर में स्वतंत्र बहमनी राज्य की स्थापना हुई।

सुनील कुमार (2007: 5) 'दिल्ली सल्तनत के खंडीय और बिखरे राजनीतिक संसार' को रेखांकित करते हैं। वह इसे 'उत्तर भारतीय सल्तनतों का इतिहास' (बहुवचन में) कहना पसंद करते हैं। वह, 'एकल और अपेक्षाकृत स्थायी राजनीतिक संरचना की एक केंद्रीय और समरूपी छवि से दूर हटते हुए, इस काल की राजनीतिक जटिलताओं और बिखरेपन' पर प्रकाश डालते हैं।

तथापि, के. ए. निज़ामी (2002: 95, 97) का तर्क है, मात्र सैन्य अभियानों और निरंतर युद्ध के आधार पर दिल्ली सल्तनत पर 'सैन्य राज्य' का तमग़ा नहीं लगाया जा सकता है।

स्टेनले लेनपूल, ईश्वरी प्रसाद, ए.बी.एम. हबीबुल्ला, के. एम. अशरफ़, मोहम्मद हबीब, के. ए. निज़ामी, इरफ़ान हबीब दिल्ली सल्तनत को अत्यधिक केंद्रीयकृत राजशाही के रूप में देखते हैं। अशरफ़ का तर्क है कि, 'सैद्धांतिक रूप से दिल्ली का सुल्तान निरंकुश तानाशाह था, किसी भी क़ानून से बंधा हुआ नहीं था, किसी भी मंत्रणा के अधीन नहीं था, और स्वयं के अलावा किसी की इच्छा से संचालित नहीं था। लोगों के पास कोई अधिकार नहीं थे, केवल दायित्व थे, वे केवल उसकी आज्ञापालन के लिए अस्तित्व में थे' (अशरफ़ 1969: 32)। यही स्वर आई. एच. कुरैशी (1971: 8.9, 196) के मत में भी सुनाई देता है, जिन्होंने सल्तनत को एक 'तानाशाही' और सुल्तान की शक्तियों को 'निरंकुश' बताया है। केंद्रीयकरण मुहम्मद बिन तुग़लक़ के शुरुआती काल में अपने 'चरम' में पहुँच गया था। कुरैशी (1971: 218) का विश्वास है कि, 'लेकिन, यह सोचना ग़लत होगा कि सामान्य काल में केंद्र की सत्ता कमज़ोर थी, प्रांतों में विद्रोह एक अपवाद थे, न कि नियम' (सुल्तान की स्थिति और शक्ति के विषय में विस्तार से जानने के लिए इस पाठ्यक्रम की **इकाई 3** देखें)। साइमन डिग्बी के मुताबिक़, सुल्तानों की श्रेष्ठ सैन्य शक्ति और असाधारण संगठनात्मक क्षमताओं के बल पर केंद्रीयकरण करना सम्भव हुआ।

दिल्ली के सुल्तानों ने सल्तनत के बहुत ही शुरुआती काल से ही केंद्रीयकरण के प्रयास किए थे। इल्तुतमिश ने इस दिशा में ठोस कदम उठाए। ढीले-ढाले ढंग से आपस में जुड़े और नये विजित किए गए प्रांतों को *इक़्ता* के माध्यम से समरूप प्रशासन के अधीन लाया गया (विस्तार के लिए देखें **उप-भाग 4.3.1** और **4.3.2**)। *इक़्ता* व्यवस्था ने प्रांतों को केंद्रीय सत्ता के अधीन लाने में सहायता की। इरफ़ान हबीब ने *इक़्ता* से सम्भव 'राजनीतिक केंद्रीयकरण' को भी देखा है। इल्तुतमिश ने एक स्थायी सेना की व्यवस्था की थी, यद्यपि यह अप्रत्यक्ष कमान के अधीन होती थी, इसे केंद्र के अधीन *आरिज-ए मुमालिक़* के प्रत्यक्ष नियंत्रण में प्रशासित और भर्ती किया जाता था और वेतन दिए जाते थे। इल्तुतमिश ने समरूप मुद्रा-प्रणाली (चाँदी का *तनका* और ताम्बे का *जीतल*) और सम्पूर्ण सल्तनत में एकसमान प्रशासनिक व्यवस्था भी शुरू की। इससे भी अधिक, इल्तुतमिश ने तर्क गुलामों (*तुर्कान-ए चिहिलगानी*) और *ताजिक* अधिकारियों की एक मज़बूत नौकरशाही का भी सृजन किया, जिसने सल्तनत के सुदृढ़ीकरण में भी सहायता की। निज़ामी टिप्पणी करते हैं कि, 'ऐबक ने सल्तनत की मात्र एक रूपरेखा खींची थी; इल्तुतमिश ने इसे एक व्यक्तित्व, और एक प्रतिष्ठा, प्रेरणा-शक्ति और एक दिशा और प्रशासनिक व्यवस्था व शासक वर्ग प्रदान किया' (निज़ामी 1982: 230)। इस भाँति साम्राज्य के विभिन्न हिस्सों में स्थापित शांति ने सल्तनत के व्यापार, वाणिज्य और अर्थव्यवस्था को उभरने में सहायता दी, और इस प्रकार सल्तनत की समृद्धि सुनिश्चित की। जिस क्षण सुल्तानों की केंद्रीय सत्ता कमज़ोर पड़ी, बिखराव के चिह्न नज़र आने लगे और आख़िरकार इसने चौदहवीं-पन्द्रहवीं सदी में प्रांतीय राज्यों की स्थापना का रास्ता तैयार किया।

बोध प्रश्न-3

1) सल्तनत काल में डाक व्यवस्था की कार्यप्रणाली की चर्चा कीजिए।

.....

.....

.....

2) सल्तनत क़ालीन राज-व्यवस्था के विषय में पीटर जैक्सन का क्या तर्क है?

.....

.....

.....

4.7 सारांश

इस इकाई में हमने देखा कि दिल्ली सल्तनत का स्वरूप ऐतिहासिक रूप में विस्तृत इस्लामी विश्व का एक भाग होने से बना; साथ ही, आपने देखा 13वीं शताब्दी में अपनी आवश्यकताओं और परिस्थितियों के कारण इसका स्वरूप कैसे बदला और विकसित हुआ। आपने सल्तनत में केंद्रीय, प्रांतीय और स्थानीय प्रशासनिक व्यवस्था का अध्ययन भी किया। एक विशाल सेना रखने की आवश्यकता (सुरक्षा और राज्य विस्तार के लिए) तथा प्रशासनिक तंत्र रखने की जरूरत ने इसकी कई संस्थाओं को निश्चित स्वरूप प्रदान किया। अधिक केंद्रीकरण से प्रशासनिक नियंत्रण की प्रकृति में कई परिवर्तन आए।

4.8 शब्दावली

अमीन	राजस्व का आकलन करने वाला
दीवान-ए विज़ारत	वित्त विभाग
मवास	ऐसे विद्रोही क्षेत्र या गाँव जहाँ से राजस्व बलपूर्वक वसूल किया जाता था
मुकद्दम	ग्राम प्रधान
मुक्ती या वली	*इक्ता*-धारक या गवर्नर
मुशरिफ	राजस्व अधिकारी
मुतसर्रिफ	मुख्य लेखा-परीक्षक
पटवारी	गाँव का लेखाकार
वक्फ	धार्मिक संस्थाओं के रखरखाव के लिए दिए जाने वाले भू-अनुदान

4.9 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न-1

1) देखें उप-भाग 4.2.1

2) देखें उप-भाग 4.2.2

3) देखें उप-भाग 4.2.3

4) देखें उप-भाग 4.2.4

बोध प्रश्न-2

1) देखें भाग 4.3

2) देखें भाग 4.3

3) देखें भाग 4.3

बोध प्रश्न-3

1) देखें भाग 4.5

2) देखें भाग 4.6

4.10 संदर्भ ग्रंथ

हबीब, मोहम्मद और के. ए. निजामी, (1982) *कॉम्प्रीहेन्सिव हिस्ट्री ऑफ इंडिया*, भाग V (दिल्लीः पीपल्स पब्लिशिंग हाउस).

हबीब, इरफ़ान (2011), 'फ़ॉर्म्ज़ ऑफ लेबर', डी. पी. चट्टोपाध्याय (संपा.) *हिस्ट्री ऑफ साइंस, फ़िलासफ़ी एंड कल्चरः इकोनॉमिक हिस्ट्री ऑफ मिडिवल इंडिया, 1200-1500*, खंड VIII, भाग I (नई दिल्लीः सेंटर फ़ॉर स्टडीज़ इन सिविलाइज़ेशन).

जैक्सन, पीटर, (1999) *द देल्ही सल्तनतः अ पॉलीटिकल एंड मिलिट्री हिस्ट्री* (कैम्ब्रिज़ः कैम्ब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस).

लाल, के. एस., (1980) *हिस्ट्री ऑफ द खलज़ीज़* (नई दिल्लीः मंशीराम मनोहरलाल).

निज़ामी, के. ए., (2002 [नवीन संस्करण]) *रिलीज़न एंड पॉलीटिक्स इन इंडिया ड्युरिंग द थर्टीन्थ सेंचुरी* (नई दिल्लीः ऑक्सफ़ोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस).

कुरैशी, आई. एच., (1971) *द एडमिनिस्ट्रेशन ऑफ द सल्तनत ऑफ देल्ही* (नई दिल्लीः ओरिएंटल बुक्स रिप्रिंट कॉर्पोरेशन).

त्रिपाठी, आर. पी., (1959) *सम आस्पेक्ट्स ऑफ मुस्लिम एडमिनिस्ट्रेशन* (इलाहाबाद सेंट्रल बुक डिपो).

4.11 शैक्षणिक वीडियो

ऐस्टेबलिशमेंट एंड कन्सॉलिडेशन ऑफ द दिल्ली सल्तनत। इग्नू/एसओएसएस
https://www.youtube.com/watch?v=WCmtBgS1csM

टॉकिंग हिस्ट्री।2। दिल्लीः द फाउंडेशन ऑफ दिल्ली सल्तनत। राज्य सभा टीवी
https://www.youtube.com/watch?v=TJOsomraCaM

टॉकिंग हिस्ट्री।4। दिल्लीः द इरा ऑफ अलाउद्दीन खलज़ी। राज्य सभा टीवी
https://www.youtube.com/watch?v=PrTs0B1qQ9s

इकाई 5 दक्खनी राज्य*

इकाई की रूपरेखा

5.0 उद्देश्य

5.1 प्रस्तावना

5.2 दक्खन का भौगोलिक विन्यास

5.3 चार प्रमुख राज्य

5.3.1 यादव और काकतीय

5.3.2 पांड्य और होयसल

5.3.3 चार राज्यों के मध्य संघर्ष

5.4 दक्षिणी राज्य और दिल्ली सल्तनत

5.4.1 प्रथम चरणः अलाउद्दीन खलजी का दक्षिण आक्रमण

5.4.2 द्वितीय चरण

5.5 प्रशासन और अर्थव्यवस्था

5.5.1 प्रशासन

5.5.2 अर्थव्यवस्था

5.6 स्वतंत्र राज्यों का उदय

5.7 बहमनी शक्ति का उदय

5.8 विजय तथा सुदृढ़ीकरण

5.8.1 प्रथम चरणः 1347-1422

5.8.2 द्वितीय चरणः 1422-1538

5.9 *अफाक़ियों* और *दक्खनियों* के मध्य संघर्ष एवं सम्राट के साथ उनके संबंध

5.10 बहमनी साम्राज्य में केंद्रीय एवं प्रांतीय प्रशासन

5.11 बहमनी साम्राज्य में सैन्य संगठन

5.12 अर्थव्यवस्था

5.13 समाज और संस्कृति

5.14 सारांश

5.15 शब्दावली

5.16 बोध प्रश्नों के उत्तर

5.17 संदर्भ ग्रंथ

5.18 शैक्षणिक वीडियो

5.0 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के पश्चात् आपः

- दक्खन की राज्यव्यवस्था एवं अर्थव्यवस्था पर भौगोलिक विन्यास के पड़ने वाले प्रभाव को समझ सकेंगे,
- दक्षिण भारत की राजनैतिक व्यवस्था के विषय में जान सकेंगे,

* प्रो. अहमद रज़ा खान और प्रो. आभा सिंह, सामाजिक विज्ञान विद्यापीठ, इंदिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय, नई दिल्ली। यह इकाई हमारे पाठ्यक्रम ई.एच.आई.-03: *भारतः 8वीं सदी से 15वीं सदी तक*, खंड 7, इकाई 26 और 28 से ली गई है।

- दक्षिण भारत के राज्यों के आपसी संघर्ष की जानकारी प्राप्त कर सकेंगे,
- दक्षिण भारतीय राज्यों और दिल्ली सल्तनत के संबंधों का मूल्यांकन कर सकेंगे,
- इनके प्रशासन और अर्थव्यवस्था को समझ सकेंगे,
- दक्षिण में नये राज्यों के उदय की प्रक्रिया समझ सकेंगे,
- दक्खन एवं दक्षिण भारत की राजनीतिक व्यवस्थाओं और उसकी प्रकृति की जानकारी प्राप्त कर सकेंगे,
- बहमनी राज्य का उद्‌भव समझ सकेंगे,
- पुराने ***दक्खनी*** कुलीन वर्ग और नवीन कुलीन वर्ग (***अफाक़ी***) के मध्य संघर्ष और कैसे इसने अंत में बहमनी सल्तनत के पतन के मार्ग को प्रशस्त किया यह जान सकेंगे,
- बहमनी राज्य के प्रशासनिक ढाँचे की जानकारी प्राप्त कर सकेंगे, और
- बहमनी राज्य की सामाजिक और आर्थिक व्यवस्था तथा अन्य सांस्कृतिक पहलुओं की जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।

5.1 प्रस्तावना

इस इकाई में हम तेरहवीं-चौदहवीं शताब्दियों में दक्खन तथा दक्षिण भारत में राजनीतिक व्यवस्थाओं के उदय की चर्चा करेंगे। इस इकाई के अध्ययन में दक्षिण भारत से अभिप्राय विन्ध्य पर्वत श्रृंखला के समस्त दक्षिणी क्षेत्र से है। इसमें दक्खन और प्रायद्वीपीय दक्षिण सम्मिलित हैं।

तेरहवीं शताब्दी से पंद्रहवीं शताब्दी तक के दक्षिण भारतीय इतिहास के दो चरण बहुत स्पष्ट हैं:

i) तेरहवीं शताब्दी के प्रारंभिक घटनाक्रम में चोल और चालुक्य राज्यों का विघटन सर्वाधिक महत्वपूर्ण है। इन राज्यों के अवशेषों से चार स्वतंत्र राज्य अस्तित्व में आये। इनमें से पांड्य और होयसल राज्य इस क्षेत्र के दक्षिण में स्थित थे तथा काकतीय और यादव राज्य उत्तरी क्षेत्र में स्थित थे। यह राज्य लगभग सौ वर्ष तक अस्तित्व में बने रहे।

ii) दूसरे चरण का प्रारंभ चौदहवीं शताब्दी के दूसरे चतुर्थांश से (1325 से 1350 के मध्य) माना जा सकता है। इस समय इस क्षेत्र में विजयनगर और बहमनी नामक दो शक्तिशाली राज्यों का उदय हुआ। लगभग अगले दो सौ साल तक यह दोनों राज्य लगभग सम्पूर्ण दक्षिण में अपना प्रभुत्व बनाए रहे।

प्रथम चरण के काल में हम चारों राज्यों के इतिहास, उनके आपसी संबंधों, उनकी राज्य व्यवस्था, समाज और अर्थव्यवस्था का अध्ययन करेंगे। दूसरे चरण में हम उन राज्यों के दिल्ली सल्तनत के साथ संबंधों का अध्ययन करेंगे।

पुनःश्च, चौदहवीं शताब्दी के प्रारम्भ में नवीन राजनैतिक संरचनाओं का उदय हुआ। दिल्ली सल्तनत के दक्खनी अधिपत्य के ह्रास के कारण शक्तिशाली बहमनी राज्य का उदय हुआ; वही दक्षिण भारत में महान् विजयनगर साम्राज्य उदित हुआ।

इस इकाई में हम दक्खन तथा दक्षिण भारत में तेरहवीं शताब्दी में राजनीतिक संरचनाओं तथा दक्खन में बहमनी राज्य के उदय पर चर्चा करेंगे। इस प्रकार इस इकाई में हम दक्खन में तुगलक शासन के अंत और इसके स्थान पर बहमनी सल्तनत के सत्तारूढ़ होने का आकलन करेंगे। इसमें बहमनी साम्राज्य के सदृढ़ीकरण, प्रशासनिक व्यवस्था, और संस्कृति का ब्यौरा भी दिया जाएगा। वहीं **इकाई 6** और **7** में अलग से विजयनगर साम्राज्य के उदय तथा सुदृढ़ीकरण पर चर्चा की गई है।

हम अपनी चर्चा क्षेत्र के भौगोलिक विन्यास की समझ से प्रारम्भ करते हैं।

5.2 दक्खन का भौगोलिक विन्यास[1]

राजनैतिक-आर्थिक विकास में भौगोलिक व्यवस्था एक अत्यंत निर्णायक भूमिका निभाती है। दक्षिण भारत तथा दक्खन के कुछ मूल भौगोलिक लक्षणों ने इस क्षेत्र के विकासक्रम को प्रभावित किया।

1 यह भाग इग्नू पाठ्यक्रम **ई.एच.आई.-04**: *भारत 16वीं शताब्दी से मध्य 18वीं शताब्दी तक* की **इकाई 3**, **भाग 3.1** से लिया गया है।

मोटे तौर पर नर्मदा नदी के दक्षिण में स्थित समस्त क्षेत्र दक्षिण भारत कहलाता है। हालांकि, तकनीकी तौर पर यदि कहा जाए तो यह क्षेत्र दो बड़े इलाकों से मिलकर बना है, दक्खन तथा दक्षिण भारत। यहाँ हम केवल दक्खन के भौगोलिक विन्यास पर ही चर्चा करेंगे, दक्षिण भारत, तुंगभद्रा दो*आब* के दक्षिणी क्षेत्र पर विस्तार से **भाग 6.2** में चर्चा की गई है।

दक्खन, उत्तर तथा उत्तर-पूर्व में नर्मदा एवं महानदी नामक नदियों से घिरा हुआ है, जबकि नीलगिरी की पहाड़ियाँ और पेन्नार नदी इसकी दक्षिणी सीमा निर्धारित करती हैं। पश्चिम तथा पूर्व में, दोनों तरफ लंबे समुद्री तट सहित पश्चिमी एवं पूर्वी घाट मौजूद हैं। विशाल पश्चिमी समुद्री तट तथा सहयाद्रि पहाड़ियों के बीच का क्षेत्र कोंकण कहलाता है, जो कि दक्खन का एक उप-क्षेत्र है। समूची पट्टी घने जंगलों से भरी हुई है और भूमि पर्याप्त रूप से उपजाऊ नहीं है। सामरिक दृष्टि से इस क्षेत्र का भारी महत्व है। इसलिए यहाँ पर अनेक मजबूत दुर्गों का निर्माण किया गया था। चौल तथा दाभोल के मशहूर बंदरगाह भी इसी क्षेत्र में पड़ते हैं। यहाँ पहुँचना कठिन होने की वजह से स्थानीय सरदारों (*देशमुखों*) की निष्ठाएँ अक्सर बदलती रहीं और कई बार वह केंद्रीय सत्ता की भी अवहेलना करते रहे। आप यह पाएंगे कि मराठों के उदय में भी निर्णायक भूमिका भौगोलिक स्थिति ने ही निभाई थी। इसके पहाड़ी एवं जंगली क्षेत्रों के कारण दक्खन राज्यों में घुसपैठ करना कठिन था। किंतु दक्षिण गुजरात की तरफ से उपजाऊ बगलाना क्षेत्र से होकर यहां आसानी से पहुँचा जा सकता था। इसी वजह से गुजराती शासकों द्वारा बार-बार इस क्षेत्र पर धावे बोले गए। अंततः 16वीं शताब्दी में पुर्तगालियों ने इस क्षेत्र के संतुलन को बदल दिया।

मामूली भिन्नताओं के साथ गोवा बहमनी तथा विजयनगर राज्यों के बीच की सीमाएँ निर्धारित करता था।

मध्य दक्खन (अजंता पर्वत श्रेणियों से नीलगिरी पहाड़ियों तथा पालाघाट दर्रे तक) में काली मिट्टी मौजूद है जो कि कपास की खेती के लिए उत्कृष्ट है। ताप्ती, वर्धा तथा पेनगंगा नदियों के किनारे स्थित महाराष्ट्र के खानदेश तथा बरार क्षेत्र उपजाऊ भूमि के लिए मशहूर थे। इस कारण खेरला तथा माहुर पर कब्जा करने के लिए मालवा तथा बहमनी शासकों के बीच निरंतर झड़पें हुईं।

कृष्णा एवं गोदावरी के बीच समतल मैदानी क्षेत्र स्थित है जो कि 'कपास' की खेती के लिए उपजाऊ भूमि के लिए भी मशहूर है। उसके बाद तेलंगाना क्षेत्र पड़ता है। उसकी भूमि रेतीली है और उसमें नमी को बनाए रखने की क्षमता नहीं है। नदियों में भी पूरे वर्ष पानी नहीं रहता है। इसके परिणामस्वरूप जलाशयों से सिंचाई करना जरूरी हो गया। कृष्णा घाटी के साथ कुरनूल की चट्टानें स्थित हैं जहाँ पर हीरों की मशहूर गोलकुंडा खदानें स्थित थीं। दक्षिणी दक्खन का पठार (जिसका कुछ हिस्सा आधुनिक कर्नाटक राज्य में पड़ता है) भी खनिज स्रोतों (तांबा, सीसा, ज़िंक, लोहा, सोना, मैंगनीज़, इत्यादि) में समृद्ध है।

5.3 चार प्रमुख राज्य

चोल और चालुक्य राज्यों के विघटन के परिणामस्वरूप दक्षिण में अनेक छोट-छोटे राजतंत्रों और राज्यों का उदय हुआ। इनमें प्रमुख चार राज्य निम्नलिखित थेः

i) यादव

ii) काकतीय

iii) पांड्य

iv) होयसल

5.3.1 यादव और काकतीय

तेरहवीं शताब्दी में यादव और काकतीय राज्यों ने एक बड़े क्षेत्र में अपना प्रभुत्व स्थापित कर लिया। यह क्षेत्र आधुनिक आंध्र प्रदेश और लगभग सम्पूर्ण दक्खन तक फैला हुआ था।

यादव

लगभग नवीं शताब्दी सी ई से हमें यादव वंश के इतिहास के विषय में जानकारी उपलब्ध है। लगभग 300 वर्षों तक यह वंश राष्ट्रकूट और चालुक्य राज्यों के सामन्त के रूप में शासन करता

रहा। चालुक्यों के पतन के बाद वे एक बड़े क्षेत्र में स्वतंत्र शासक के रूप में अस्तित्व में आए।

इस वंश के भील्लमा पंचम ने, जो चालुक्य शासक सोमेश्वर चतुर्थ का सामंत था, 1187 सी ई में स्वतंत्र स्थिति प्राप्त की और यादव वंश की नींव डाली। सिंहन के शासन काल (1210-46) में यादव राज्य की सीमाओं में दक्षिणी गुजरात, पश्चिमी मध्य प्रदेश और बरार, महाराष्ट्र के कुछ भाग, कर्नाटक, आधुनिक हैदराबाद के पश्चिमी भाग और मैसूर के उत्तरी क्षेत्र सम्मिलित थे। कृष्ण (1246-60) तथा रामचन्द्र (1271-1311) यादव वंश के अन्य महत्वपूर्ण राजा थे। 1311-12 में राजा रामचंद्र की मृत्यु के बाद यादव वंश का अन्त हो गया।

काकतीय

काकतीय कल्याणी के चालुक्यों के सामन्त थे। लगभग 1162 में काकतीय रुद्रदेव (प्रताप रुद्रदेव प्रथम), ने चालुक्य शासक तैलपा तृतीय को पराजित करके काकतीय वंश की नींव डाली। लगभग 1185 में वेलनन्ती राजाओं को पराजित करके उसने कुरनूल जिला प्राप्त किया। गणपति (1199-1262), रुद्रम्बे (1262-95) तथा प्रताप रुद्र द्वितीय (1295-1326) इस वंश के अन्य महत्वपूर्ण शासक थे। उनका शासन आन्ध्र के अधिकांश क्षेत्र गोदावरी, कांची, कुरनूल तथा कुडप्पा जिलों तक था। उलुग खां (मुहम्मद तुगलक) ने 1322 में लगभग सम्पूर्ण तेलंगाना को रौंद डाला और इस प्रकार काकतीय वंश का अंत हो गया।

5.3.2 पांड्य और होयसल

यह दोनों राज्य दक्खन से परे सम्पूर्ण प्रायद्वीपीय दक्षिण पर नियंत्रण बनाए हुए थे।

होयसल वंश

होयसल वंश का शासन आधुनिक कर्नाटक और तमिल क्षेत्र के अधिकांश भागों में फैला हुआ था। इस वंश का प्रथम स्वतंत्र शासक बल्लाल द्वितीय (1173-1220) था। 12वीं शताब्दी के अंत में स्वतंत्र राज्य के रूप में होयसल राज्य अस्तित्व में आया। 14वीं शताब्दी के प्रारंभ में इस राज्य का अंत हुआ। नरसिंह द्वितीय (1234-1263), नरसिंह तृतीय (1263-1291) तथा बल्लाल तृतीय (1291-1342) जैसे प्रमुख होयसल शासकों ने पांड्य और यादव शासकों के विरुद्ध संघर्ष किए।

पांड्य वंश

पांड्य शासन में आधुनिक तमिलनाडु के कुछ भाग और आधुनिक केरल का लगभग सम्पूर्ण भाग शामिल था। तेरहवीं शताब्दी के प्रारंभ में स्वतंत्र राज्य के रूप में पांड्य राज्य अस्तित्व में आया। चौदहवीं शताब्दी के आरंभ में इस राज्य का अन्त हुआ। इस वंश का प्रथम स्वतंत्र शासक मरवर्मन सुंदर पांड्य प्रथम (1216-1238) था। मरवर्मन सुंदर पांड्य द्वितीय (1238-1251), जटावर्मन सुंदर पांड्य प्रथम (1251-1268), मरवर्मन कुलशेखर पांड्य (1268-1310) तथा जटावर्मन सुंदर पांड्य द्वितीय तथा जटावर्मन वीर पांड्य इस वंश के अन्य महत्वपूर्ण शासक थे।

5.3.3 चार राज्यों के मध्य संघर्ष

इस सम्पूर्ण काल में यह चारों राज्य एक दूसरे के विरुद्ध किसी न किसी युद्ध में उलझे रहते थे। यहाँ इन युद्धों की विस्तृत चर्चा के स्थान पर हम बहुत संक्षेप में इन युद्धों की प्रकृति की चर्चा करेंगे:

- काकतीय, होयसल और पांड्य राज्यों के बीच चोल राज्य के अवशेषों पर नियंत्रण के लिए लगातार संघर्ष रहता था।
- यादव और काकतीय वंश के बीच भी लगातार युद्ध चलता रहता था परन्तु कोई भी दूसरे को निर्णायक रूप से पराजित नहीं कर पाया।
- इसी प्रकार के संघर्ष यादव, होयसल, काकतीय तथा पांड्य राज्यों के बीच में भी थे।
- इन राज्यों के आपसी संघर्षों के अतिरिक्त कई अन्य युद्ध भी हुए। दक्षिण भारत के चार अत्यधिक महत्वपूर्ण आक्रमण यादव और पांड्य शासकों ने किए। यादव वंश के संस्थापक भील्लमा पंचम ने मालवा और गुजरात पर आक्रमण किए। सिंहन और रामचन्द्र जैसे यादव शासकों ने भी मालवा (1215) और गुजरात पर आक्रमण किए परन्तु कोई निश्चित सफलता नहीं मिली।

- पांड्य शासक मरवर्मन कुलशेखर ने लंका के विरुद्ध आक्रमण किया (1283-1302)। लंका के राजा पराक्रमबहा तृतीय (1302-1310) ने पांड्य राजा के समक्ष समर्पण कर दिया। इसके पश्चात् दोनों के बीच शांति बनी रही।

5.4 दक्षिणी राज्य और दिल्ली सल्तनत

13वीं शताब्दी के अन्त तक उत्तर भारत में अपनी स्थिति मजबूत करने के बाद दिल्ली सुल्तानों ने 14वीं सदी के प्रारंभ में दक्षिण की ओर दृष्टि डाली।

इकाई 2 में आप खलजी और तुगलक वंशों के अधीन दक्षिण और दक्खन में सल्तनत के विस्तार का विस्तृत अध्ययन कर चुके हैं। यहाँ हमारे अध्ययन का प्रमुख केंद्र बिंदु दिल्ली सुल्तानों की विस्तारवादी नीति और दक्खन की राजनीति पर इसके प्रभाव का अध्ययन करना है। दक्षिण के राज्यों के सल्तनत से संबंधों का अध्ययन हम दो चरणों में करेंगे:

i) अलाउद्दीन खलजी के शासनकाल में, और

ii) अलाउद्दीन की मृत्यु के समय से मुहम्मद तुगलक के शासन के अन्त तक।

5.4.1 प्रथम चरण: अलाउद्दीन खलजी का दक्षिण आक्रमण

जलालउद्दीन खलजी के शासनकाल (1290-96) में उसके भतीजे अलाउद्दीन ने यादव राज्य की राजधानी देवगिरि पर आक्रमण किया। यादव शासक राजा रामचन्द्र पराजित हुआ और अलाउद्दीन ने भारी लूट प्राप्त की। राजा रामचन्द्र ने प्रत्येक वर्ष एक बड़ी राशि भेंट स्वरूप देने का प्रण किया। इसके बाद लगभग 10 वर्ष तक दिल्ली सल्तनत की ओर से दक्षिण पर कोई आक्रमण नहीं हुआ। अलाउद्दीन के सत्ता ग्रहण करने के पश्चात् दक्षिण पर आधिपत्य स्थापित करने के लिए एक निश्चित योजना बनाई गई। 1306 से 1312 तक आक्रमणों की एक श्रृंखला के बाद दक्षिण के चारों प्रमुख राज्य पूर्णतः पराजित किए जा सके।

i) देवगिरि

अलाउद्दीन ने 1306-07 में अपने विश्वसनीय सेनानायक मलिक काफूर को दक्षिण आक्रमण के लिए नियुक्त किया। आक्रमण का तात्कालिक कारण यादव राजा रामचन्द्र द्वारा वार्षिक भेंट-राशि देना बन्द करना था। राजा पुनः पराजित हुआ और काफूर राजा को बन्दी बनाकर दिल्ली ले आया। राजा ने सुल्तान को वार्षिक भेंट राशि देने का वायदा किया। सुल्तान ने उसको राज्य वापस करके उसे पुनः राजा के पद पर स्थापित किया।

ii) वारंगल

मलिक काफूर ने 1309 में काकतीय राजधानी वारंगल पर आक्रमण किया। अलाउद्दीन का प्रमुख उद्देश्य काकतीय राजा को पराजित करना था। इतिहासकार बरनी सुल्तान द्वारा काफूर को दिए गए निर्देशों का निम्नलिखित शब्दों में वर्णन करता है:

> तुम एक दूरस्थ देश में जा रहे हो, वहाँ अधिक दिन नहीं रुकना। तुम अपना पूरा ध्यान वारंगल को जीतने और राजा रुद्रदेव को पराजित करने पर केन्द्रित करना। अगर राजा अपना खजाना, हाथी और घोड़े तुम्हें देने को तैयार हो जाए और भविष्य में वार्षिक भेंट राशि देने का वायदा करे तो यह व्यवस्था स्वीकार कर लेना।

आक्रमण में पराजित होने के बाद राजा ने अपना खज़ाना काफूर को सौंप दिया और वार्षिक भेंट राशि देने का वायदा किया।

iii) द्वारसमुद्र

अगला आक्रमण होयसल राज्य की राजधानी द्वारसमुद्र पर हुआ (1310-11)। वहाँ के शासक बल्लाल देव ने मामूली संघर्ष के बाद समर्पण कर दिया। अन्य दोनों दक्षिणी राज्यों की भाँति होयसल राज्य से युद्ध संधि हो गई।

iv) मदुरा

मदुरा में राज्य पर नियंत्रण करने के लिए दो भाइयों सुंदर पांड्य और वीर पांड्य के बीच आपसी

संघर्ष चल रहा था। इस संघर्ष का लाभ उठाकर काफूर ने उस पर आक्रमण किया। वीर पांड्य ने सुंदर पांड्य को पराजित कर उसे राज्य से निकाल दिया और सिंहासन पर अधिकार कर लिया। सुंदर पांड्य ने अलाउद्दीन खलजी से मदद माँगी। होसयल राज्य को पराजित करने के बाद मलिक काफूर मदुरा पहुँचा और वीर पांड्य को पराजित कर लूट में भारी धनराशि प्राप्त की।

मलिक काफूर ने 1312 में यादव राजधानी पर पुनः आक्रमण किया। आक्रमण का प्रमुख कारण यह था कि राजा राम देव की मृत्यु के बाद उसके पुत्र शंकर देव ने दिल्ली सुल्तान को भेंट राशि देना बंद कर दिया था। शंकर देव पराजित हुआ और कृष्णा तथा तुंगभद्रा नदी के बीच के सम्पूर्ण क्षेत्र पर काफूर ने अधिकार कर लिया। जब अलाउद्दीन ने काफूर को दिल्ली वापस बुलाया तो वह दक्षिण के विजित क्षेत्र आइन-उल मुल्क को सौंपकर चला गया।

आइये हम अलाउद्दीन की दक्षिण नीति की प्रमुख विशेषताओं पर ध्यान दें:

- लगभग सम्पूर्ण दक्षिण भारत बिना किसी विशेष प्रतिरोध के जीत लिया गया।
- अलाउद्दीन दक्षिण भारत को अपने राज्य में सम्मिलित करने के पक्ष में नहीं था क्योंकि दिल्ली से इस दूरस्थ क्षेत्र पर नियंत्रण रखना मुश्किल था। दक्षिण राज्यों को परास्त करने के बाद उन पर दबाव डाला गया कि वे दिल्ली सुल्तान की अधीनता स्वीकार कर लें और निश्चित धन वार्षिक भेंट के रूप में दिल्ली सुल्तान को भेजें। वहाँ के राजवंशों को हटाने का कोई प्रयास नहीं किया गया।
- आर्थिक रूप से दक्षिण भारत की विजयों से दिल्ली सुल्तानों को काफी लाभ हुआ और भारी धन-राशि प्राप्त हुई।

5.4.2 द्वितीय चरण

अलाउद्दीन खलजी की मृत्यु के बाद दक्षिण के राज्यों ने दिल्ली सल्तनत की अधीनता स्वीकार करने से इन्कार कर दिया और वार्षिक भेंट राशि देना भी बंद कर दिया। परिणामस्वरूप दिल्ली सल्तनत की ओर से दक्षिण पर आक्रमण का नया क्रम शुरू हुआ। साथ ही सल्तनत की दक्षिण नीति में भी परिवर्तन आया।

अलाउद्दीन ने अपने अन्तिम दिनों में दक्षिण के राज्यों का उत्तरादायित्व मलिक काफूर को सौंप दिया था। उसकी मृत्यु के बाद उसके उत्तराधिकारी मुबारक खलजी (1316-1320) ने देवगिरि पर आक्रमण किया और विशाल क्षेत्र अपने राज्य में मिला लिया। सुल्तान ने वहाँ अपने अधिकारी नियुक्त किए। इन अधिकारियों को भू-क्षेत्र (***इक्ता***) प्रदान किए गए। इन अधिकारियों को *सादाह अमीर* अथवा 100 के सेनानायक कहा गया। इन *अमीरों* का कार्य अपने क्षेत्र से भू-राजस्व वसूल करना और शांति व्यवस्था बनाए रखना था। साथ ही उसने इन *अमीरों* को वारंगल पर आक्रमण करने का आदेश दिया। वारंगल का राजा प्रताप रुद्र देव पराजित हुआ और उसके राज्य के कुछ क्षेत्र भी सल्तनत में सम्मिलित कर लिए गए।

मुबारक खलजी की मृत्यु के बाद वारंगल ने पुनः वार्षिक भेंट राशि देना बंद कर दिया। नए सुल्तान ग़ियासुद्दीन तुगलक ने अपने पुत्र उलुग खां (मुहम्मद तुगलक) के नेतृत्व में एक विशाल सेना तेलंगाना पर आक्रमण करने भेजी। कुछ प्रारंभिक असफलताओं के बाद उलुग खां वारंगल के राजा प्रताप रुद्र देव को पराजित करने में सफल हुआ। अब तेलंगाना का सम्पूर्ण क्षेत्र दिल्ली सल्तनत में मिला लिया गया। उलुग खां ने इस सम्पूर्ण क्षेत्र को प्रशासनिक इकाइयों में बाँट दिया और *सादाह अमीरों* के नियंत्रण में दे दिया। ये *अमीर* सल्तनत के प्रति प्रत्यक्ष रूप से उत्तरदायी थे। माबार भी 1323 में विजित किया गया। शरीफ जलालउद्दीन इसका गवर्नर नियुक्त किया गया और मदुरा उसका प्रशाासनिक केंद्र। अब उलुग खां सुल्तान बना और मुहम्मद तुगलक की उपाधि धारण की। उसने यह देखा कि उसके राज्य के दक्षिणी क्षेत्रों की प्रशासनिक व्यवस्था अकुशल है अतः उसने दक्षिण में देवगिरि को दूसरी राजधानी (1327-1328) के रूप में विकसित करने का निर्णय किया। देवगिरि का नाम दौलताबाद रखा गया। बड़ी संख्या में *अमीरों,* व्यापारियों, विद्वान व्यक्तियों तथा अन्य जनमानस को दौलताबाद में बसने के लिए प्रोत्साहित किया गया।

इस तरह हम देखते हैं कि मुहम्मद तुगलक की दक्षिण नीति खलजी से बिल्कुल अलग थी। तुगलक

ने दक्षिण के बड़े भाग को अपने राज्य में मिलाकर वहाँ सल्तनत के ढाँचे पर भू-राजस्व व्यवस्था और प्रशासन लागू किया।

बोध प्रश्न-2

1) चोल और चालुक्य साम्राज्यों के अवशेषों पर बनने वाले नए राज्यों के नाम और उनके क्षेत्रीय विस्तार बताइए।

.....

.....

.....

2) निम्नलिखित कथनों पर सही (✓) अथवा गलत (×) का चिह्न लगाइए।

i) पांड्यों के सामन्त यादव थे। ( )

ii) प्रताप रुद्र प्रथम काकतीय राज्य का संस्थापक था। ( )

iii) आधुनिक आंध्र प्रदेश के अधिकांश भाग पांड्य राज्य में थे। ( )

3) अलाउद्दीन खलजी की दक्षिण नीति में तुगलकों द्वारा क्या परिवर्तन किए गए। लगभग तीन पंक्तियों में लिखिए।

.....

.....

.....

5.5 प्रशासन और अर्थव्यवस्था

यहाँ, इस इकाई में हम प्रशासनिक व आर्थिक क्षेत्र के उन परिवर्तनों की संक्षिप्त में चर्चा करेंगे जो चार दक्षिणी राज्यों की स्थापना के बाद इनमें दिखाई पड़ते हैं।

5.5.1 प्रशासन

इन राज्यों की प्रमुख राजनीतिक संस्था राजतंत्र थी। इसके साथ ही सामन्ती व्यवस्था भी सामान्यतः प्रचलित थी। दक्खन के क्षेत्र में (यादव व काकतीय राज्यों में) प्रान्तीय प्रमुखों के रूप में सफल सैनिक अधिकारियों को नियुक्त किया जाता था जिन्हें ***नायक*** कहा जाता था। यह *नायक* छोटे स्तर के सामन्तों पर नियंत्रण रखने, भू-राजस्व वसूल करने और कानून व्यवस्था बनाए रखने का कार्य करते थे। एक स्रोत के अनुसार राजा सामन्तों और *नायकों* को केवल छोटे गाँव अनुदान में देते थे। बड़े गाँवों की आय सेना के रख-रखाव के लिए अलग रखी जाती थी। काकतीय राजा *नायकों* की बढ़ती शक्ति के प्रति हमेशा सशंकित रहते थे। वे *नायकों* को अधिक समय तक एक स्थान पर नहीं रहने देते थे ताकि वे स्थानीय स्तर पर अधिक शक्तिशाली न हो सकें। विजयनगर साम्राज्य की अत्यधिक महत्वपूर्ण *नायनकार* व्यवस्था संभवतः इसी समय प्रारंभ हुई थी।

राज्य के विभिन्न विभागों की देख-रेख के लिए कई मंत्री नियुक्त किए गए थे। प्रशासन की सबसे छोटी इकाई गाँव थे। गाँवों की प्रशासनिक व्यवस्था का उत्तरदायित्व एक ग्राम प्रमुख के नेतृत्व में *ग्राम पंचायत* पर था। गाँवों के समूह भी एक प्रशासनिक इकाई में संघठित किए जाते थे (काकतीय राज्य में इन्हें *स्थल* कहा जाता था तथा *स्थल* के समूह ***नाडु*** कहलाते थे)। विभिन्न राज्यों में यह प्रशासनिक इकाइयों और इनके प्रमुख भिन्न-भिन्न नामों से जाने जाते थे। ***ब्रह्मदेय*** व्यवस्था इस काल में भी जारी रही तथा प्रशासन और अर्थव्यवस्था में मंदिरों की भूमिका भी पूर्ववत बनी रही।

5.5.2 अर्थव्यवस्था

इस काल में भी कृषि उत्पादनों से प्राप्त कर राज्य की आय का मुख्य साधन था। राज्य द्वारा लगातार अधिक से अधिक भूमि को कृषि के अधीन लाने का प्रयास किया जाता था। सिंचाई के लिए तालाब (जिन्हें काकतीय राज्य में *समुद्रम* कहा जाता था) और बांध बनाए जाते थे। राज्य द्वारा निर्धारित भू-राजस्व की दर के विषय में निश्चित जानकारी उपलब्ध नहीं है। दौलताबाद में दिल्ली

सल्तनत का नियंत्रण स्थापित हो जाने के बाद भू-राजस्व व्यवस्था में कई नई व्यवस्थाएँ लागू की गईं (देखें **भाग 5.7** और **5.12**)। चरागाहों, खानों और जंगलों पर राज्य का स्वामित्व था और राज्य इनसे कर वसूल करता था। चुंगी और व्यापार से प्राप्त कर राज्य की आय के अन्य साधन थे (इन्हें काकतीय राज्य में *सुन्कम* कहा जाता था)। काकतीय राज्य में गाड़ी (*बन्दी*), दास (*बनीसा*) और घोड़े रखने पर एक अलग कर वसूल किया जाता था। पांड्य राज्य मोती वाली सीपों के लिए प्रसिद्ध था। मार्कोपोलो ने भी इसके विषय में लिखा है। समुद्र से मोती निकालने वाले अपने लाभ का दस प्रतिशत राज्य को देते थे। अरब व्यापारियों तथा बाद के यूरोपीय व्यापारियों के आगमन के बाद दक्षिण भारत की व्यापारिक गतिविधियों में तेजी आई। इन व्यापारिक गतिविधियों से प्राप्त आय के कारण दक्षिण भारत की समृद्धि काफी बढ़ गई। व्यापारी संघ (गिल्ड) महत्वपूर्ण भूमिका निभाते थे। वे राज्य की कर नीति तथा अन्य आर्थिक नीतियाँ निर्धारित करने में मदद करते थे। सम्पूर्ण दक्षिण भारत में सर्वाधिक महत्वपूर्ण व्यापारिक समुदाय **चेट्टी** था।

5.6 स्वतंत्र राज्यों का उदय

जैसा कि पहले बताया जा चुका है चौदहवीं शताब्दी के द्वितीय चतुर्थांश में (1325-50) दक्षिण भारत में तीन स्वतंत्र राज्यों का उदय हुआः

i) माबार

ii) बहमनी

iii) विजयनगर

इन राज्यों का उदय एक लंबी उथल-पुथल और अस्थिरता के काल के बाद हुआ। इन राज्यों के उदय में दक्षिण के राज्यों और दिल्ली सल्तनत के संपर्क का भी योगदान था। इकाई के इस भाग में हम माबार के स्वतंत्र राज्य के उदय की चर्चा करेंगे, वहीं विजयनगर राज्य के उदय की चर्चा **इकाई 6** और **7** में की जाएगी।

माबार

जैसा कि आपने ऊपर पढ़ा दिल्ली सल्तनत द्वारा 1323 में माबार विजय किया गया और शरीफ जलालउद्दीन एहसन इसका गवर्नर नियुक्त किया गया। कुछ वर्षों तक जलालउद्दीन दिल्ली सुल्तानों के प्रति वफादार बना रहा। परन्तु दिल्ली से दूरी और संचार संपर्क के साधनों की कमी का फायदा उठाकर 1333-34 में उसने स्वयं को स्वतंत्र घोषित कर दिया और जलालउद्दीन एहसन शाह की उपाधि धारण की। इस समय तुगलक सुल्तान अपने राज्य के अन्य कई भागों की समस्याओं में उलझा हुआ था अतः माबार को वापस लेने के लिये कोई गंभीर प्रयास नहीं किया गया। यह राज्य लगभग चालीस वर्षों तक स्वतंत्र रह सका। अंततः 1378 में विजयनगर साम्राज्य ने इसे जीतकर अपने राज्य में मिला लिया और इसकी स्वतंत्रता का अंत कर दिया।

बोध प्रश्न-2

1) दक्षिण के राज्यों में *नायकों* की भूमिका का उल्लेख कीजिए।

.....

.....

.....

2) दक्षिण के राज्यों की अर्थव्यवस्था की प्रमुख विशेषताएँ क्या थीं?

.....

.....

.....

5.7 बहमनी शक्ति का उदय

आइए हम बहमनी राज्य की स्थापना से ठीक पहले के दक्खन में राजनीतिक स्थिति का सर्वेक्षण करें। दक्खन के अधिकांश भागों पर विजय और उनका दिल्ली सल्तनत में अधिग्रहण मुहम्मद

तुगलक के काल में संपन्न हुआ। उसने दक्खनी प्रदेश में विस्तृत प्रशासनिक व्यवस्था कायम की। उलुग़ खान को प्रदेश का विशिष्ट गर्वनर अथवा 'वायसरॉय' नियुक्त किया गया। संपूर्ण प्रदेश को 23 प्रांतों अथवा ***इक्लीमों*** में विभाजित किया गया। इनमें से अधिक महत्वपूर्ण जाजनगर (ओडिशा), मरहट (महाराष्ट्र), तेलंगाना, बीदर, कांपिली और द्वारसमुद्र थे। बाद में, मालवा भी दक्खन के गवर्नर के अधीन किया गया। प्रत्येक *इक्लीम* को कई ग्रामीण जिलों (***शिक़***) में विभाजित किया गया। राजस्व वसूली के लिए प्रत्येक *शिक़* को *हज़ारी* (एक हज़ार) और *सदी* (एक सौ) में विभाजित किया गया। मुख्य अधिकारी *शिक़दार,* ***वली***, ***अमीरान-ए हज़ाराह*** और *अमीरान-ए सादाह* थे। राजस्व अधिकारी *मुतसर्रिफ, कारकुन, चौधरी,* इत्यादि कहलाते थे।

इस व्यवस्था में सर्वाधिक शक्तिशाली व्यक्ति दक्खन का 'वायसरॉय' होता था जो वास्तव में 23 प्रांतों वाले विशाल प्रदेश का स्वामी होता था। अन्य महत्वपूर्ण व्यक्ति जिसके पास विस्तृत अधिकार थे, *अमीरान-ए सादाह* होता था जिसके अधीन सौ गाँव होते थे।

इस विस्तृत प्रशासनिक व्यवस्था के बावजूद सुल्तान का वास्तविक नियंत्रण निम्नलिखित कारणों से कमजोर थाः

- दिल्ली से दूरी,
- विषम भौगोलिक परिस्थितियाँ, और
- 'वायसरॉय' व अन्य अधिकारियों को प्राप्त विस्तृत अधिकार।

इन परिस्थितियों में दक्खन में नियुक्त अधिकारियों के केंद्र के साथ असंतोष से दिल्ली के साथ संबधों के बिगड़ने का खतरा रहता था।

संकट का सूत्रपात

दक्खन को तुगलक शासन से मुक्त कराने में *अमीरान-ए सादाह* की भूमिका महत्वपूर्ण थी। उच्च-वंश के इन अधिकारियों के सैन्य अधिकारियों व राजस्व संग्रहकर्ताओं के रूप में दोहरे कर्तव्य थे। उनका अपने प्रदेश के लोगों के साथ सीधा संबंध था। दक्षिण में विद्रोह की झड़ी लगने पर मुहम्मद तुगलक ने इसके लिए इन *अमीरों* द्वारा हासिल विस्तृत अधिकारों को जिम्मेदार पाया। इसके फलस्वरूप उसने उन्हें दबाने की नीति का अनुसरण किया जिसने बदले में दक्खन में तुगलक वंश के पतन की शुरुआत की। हम संक्षेप में इस काल में हुए विभिन्न विद्रोहों और एक नए राज्य व नए वंश के उदय में उनके योगदान की चर्चा करेंगे।

केंद्र के विरुद्ध सबसे पहला विद्रोह 1327 में गुलबर्गा में सागर में हुआ। इसका नेतृत्व स्थानीय सरदारों व *अमीरों* के सहयोग से बहाउद्दीन गुरशस्प ने किया। विद्रोह को दबा दिया गया परंतु इसने राजधानी को दिल्ली की अपेक्षा अधिक केंद्रीय स्थान में स्थापित करने की जरूरत की ओर मार्ग प्रशस्त किया, जहाँ से दक्षिणी प्रांतों को नियंत्रित किया जा सके। इस प्रकार, मुहम्मद तुगलक ने 1328 में देवगिरि को साम्राज्य की दूसरी राजधानी बनाया। परंतु यह योजना असफल हुई क्योंकि उन्हीं सरदारों ने, जिन्हें दक्खन में केंद्रीय शक्ति मजबूत करने हेतु भेजा गया था, दिल्ली के नियंत्रण को कमजोर किया।

प्रथम बड़ा सफल विद्रोह माबार में हुआ। माबार के गवर्नर ने दौलताबाद के कुछ सरदारों के साथ सहयोग कर बगावत का झंडा उठाया। 1336-1337 में बीदर के गर्वनर ने भी विद्रोह किया परंतु इसे असफल कर दिया गया।

मुहम्मद तुगलक ने अनुभव किया कि दक्खन में तुगलक शासन के लिए खतरा उन पुराने कुलीन वंश के लोगों से है जिन्हें उसने दिल्ली से दक्षिण में भेजा था। इसके फलस्वरूप उसने इनको नए *अमीरों* द्वारा बदलने की नीति अपनाई जिससे यह उसके प्रति वफादार रहें। परंतु *अमीरान-ए सादाह* के विद्रोही रवैये की वजह से यह सफल नहीं हुआ और उन्होंने अंततः दक्खन में स्वतंत्र राज्य कायम करने में सफलता पाई।

1344 के लगभग दक्खन से मिलने वाली कुल राजस्व राशि में अत्यधिक गिरावट आई। मुहम्मद तुगलक ने दक्खन को 4 *शिक़ों* में विभाजित कर उन्हें *नव-मुसलमानों* के नेतृत्व में रखा जिन्हें बरनी 'नए *अमीर*' कहता है। इसे *अमीरान-ए सादाह* वर्ग द्वारा पसंद नहीं किया गया। 1345 में, गुजरात

में नियुक्त सरदारों ने षड्यंत्र में शामिल होकर दिल्ली के विरुद्ध विद्रोह किया। मुहम्मद तुगलक को गुजरात की इस बगावत में *अमीरान-ए सादाह* की भूमिका को लेकर शक हुआ। मुहम्मद तुगलक ने, दक्खन के वायसरॉय को रायचूर, गुलबर्गा, बीजापुर, इत्यादि के *अमीरों* को भड़ौच आने का निर्देश जारी करने को कहा। *अमीरान-ए सादाह* ने मुहम्मद तुगलक के हाथों कठोर सजा के डर से दक्खन में तुगलक शासन पर चोट करते हुए स्वयं को दौलताबाद में स्वतंत्र घोषित किया और देवगिरि के वरिष्ठ *अमीर* नासिरउद्दीन इस्माइल शाह को अपना सुल्तान चुना।

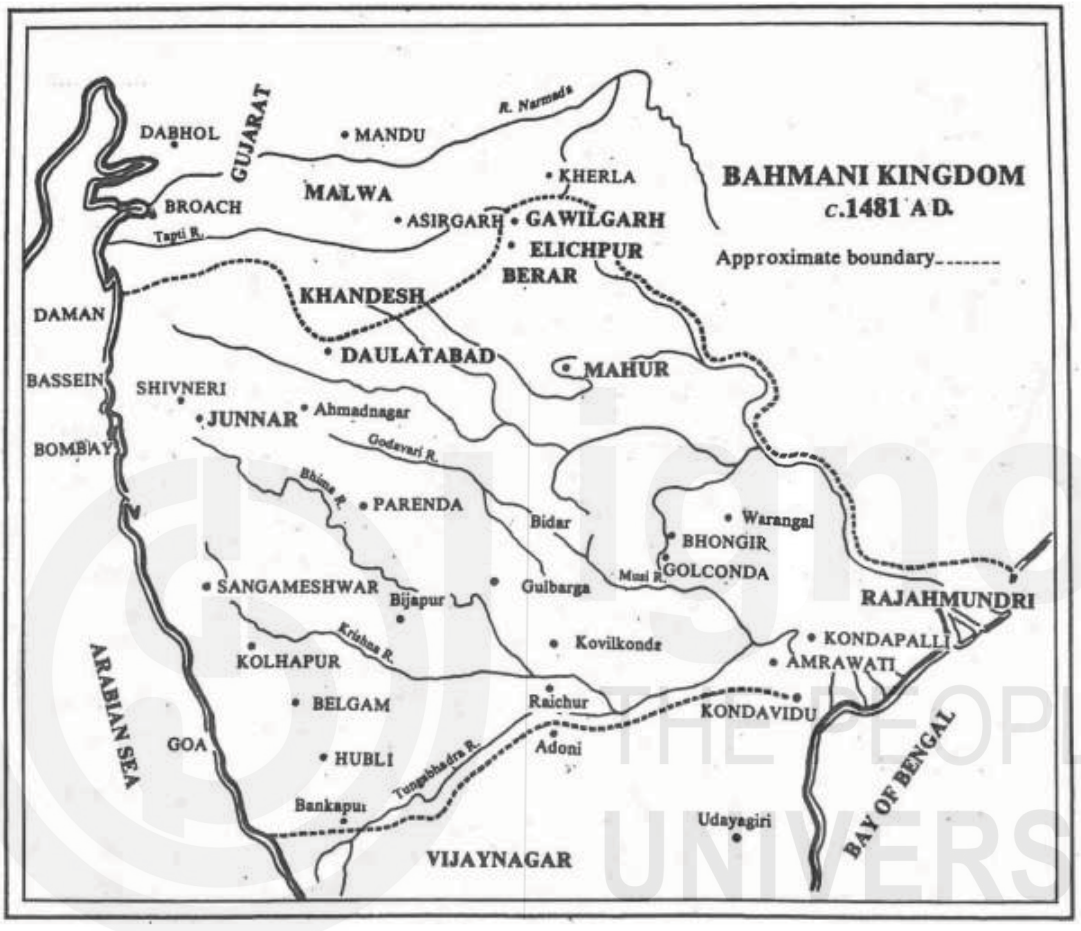

मानचित्र 5.1: बहमनी साम्राज्य, लगभग 1481 सी ई

स्रोत: ई.एच.आई.-03: *भारत: 8वीं सदी से 15वीं सदी तक, खंड 7,* इकाई 28, पृ. 56

दौलताबाद में अपने शासन की स्थापना के बाद, सर्वप्रथम गुलबर्गा को राज्य में मिलाया गया। दिल्ली सल्तनत का विरोध करने वालों में राजपूत, दक्खनी, मंगोल, गुजराती *अमीर* और तंजौर के राजा द्वारा भेजे गए सैनिक दल थे। अंत में उनकी जीत हुई। परंतु इस्माइल शाह ने हसन कंगू (अलाउद्दीन हसन बहमन शाह) के पक्ष में गद्दी छोड़ दी और इस प्रकार 1347 में दक्खन में बहमनी राज्य की नींव पड़ी। नए राज्य के अधीन दक्खन का संपूर्ण क्षेत्र था। अगले 150 वर्षों तक इस राजशाही ने दक्षिण की राजनीतिक गतिविधियों में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई।

5.8 विजय तथा सुदृढ़ीकरण

बहमनी राज्य के राजनीतिक विकास को दो चरणों में विभाजित किया जा सकता है: प्रथम चरण (1347-1422) में गतिविधियों का केंद्र गुलबर्गा था। इसी चरण में प्रमुख विजयें हासिल की गईं जबकि द्वितीय चरण (1422-1538) में राजधानी बीदर स्थानांतरित हो गईं, जो अपेक्षाकृत अधिक केंद्रीय स्थिति में थी और उपजाऊ थी। विजयनगर तथा बहमानी राज्यों के मध्य श्रेष्ठता के लिए संघर्ष इस काल में भी जारी रहा। इस चरण में *अफाक़ियों* और *दक्खनियों* के मध्य संघर्ष अपनी चरम सीमा पर पहुँचा।

5.8.1 प्रथम चरणः 1347-1422

1347-1422 के मध्य के युग में कई प्रमुख लड़ाइयाँ जीती गईं। आन्ध्र प्रदेश में कोटगीर, महाराष्ट्र में कन्दहार, कर्नाटक में कल्याणी, तेलंगाना में भोंगीर, गुलबर्गा (कर्नाटक) में सागर, खेमभवी, मालखेर और सेरम, महाराष्ट्र में मनरम, अक्कालकोट और महेन्द्री तथा मालवा (मध्य प्रदेश) में मांडू को इस काल में बहमनियों की अधीनता स्वीकार करनी पड़ी। बहमनी राज्य का फैलाव उत्तर में मांडू से दक्षिण में रायचूर तक तथा पूर्व में भोंगीर से पश्चिम में दभोल और गोवा तक था।

इस युग में तेलंगाना और विजयनगर के रायों से बहमनियों की मुख्य प्रतिद्वन्द्विता थी। तेलंगाना के राय के साथ एक मुठभेड़ के बाद गोलकोण्डा बहमनियों को सुपुर्द कर दिया गया। लेकिन, विजयनगर के साथ युद्ध निर्णायक सिद्ध नहीं हुआ और तुंगभद्रा *दोआब* पर दोनों शक्तियों का साझा प्रभुत्व जारी रहा।

शीघ्र ही चौदहवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में बहमनी शासक को विजयनगर के पक्ष में गोवा से हाथ धोना पड़ा। खेरला (मध्य प्रदेश) के राजा, जिसे बहमनी राज्य के खिलाफ विद्रोह करने के लिए विजयनगर, मालवा और खानदेश के शासकों से प्रोत्साहन मिलता था, के विरुद्ध बहमनी शासक के अभियान में राजा को समर्पण करने को विवश होना पड़ा। तेलंगाना में दो प्रतिद्वन्द्वियों वेमा (राजमुन्द्री के) और वेलामा (आन्ध्र-गुट) को क्रमशः विजयनगर और बहमनियों द्वारा सहयोग मिलता था। बहमनी शासकों ने तेलंगाना में घुसपैठ करने की कोशिश की परन्तु वेमाओं द्वारा उन्हें खदेड़ दिया गया। क्षेत्रीय हितों के लिए बहमनी शासकों ने एक आन्ध्र गुट के विरुद्ध दूसरे को समर्थन देना जारी रखा। पंद्रहवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में विजयनगर के खिलाफ संघर्ष में बहमनी शासकों की असफलताओं का एक मुख्य कारण वेलामाओं द्वारा पूर्व में दिए गए समर्थन को त्याग कर विजयनगर के साथ सहयोग करना था।

5.8.2 द्वितीय चरणः 1422-1538

1422-1538 के मध्य की अवधि की विशेषता राजधानी का गुलबर्गा से बीदर स्थानांतरित होना था। यह केन्द्र में और सामरिक महत्व की स्थिति में थी। तीन भाषाई क्षेत्रों (मराठी, कन्नड़ और तेलुगु) का यहाँ संगम होता था। इस पर आधिपत्य के लिए विजयनगर और बहमनी शासकों में संघर्ष इस दौर में भी जारी रहा। इस अवधि में वारंगल को बहमनी राज्य में मिलाया गया। मालवा और गुजरात के स्वतंत्र राज्यों (देखें, **इकाई 8**) को भी बहमनी शक्ति का आवेग सहना पड़ा। जहाँ एक ओर मालवा कमजोर साबित हुआ, दूसरी तरफ गुजरात की सल्तनत के साथ प्रमुख लड़ाइयों के बावजूद बहमनी शासकों को सफलता प्राप्त नहीं हुई। इस संघर्ष का एक महत्वपूर्ण परिणाम खानदेश की सल्तनत और बहमनी शासकों के बीच एक मोर्चे का, गुजरात से आने वाले खतरे का मुकाबला करने हेतु, निर्माण होना था।

1436-1444 के मध्य विजयनगर और बहमनी शासकों में दो मुठभेड़ें हुईं। पहली में बहमनी शासकों को हार माननी पड़ी। तथापि, दूसरी, फरिश्ता के अनुसार, अंततः बहमनी के लिए लाभदायक रही। संगमेश्वर और खानदेश के राजाओं ने भी अधीनता स्वीकार की। गुजरात के विरुद्ध युद्ध में बहमनी शासकों की हार का मुख्य कारण अमीरों के दो गुटों, *दक्खनियों* और *अफाकियों* (इनके बारे में आप इसके बाद वाले भाग में पढ़ेंगे) के मध्य आंतरिक संघर्ष था। *दक्खनियों* ने बहमनी शासकों के साथ विश्वासघात किया। इसके फलस्वरूप, खानदेश के विरुद्ध युद्ध में *दक्खनियों* को शामिल नहीं किया गया जिसके गंभीर परिणाम निकले। 1446 में खेरला और संगमेश्वर (कोंकण) के राजाओं पर प्रतिबंध लगाने के लिए *दक्खनियों* और *अफाकियों* को भेजा गया। इस अभियान के बड़े जटिल परिणाम निकले। *दक्खनियों* ने *अफाकियों* पर दोषारोपण किए जिसके फलस्वरूप उन्हें सजा दी गयी। *अफाकियों* ने दरबार में अपने पक्ष की वकालत कर पुनः प्रभुत्व प्राप्त किया। इस प्रकार के संघर्ष साम्राज्य के लिए हानिकारक थे। इसी युग में महमूद गावां ने बहमनी मंत्री के रूप में प्रसिद्धी प्राप्त की। ओडिशा के शासक ने तेलंगाना के राजा को साथ मिलाकर बहमनी शासक पर आक्रमण किया किन्तु महमूद गावां द्वारा खदेड़ दिये गये। मालवा के शासक ने भी बहमनी प्रदेशों जैसे, बीदर को हासिल करने के प्रयास किये। परन्तु, गुजरात द्वारा बहमनी शासक को समर्थन देने के कारण उसे लौटना पड़ा। मालवा का एक अन्य और प्रयास भी विफल रहा। महमूद गावां ने हुबली, बेलगाम

और बागलकोट पर विजय प्राप्त की। मुम्बई-कर्नाटक क्षेत्र बहमनी प्रभाव के अंतर्गत आ गया। गावां के समर्थ नेतृत्व में ओडिशा से गोवा (कोंकण) तक साम्राज्य का विस्तार हुआ। अंत में, महमूद गावां गुटों के संघर्ष का शिकार हुआ और *दक्खनी* गुट द्वारा उसकी हत्या हुई। इसके बाद राज्य विघटन के मार्ग पर चल पड़ा। विजयनगर के विरुद्ध किए गए युद्धों की समाप्ति विपत्तियों में हुई व अंततः 1538 तक बहमनी वंश की समाप्ति हुई और यह राज्य 5 प्रदेशों में विभाजित हुआ – बरार, बीदर, अहमदनगर, बीजापुर और गोलकुण्डा।

बोध प्रश्न-3

1) तुगलक शासन से दक्खन को मुक्त करने में *अमीरान-ए सादाह* की भूमिका का वर्णन कीजिए।

.....

.....

.....

2) खाली स्थानों को पूरा कीजिए।

i) *अमीरान-ए सादाह* ..... थे।

ii) ..... का विद्रोह 1327 में गुलबर्गा में हुआ।

iii) ..... बहमनी और विजयनगर शासकों के मध्य संघर्ष का केन्द्र था।

iv) वेमा ..... के शासक थे।

3) 14-15वीं शताब्दी के मध्य दक्खन का इतिहास, बहमनी और विजयनगर शासकों के मध्य प्रभुत्व के प्रश्न को लेकर संघर्षों का इतिहास था। टिप्पणी कीजिए।

.....

.....

.....

5.9 *अफाक़ियों* और *दक्खनियों* के मध्य संघर्ष एवं सम्राट के साथ उनके संबंध

अब तक हम देख चुके हैं कि अमीरों की भूमिका न केवल सल्तनत को सुदृढ़ बनाने के लिए थी बल्कि राजा-निर्माता के रूप में भी थी। प्रत्येक सुल्तान की चाह अमीरों की वफादारी प्राप्त करना था। यही परंपरा बहमनी राज्य में भी जारी रही। अलाउद्दीन बहमन शाह के काल में ही हमें तीन गुट नजर आते हैं: एक वह गुट था जिसने दक्खन में एक स्वतंत्र राज्य की स्थापना में अलाउद्दीन बहमन शाह की सहायता की, दूसरा तुगलक गुट और तीसरे गुट में स्थानीय सरदार और उनके मातहत (vassal) थे, जिनके व्यक्तिगत स्वार्थ थे।

अलाउद्दीन मुज़ाहिद के काल (1375-1378) से अमीरों के इस संगठन में एक नए घटक का आगमन हुआ, वह था – *अफाक़ी*। इस शब्द का अर्थ है 'सार्वभौमिक' – वे लोग जिन्हें मूलस्थान से उखाड़ दिया गया है और वे अब किसी प्रदेश से संबंधित नहीं हैं। उन्हें *ग़रीब-उद दियार* अर्थात 'अजनबी' भी कहा जाता था। *अफाक़ी* यहाँ ईरान, ट्रांसऑक्सियाना और ईराक से आए थे। *दक्खनियों* और *अफाक़ियों* के मध्य वास्तविक संघर्ष 1397 में ग़ियासुद्दीन तहमतान के काल में हुए जब उसने कई *अफाक़ियों* को उच्च पदों पर नियुक्त किया। उदाहरण के रूप में, सलाबत खां को बरार का गवर्नर, मुहम्मद खान को *सर-ए नौबत* और अहमद बेग कज़वीनी को *पेशवा* बनाया गया। इन उच्च पदों पर, जो पहले *दक्खनियों* के हाथों में थे, *अफाक़ियों* की नियुक्ति ने पुराने अमीर वर्ग और तग़लचिन के नेतृत्व वाले तुर्की गुट में असीम असंतोष को जन्म दिया। तग़लचिन ने 1397 में इनके प्रभाव को कम करने में सफलता प्राप्त की जब उसने सफल षड्यंत्र कर ग़ियासुद्दीन को मरवा कर शम्सुद्दीन दाउद द्वितीय (1397) को एक 'कठपुतली' सुल्तान बनाया और स्वयं के लिए *मलिक नाएब* और *मीर जुमला* के पद हासिल किए। अहमद प्रथम (1422-1436) ने पहली बार एक *अफाक़ी* खलफ हसन बसरी (जिसकी मदद से उसे सिंहासन प्राप्त हुआ था) को *वकील-ए सल्तनत* के उच्चतम पद पर नियुक्त कर उसे ***मलिक-उत तुज्जार*** (व्यापारियों का शहज़ादा) की उच्चतम पदवी दी।

अफाक़ियों की यह अद्भुत प्रगति उनके द्वारा *दक्खनियों* की तुलना में लगातार वफादारी के प्रदर्शन के कारण संभव हुई। *अफाक़ी* सैय्यद हुसैन बडखोही व साथियों ने ही अहमद प्रथम को अपने शासनकाल के प्रारंभिक वर्षों में विजयनगर अभियान के दौरान वहाँ से बच निकलने में सहायता प्रदान की थी। इसके परिणामस्वरूप अहमद प्रथम ने *अफाक़ी* तीरंदाज़ों की एक विशेष टुकड़ी तैयार की। उन्हें इसी प्रकार के अन्य लाभ भी मिलते रहे। इस नीति से *दक्खनियों* में बहुत असंतोष फैला।

इन दो गुटों के मध्य विवाद को अहमद के गुजरात के विरुद्ध मुहिम में देखा जा सकता है जब *दक्खनियों* के असहयोग के कारण *मलिक-उत तुज्जार* के नेतृत्व में बहमनी सेना को पराजय उठानी पड़ी। दोनों गुटों के बीच यह खाई अहमद द्वितीय के शासनकाल में और बढ़ी। खानदेश की सेनाओं के आक्रमण के समय *दक्खनियों* के असहयोग के कारण केवल *अफाक़ी* दलों को खलफ हसन बसरी के नेतृत्व में भेजा जा सका। हुमायूँ शाह (1458-1461) ने दोनों गुटों के मध्य सामंजस्यता लाने के प्रयास किए। अहमद तृतीय (1461-1465) के काल में, *दक्खनियों* ने शासन की पतवार ख्वाजा-ए जहाँ तुर्क, *मलिक-उत तुज्जार* और महमूद गावां के हाथों में देख अनुभव किया कि *अफाक़ियों* के हाथों में शक्ति केंद्रित थी। दूसरी तरफ, *अफाक़ी* इसलिए असंतुष्ट थे क्योंकि अहमद द्वितीय के अधीन उन्हें प्राप्त शक्तियों में, उसके उत्तराधिकारियों के काल में, बहुत कमी कर दी गयी। मुहम्मद तृतीय (1463-1482) के मुख्यमंत्री महमूद गावां ने भी दोनों गुटों के मध्य सामंजस्य स्थापित करने के प्रयास किए। इसके परिणामस्वरूप, उसने मलिक हसन को तेलंगाना का *सर-ए लश्कर* और फतउल्लाह को बरार के *सर-ए लश्कर* के पद पर नियुक्त किया। किंतु महमूद गावां स्वयं ज़रीफ-उल मुल्क दक्खनी और मिफ्ताह हब्शी के षड्यंत्रों का शिकार बना। इसके बाद गुटों का साम्य बिखर गया और बाद के कमजोर राजा एक या दूसरे गुट के हाथों में कठपुतली मात्र बनते चले गए।

शिहाबुद्दीन महमूद के शासनकाल (1482-1512) में संघर्ष चरमोत्कर्ष पर पहुँचा। जबकि राजा का *अफाक़ियों* के प्रति स्पष्ट झुकाव था, *दक्खनियों* ने हब्शी (अबीसीनियाई) गुट से दोस्ती की। हब्शी गुट ने 1487 में राजा को मारने का एक दुस्साहसिक प्रयास किया किंतु यह असफल रहा। इसके परिणामस्वरूप बड़ी संख्या में *दक्खनियों* का कत्ले-आम प्रारंभ हुआ जो तीन दिनों तक जारी रहा। इन गुटों के झगड़ों ने केंद्र को कमजोर कर दिया था। शिहाबुद्दीन का शासनकाल कासिम बरीद, मलिक अहमद, निज़ाम-उल मुल्क, बहादुर गिलानी, आदि के विद्रोहों और षड्यंत्रों से त्रस्त रहा। शिहाबुद्दीन की मृत्यु (1518) ने इन सरदारों को अपने प्रांतों में लगभग खुली छूट प्रदान की। अंत में, बीजापुर के इब्राहिम आदिल शाह ने सर्वप्रथम 1537 में अपनी स्वतंत्रता की घोषणा की। इस प्रकार बहमनी सल्तनत के क्षेत्रीय विखंडन की प्रक्रिया प्रारंभ हुई।

5.10 बहमनी साम्राज्य में केंद्रीय एवं प्रांतीय प्रशासन

बहमनी शासकों ने दिल्ली सुल्तानों की प्रशासनिक व्यवस्था का अनुकरण किया। शासन की बागडोर राजा के हाथों में थी और उसकी सहायता के लिए *वकील, वज़ीर, बख्शी* और *काज़ी* थे। इनके अलावा *दबीर* (सचिव), *मुफ्ती* (कानून की व्याख्या करने वाला), *कोतवाल* और *मुहतसिब* (जन-आचरण पर अंकुश रखने वाले) होते थे। *मुनहियानों* (जासूसों) को न केवल राज्य के हर भाग में नियुक्त किया जाता था, बल्कि इस बात के प्रमाण हैं कि मुहम्मद प्रथम के शासनकाल में उन्हें दिल्ली में भी नियुक्त किया गया।

मुहम्मद प्रथम के शासनकाल में बहमनी राज्य को चार *तरफों* या प्रांतों में बांटा गया, ये थे – दौलताबाद, बरार, बीदर और गुलबर्गा। इन प्रांतों के शासन का प्रमुख *तरफदार* कहलाता था। गुलबर्गा के महत्व को देखते हुए केवल बहुत ही विश्वासपात्र अमीरों की नियुक्ति वहाँ की जाती थी जिन्हें ***मीर नायब*** (वायसरॉय) कहा जाता था। ये अन्य प्रांतों के गवर्नरों (*तरफदारों*) से भिन्न थे। कालांतर में, राज्य की सीमाओं के विस्तार के साथ, महमूद गावां ने साम्राज्य को आठ प्रांतों में विभाजित किया। साम्राज्य के कुछ क्षेत्रों को सुल्तान द्वारा सीधे अपने नियंत्रण में (*खासा-ए सुल्तानी*) रखा गया।

5.11 बहमनी साम्राज्य में सैन्य संगठन

सेना का सेनापति *अमीर-उल उमरा* होता था। सेना में मुख्यतः सिपाही और घुड़सवार होते थे। हाथियों का प्रयोग भी प्रचलित था। शासक-गण बड़ी संख्या में अंगरक्षकों को रखते थे, जो

खासाखेल कहलाते थे। ऐसा कहा जाता है कि मुहम्मद प्रथम के पास 4000 अंगरक्षक थे। इसके अतिरिक्त, ***सिलहदार*** होते थे जो राजा के व्यक्तिगत शस्त्रागार के प्रभारी का कार्य करते थे। आवश्यकता पड़ने पर *बरबरदानों* को सेना की लामबंदी के लिए कहा जाता था। बहमनी सेना की प्रमुख विशेषता बारूद का प्रयोग था जो सेना के लिए लाभदायक सिद्ध हुआ।

इटली के यात्री, निकोलो कोंटी, जिसने 15वीं शताब्दी में भारत की यात्रा की थी, लिखा है कि उनकी सेना भालों, तलवारों, विभिन्न हथियारों, ढालों, धनुषों और बाणों का प्रयोग करती थी। वह आगे वर्णन करता है कि वे 'प्राक्षेपिक और गोलाबारी की मशीनों और साथ ही घेराबंदी के हथियारों का प्रयोग करते थे'। 1500-1517 के दौरान भारत-यात्रा पर आये दुआर्ते बारबोसा ने भी ऐसे ही विचार प्रकट किए हैं कि वे गदाओं, फरसों, धनुषों और बाणों का प्रयोग करते थे। वह आगे लिखते हैं: 'वे (मुस्लिम;) ऊँची काठी पर बने आसनों पर सवार... काठी से बंधे हुए लड़ते हैं... हिंदू... अधिकतर पैदल लड़ते हैं, जबकि कुछ घोड़ों की पीठ पर...मूर। महमूद गावां ने सैन्य प्रशासन को कारगर बनाया। पूर्व में *तरफदारों* को किलों के *किलेदार* नियुक्त करने का पूर्ण अधिकार था। गावां ने एक किले को एक *तरफदार* के क्षेत्राधिकार के अंतर्गत रखकर, एक ही प्रांत के बाकी अन्य सभी किलों को केंद्रीय नियंत्रण में ले लिया। भ्रष्टाचार पर अंकुश हेतु, उसने एक नियम बनाया कि प्रत्येक अधिकारी को उसके द्वारा संचालित प्रत्येक 500 सिपाहियों के हिसाब से एक निश्चित रकम दी जाए। जब इस अधिकारी को नकद वेतन की जगह एक क्षेत्र से राजस्व वसूलने का अधिकार दिया जाता था तो उसे राजस्व वसूलने में होने वाला खर्चा नकद धन के रूप में अलग से दिया जाता था। यदि वह नियत संख्या में सिपाहियों को रखने में असफल होता था तो उसे उसी अनुपात में रकम राजकोष में वापस करनी होती थी।

बोध प्रश्न-4

1) हम कैसे कह सकते हैं कि *अफाकियों* और *दक्खनियों* के मध्य संघर्ष ने अंततः बहमनी राज्य के भविष्य पर मुहर लगा दी?

.....

.....

.....

2) महमूद गावां द्वारा प्रशासन और सेना के संगठन में कौन-कौन से मुख्य परिवर्तन किए गए?

.....

.....

.....

5.12 अर्थव्यवस्था

महमूद गावां ने भूमि की नियमित नाप के और गाँवों व कस्बों की सीमाओं के निर्धारण के आदेश दिये। इस प्रकार, इस क्षेत्र में उसे राजा टोडरमल का पूर्वगामी माना जा सकता है। इन उपायों से राजकोष को बहुत लाभ हुआ। प्रथम, साम्राज्य की आय निश्चित और अग्रिम रूप से ज्ञात हो गयी, द्वितीय, इसने अमीरों के भ्रष्टाचार को भी कुछ सीमा तक कम कर दिया, जिससे राज्य की आय में वृद्धि हुई।

बहमनी राज्य में, वाणिज्य और व्यापार उन्नत अवस्था में था। एक रूसी यात्री निकितिन, जो 1469-1474 के दौरान दक्खन में रहा, बीदर में वाणिज्यक गतिविधियों के बारे में पर्याप्त सूचना देता है। उसके अनुसार प्रधानतः घोड़ों, वस्त्रों, रेशम और मिर्च का व्यापार होता था। उसका कहना है कि शिखबालुदिन पेरातिर और अलादिनान्द के बाज़ार में बड़ी संख्या में लोग एकत्रित होते थे; वहाँ व्यापार दस दिनों तक जारी रहता था। वह बहमनी राज्य के सामुद्रिक-बंदरगाह मुस्तफाबाद-दभोल का एक वाणिज्य-केन्द्र के रूप में ज़िक्र करता है। दभोल न केवल भारतीय बल्कि अफ्रीकी बंदरगाहों से भी भली-भाँति जुड़ा हुआ था। घोंड़ों को अरब, खुरासान और तुर्किस्तान से आयातित किया जाता था। वाणिज्य और व्यापार मुख्यतः हिंदू व्यापारियों के हाथ में था। कस्तूरी और फर (लोम) का आयात चीन से होता था।

5.13 समाज और संस्कृति

बहमनी साम्राज्य की सामाजिक संरचना का स्वरूप सार्वभौमिक था जिसमें मुस्लिम, हिंदू, इरानी, ट्रांसऑक्सियन, ईराकी और अबीसीनियन (हब्शी) सम्मिलित थे। 16वीं शताब्दी के प्रारंभ में पुर्तगालियों का आगमन हुआ। अगर हम इसके भाषाई ढाँचे पर ध्यान दें तो यह विषम चरित्र अधिक स्पष्ट होता है। फारसी, मराठी, दक्खनी उर्दू (प्रारंभिक उर्दू), कन्नड और तेलुगु भाषाएँ राज्य के विभिन्न भागों में व्यापक रूप से बोली जाती थीं।

मोटे तौर पर समाज में दो वर्ग थे। निकितिन के अनुसार एक तरफ निर्धन और दूसरी तरफ अमीर थे जो 'अतिसमृद्ध' थे। उसका कहना है कि 'अमीरों को चाँदी के तख्तों पर बिठाकर लाया जाता था, जिनके आगे सोने के आभूषणों से लदे 20 घोड़े होते थे और 300 घुड़सवार तथा 500 पैदल-सिपाही, 10 मशालची साथ-साथ चलते थे'। निकितिन बहमनी *वज़ीर*, महमूद गावां के वैभव का भी सजीव वर्णन करता है। वह लिखता है कि प्रत्येक दिन उसके साथ 500 व्यक्ति भोजन ग्रहण करते थे। उसके घर की सुरक्षा के लिए ही, प्रतिदिन 100 सशस्त्र व्यक्ति निगरानी करते थे। इसके विपरीत आम जनता निर्धन थी। यद्यपि निकितिन केवल दो वर्गों का वर्णन करता है, एक और वर्ग – व्यापारी वर्ग (तथाकथित मध्यम वर्ग) – भी उस काल में मौजूद था।

सूफ़ी संतों का बहमनी शासकों द्वारा बहुत सम्मान किया जाता था। प्रारंभ में वे लोग दक्खन में खलजियों और तुगलकों के धार्मिक सहायकों के बतौर आए। प्रारंभिक बहमनी राज्य को अपनी सत्ता के लिए जनता द्वारा वैधता प्राप्त करने हेतु सूफियों के सहयोग की जरूरत पड़ी। बहमनी राज्य में आए सूफियों में से प्रमुखतः चिश्ती, कादिरी और शत्तारी सूफ़ी सम्प्रदाय थे। बीदर कादिरी सम्प्रदाय के महत्वपूर्ण केन्द्रों में एक था। शेख सिराजउद्दीन प्रथम सूफ़ी था जिसे राजा की कृपा दृष्टि प्राप्त हुई। चिश्ती संतों को सर्वाधिक आदर प्राप्त था। दिल्ली के प्रसिद्ध चिश्ती संत सैय्यद मुहम्मद गेसू दराज़ 1402-1403 में गुलबर्गा आकर बसे। सुल्तान फिरोज़ ने उनकी ***खानकाह*** की देखभाल और व्यय के लिए बड़ी संख्या में गाँव अनुदान (***इनाम***) में दिये। लेकिन उसके शासनकाल के अंतिम भाग में दोनों के मध्य मनमुटाव पैदा हुआ क्योंकि गेसू दराज़ ने सुल्तान के भाई अहमद का, उसके उत्तराधिकार के लिए पक्ष लिया। इसके कारण अंत में गेसू दराज़ को गुलबर्गा से निष्कासित किया गया।

अफाकियों द्वारा भारी संख्या में बहमनी राज्य में आने से शियाओं को भी फज़लुल्लाह के प्रभाव में विशेष स्थान प्राप्त हुआ। अहमद प्रथम द्वारा 30,000 चाँदी के *तनकों* को करबला (इराक) के सैय्यदों में वितरण के लिए भेजना, उसके शिया मत के प्रति झुकाव को प्रदर्शित करता है। अहमद तृतीय का सबसे प्रभावशाली *वज़ीर* भी एक शिया था।

हिंदू परम्पराओं और संस्कृति का भी बहमनी दरबार में प्रभाव था। सुल्तान फिरोज़ (1397-1422) द्वारा विजयनगर के शाही परिवार की एक लड़की के साथ विवाह करने से हिंदू-मुस्लिम सांस्कृतिक सौहर्दता को बढ़ावा मिला। एक किंवदंती के अनुसार फिरोज़ एक बार एक हिंदू फकीर के भेष में विजयनगर भी गया था। ***उर्स*** जैसे महत्वपूर्ण समारोहों में भी हिंदू प्रभाव देखा जा सकता था। ***उर्स*** समारोहों में, ***जंगम*** (गुलबर्गा जिले में मध्याल के लिंगायतों का मुखिया) समारोह को विशिष्ट हिंदू रीति – शंख फूंकना, पुष्प-भेंट, इत्यादि – द्वारा संपन्न करता था। रोचक बात यह थी कि *जंगम* मुस्लिम चोगा तथा मुस्लिम दरवेश द्वारा पहनी जाने वाली रस्मी टोपी पहनता था।

बोध प्रश्न-5

1) बहमनी राज्य में वाणिज्य और व्यापार पर एक टिप्पणी लिखें।

.....

.....

.....

2) निम्नलिखित कथनों पर सही (✓) अथवा गलत (×) का चिह्न लगाइए:

i) निकितिन इटली का यात्री था जिसने 15वीं शताब्दी में भारत की यात्रा की। ( )

ii) महमूद गावां के अधीन भूमि को व्यवस्थित ढंग से नापा गया। ( )

iii) गेसू दराज़ एक प्रसिद्ध सुहरावर्दी संत था। ( )

3) बहमनी समाज के संदर्भ में निकितिन के विचारों का वर्णन कीजिए।

.....

.....

.....

5.14 सारांश

इस इकाई में हमने चोल और चालुक्य साम्राज्यों के पतन के बाद दक्खन और दक्षिण भारत की राजनैतिक व्यवस्था का अध्ययन किया। इस क्षेत्र में चार स्वतंत्र राज्यों का उदय हुआ। ये थे – यादव, काकतीय, पांड्य और होयसल। लगभग सौ वर्षों तक इन राज्यों का स्वतंत्र अस्तित्व बना रहा। उसके बाद दिल्ली सल्तनत ने उन्हें परास्त कर दिया। दक्षिण में दिल्ली सल्तनत की विजय पताका फहराने में अलाउद्दीन खलजी के सेनानायक मलिक काफूर ने प्रमुख भूमिका निभाई परन्तु फिर भी इस काल में इन राज्यों की स्वायत्तता बनी रही।

मुहम्मद तुगलक के शासनकाल में लगभग सम्पूर्ण दक्खन और प्रायद्वीपीय दक्षिण के कुछ भाग दिल्ली सल्तनत में मिला लिए गए। देवगिरि नामक महत्वपूर्ण शहर को सल्तनत की दूसरी राजधानी के रूप में विकसित किया गया परन्तु यह स्थिति अधिक समय तक जारी न रह सकी। मुहम्मद तुगलक के शासनकाल के दौरान नई राजनीतिक शक्तियाँ उभरीं और तीन नए स्वतंत्र राज्यों माबार, बहमनी और विजयनगर का उदय हुआ। इनमें से अन्तिम दो लंबे समय तक बने रहे और दक्षिण भारतीय राजनीति का प्रमुख केंद्र रहे।

हमने यह भी देखा कि किस प्रकार *अमीरान-ए सादाह* एक स्वतंत्र बहमनी राज्य स्थापित करने में सफल हुए। अपने विकास-काल में उनका विजयनगर, मालवा और तेलंगाना के शासकों के साथ निरंतर संघर्ष चला। हमने यह भी देखा कि किस प्रकार *अफाक़ियों* और *दक्खनियों* के मध्य विवाद ने बहमनी सल्तनत के पतन का मार्ग प्रशस्त किया। जहाँ तक प्रशासनिक व्यवस्था का प्रश्न है, वह पदवियों, नामावली और महमूद गावां के भूमि के नाप संबंधी सुधारों को छोड़कर, दिल्ली सल्तनत से अधिक भिन्न नहीं थी।

5.15 शब्दावली

अफाक़ी	शाब्दिक अर्थ सार्वभौमिक; *अफाक़* से; नया कुलीन वर्ग (ईरान, इराक और ट्रांसऑक्सियाना से आए)
अमीरान-ए हज़ाराह	एक हज़ारी अमीर
ब्रह्मदेय	ब्राह्मणों को प्रदत्त धार्मिक भू-अनुदान
चेट्टी	दक्षिण भारत का एक प्रमुख व्यापारी समुदाय
दक्खनी	पुराना दक्खनी कुलीन वर्ग
दरवेश	मुस्लिम एकांतवासी, संत
इक्लीम	प्रांत
इनाम	राजस्व मुक्त अनुदान
जंगम	लिंगायत सम्प्रदाय का मुखिया
खानकाह	सूफियों के रहने का स्थान
खासाखेल	सुल्तान के अंगरक्षक
मलिक-उत तुज्जार	व्यापारियों में सर्वश्रेष्ठ (राजकुमार)
मीर नायब	वायसरॉय
मूर	मुस्लिम

नाडु	किसान सभा या संगठन
नायक	योद्धा प्रमुख
शिक़	ज़िले के समान एक प्रशासनिक इकाई
सिलहदार	शस्त्रागार प्रभारी
तरफदार	प्रांतीय गवर्नर
वली	प्रांतीय गवर्नर, *इक्ता*-धारक

5.16 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न-1

1) भाग 5.2 देखें

2) भाग 5.3 देखें

3) भाग 5.4 देखें

बोध प्रश्न-2

1) देखें उप-भाग 5.5.1

2) देखें उप-भाग 5.5.2

बोध प्रश्न-3

1) देखें भाग 5.7

2) i) राजस्व वसूल करने वाले और सेनानायक ii) बहाउद्दीन गुरशस्प iii) तुंगभद्रा *दोआब* iv) राजामुन्द्री

3) देखें भाग 5.8

बोध प्रश्न-4

1) देखें भाग 5.9

2) देखें उप-भाग 5.3.10 और भाग 5.11

बोध प्रश्न-5

1) देखें भाग 5.12

2) i) ✓ ii) ✓ iii) ×

3) देखें भाग 5.13

5.17 संदर्भ ग्रंथ

डेरेट, जे. एवं एम. डनकन, (1957) *द होयसलाज़ः ए मिडिवल इंडिया रॉयल फेमिली* (लंदनः ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस).

फिशेल, रॉय एस्कृ, (2016) *बहमनी सल्तनत* (ऑक्सफोर्डः विले-ब्लैकबैल).

झा, बिश्वम्भर, (1994) *काकतीयाज़ ऑफ वारंगल, सिरका ए.डी. 1000-1323* (पटनाः जानकी प्रकाशन).

पांडे, अवध बिहारी, (1970) *अर्ली मिडिवल इंडिया* (इलाहाबादः सेंटर बुक डिपो).

शास्त्री, नीलकंठ, (1958) *ए हिस्ट्री ऑफ साउथ इंडिया फ्रॉम प्रीहिस्टोरिक टाइम्स टू द फॉल ऑफ विजयनगर* (लंदनः ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस).

सेथूरमन, एन., (1980) *मिडिवल पांड्याज़* (कुंभकोणमः रामन एंड रामन).

श्रीनिवास, रित्ति, (1973) *द सेवुनाज़ः द यादवाज़ ऑफ देवगिरि* (धारवाड़ः एन्शिएन्ट इंडियन हिस्ट्री एंड एपीग्राफी, कर्नाटक यूनिवर्सिटी).

5.17 शैक्षणिक वीडियो

द स्टोरी ऑफ द बहमनीज़
https://www.youtube.com/watch?v=mc9jTCJAxa8

द अनटोल्ड स्टोरी ऑफ होयसल विष्णुवर्धन
https://www.youtube.com/watch?v=8uhTKiDpT1k

द काकतीयाज़ इमरजेन्स ऑफ ए रीजनल किंगडम
https://www.youtube.com/watch?v=BVeTrjuqZxc

रुद्रमा देवीः वारियर क्वीन ऑफ द काकतीय डायनेस्टी
https://www.youtube.com/watch?v=DuSzQYjNI7c

वारॅगल फोर्ट ऑफ काकतीय डायनेस्टी-ओरुगल्लू इन द तेलंगाना स्टेट
https://www.youtube.com/watch?v=zqDEY3hfyPU

इकाई 6 विजयनगर साम्राज्यः प्रसार और सुदृढ़ीकरण*

इकाई की रूपरेखा

6.0 उद्देश्य

6.1 प्रस्तावना

6.2 दक्षिण भारत का भौगोलिक विन्यास

6.3 विजयनगर साम्राज्य की स्थापना और सुदृढ़ीकरण

6.3.1 प्रारंभिक कालः 1336-1509

6.3.2 कृष्णदेव रायः 1509-1529

6.3.3 अस्थिरता का युगः 1529-1542

6.3.4 पुर्तगालियों के साथ संबंध

6.3.5 सुदूर दक्षिण के साथ विजयनगर के संबंध

6.3.6 दक्खन के मुस्लिम राज्य

6.4 विजयनगर साम्राज्य में धर्म और राजनीति

6.4.1 प्रतीकात्मक राजत्व

6.4.2 ब्राह्मणों की राजनीतिक भूमिका

6.4.3 राजाओं, सम्प्रदायों और मंदिर के मध्य संबंध

6.5 सारांश

6.6 शब्दावली

6.7 बोध प्रश्नों के उत्तर

6.8 संदर्भ ग्रंथ

6.9 शैक्षणिक वीडियो

6.0 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के पश्चात् आपः

- दक्षिण एवं दक्षिण भारत की राज्यव्यवस्था एवं अर्थव्यवस्था पर भौगोलिक विन्यास के पड़ने वाले प्रभाव को समझ सकेंगे,
- विजयनगर साम्राज्य का उद्‌भव जान सकेंगे,
- 14वीं-16वीं सदी के मध्य विजयनगर साम्राज्य की शक्ति के प्रसार के बारे में विश्लेषण कर सकेंगे,
- बहमनी शासकों और सुदूर दक्षिण के साथ विजयनगर के संबंधों का मूल्यांकन कर सकेंगे, और
- साम्राज्य के सुदृढ़ीकरण और उसके पतन की प्रक्रिया की व्याख्या कर सकेंगे।

6.1 प्रस्तावना

इस इकाई में हम दक्षिण भारत के वृहत्तर भू-भाग में विजयनगर साम्राज्य के आविर्भाव, विस्तार और सुदृढ़ीकरण के साथ-साथ उसके विघटन का अध्ययन करेंगे। पिछली इकाई में आप दक्षिण भारतीय वृहत्तर भू-भाग में चालुक्य और चोल साम्राज्यों के पतन के फलस्वरूप चार राज्यों के आविर्भाव के

* डॉ. संगीता पांडे, सामाजिक विज्ञान विद्यापीठ, इंदिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय, नई दिल्ली। यह इकाई हमारे पाठ्यक्रम ई.एच.आई.-03: *भारतः 8वीं सदी से 15वीं तक*, खंड 7, इकाई 27 से ली गई है।

बारे में अध्ययन कर चुके हैं। दक्षिण में पांड्य और होयसल जबकि उत्तर में काकतीय और यादव राज्यों का उत्कर्ष हुआ। दिल्ली के सुल्तानों द्वारा दक्खन एवं दक्षिण भारत पर आक्रमण से चार राज्यों (दक्षिण में पांड्य और होयसल, जबकि उत्तर में काकतीय और यादव राज्यों) की शक्ति क्षीण हुई और वे दिल्ली सल्तनत के अधीन हो गए। तत्पश्चात्, 14वीं शताब्दी के दूसरे चतुर्थांश में बहमनी और विजयनगर राज्यों का आविर्भाव एवं प्रसार हुआ।

हरिहर और बुक्का (अंतिम यादव राजा संगमा के पुत्र) वारंगल के काकतीयों के अधीन सेवारत थे। दिल्ली सुल्तानों के हाथों वारंगल की पराजय के बाद वे काम्पिली चले गए। सल्तनत द्वारा काम्पिली को अपने अधीन करने के बाद दोनों भाइयों को दिल्ली ले जाया गया, जहाँ वे इस्लाम स्वीकार कर सुल्तान के कृपापात्र बने। शीघ्र ही होयसलों ने स्थानीय लोगों की मदद से काम्पिली पर आक्रमण किया और दिल्ली के गवर्नर को पराजित कर दिया। इस संकट के समय में सुल्तान ने हरिहर और बुक्का को इस क्षेत्र के शासन हेतु भेजा। उन्होंने सुल्तान की शक्ति की पुनः स्थापना प्रारंभ की, किन्तु विद्यारण्य के संपर्क में आ पुनः हिदू धर्म ग्रहण किया। उन्होने अपनी स्वतंत्रता की घोषणा कर 1336 में विजयनगर राज्य की स्थापना की, जिसका राजा हरिहर बना। शीघ्र ही यह राज्य एक शक्तिशाली विजयनगर साम्राज्य के रूप में विकसित हुआ।

6.2 दक्षिण भारत का भौगोलिक विन्यास[1]

कृष्णा-तुंगभद्रा ***दोआब*** के दक्षिण में स्थित क्षेत्र दक्षिण भारत का निर्माण करता है। पूर्व में स्थित तटीय क्षेत्र कोरोमंडल कहलाता है जबकि केनरा के दक्षिण में (नेत्रावती नदी से कन्याकुमारी तक) स्थित पश्चिमी क्षेत्र मालाबार के नाम से जाना जाता है, जो कि पूर्व में पश्चिमी घाटों से घिरा हुआ है। चोल शासकों के दौरान गतिविधियों का केंद्र मुख्यतः कावेरी क्षेत्र के आसपास तक सीमित था, जो कि विजयनगर काल के दौरान आगे उत्तर-पूर्व में तुंगभद्रा-कृणा *दोआब* (रायलसीमा क्षेत्र) की तरफ सरक गया, जहाँ विजयनगर की राजधानी स्थिति थी। 13वीं से 16वीं शताब्दियों के बीच की समूची अवधि में यह क्षेत्र संघर्षों का केंद्र बना रहा, पहले विजयनगर एवं बहमनी शासकों के बीच तथा बाद में विजयनगर तथा इसके उत्तराधिकारी *नायक* राज्यों तथा बीजापुर के शासकों के बीच। कुतब शाही शासक भी बार-बार इस टकराव में शामिल रहे।

एक अन्य विशेषता, जिसने 16वीं शताब्दी की दक्षिण भारतीय राज्यव्यवस्था, अर्थव्यवस्था तथा समाज पर प्रभाव डाला, वह थी दक्षिण भारत के उत्तरी क्षेत्र से तेलुगु आबादी का प्रवास, जो 15वीं शताब्दी के मध्य में शुरू हुआ और 16वीं शताब्दी में भी जारी रहा। दिलचस्प बात यह है कि लोगों का यह आगमन तटीय एवं डेल्टाकार नमी वाले भू-क्षेत्रों से हुआ था, जो कि काफी उपजाऊ और अच्छी कृषि व सिंचाई सुविधाओं वाले क्षेत्र थे। इस प्रवास के अनेक कारण संभव हो सकते हैं, जैसे बहमनी दबाव; विजयनगर के शासकों द्वारा अपने राज्य का दक्षिण की तरफ और अधिक विस्तार करने के लिए जानबूझकर किए गए प्रयत्न; सहज प्रक्रिया अर्थात अधिक घनी आबादी वाले क्षेत्रों से पलायन; प्रवासियों (जो शुष्क खेती में निपुण थे) के लिए शुष्क खेती (जहाँ सिंचाई के लिए कृत्रिम साधनों का प्रयोग किया जाता हो) करने के लिए यहाँ की जमीन अधिक अनुकूल रही हो, इत्यादि। कारण कुछ भी रहा हो, इसका गहरा सामाजिक-आर्थिक प्रभाव पड़ा। जैसा कि आप देखेंगे कि शुष्क खेती के विकास ने जलाशयों से होने वाली सिंचाई का मार्ग प्रशस्त किया जो कि 16वीं शताब्दी के दक्षिणी भारत की अर्थव्यवस्था का निर्णायक हिस्सा बन गई। दूसरे यह कि इसकी अपेक्षाकृत कम उत्पादकता के परिणामस्वरूप यहाँ से अतिरिक्त उत्पादन (surplus) कम प्राप्त होता था, जिसने इस क्षेत्र में उन वर्गों की उत्पत्ति में मदद की जिन्हें आधुनिक विद्वान 'पोर्टफोलियो पूँजीपति' कहते हैं।

6.3 विजयनगर साम्राज्य की स्थापना और सुदृढ़ीकरण

दक्षिण भारत के राजनीतिक घटनाक्रम के निर्धारण में भौगोलिक विन्यास की महत्वपूर्ण भूमिका रही है। स्थानीय शक्तियों के मध्य संघर्ष के मुख्य केंद्र थे कृष्णा-गोदावरी डेल्टा, कावेरी घाटी, तुंगभद्रा *दोआब* और कोंकण भू-भाग जो अपनी उर्वरता एवं दूर फैले गहरे सागरों तक पहुंच के लिए जाना जाता था। 8वीं से 13वीं शताब्दी के मध्य संघर्ष राष्ट्रकूटों और पल्लवों के मध्य था, जबकि बाद में टकराव विजयनगर और बहमनी राज्यों के बीच था।

1. यह भाग हमारे पाठ्यक्रम ई.एच.आई.-04: *भारत 16वीं शताब्दी से मध्य 18वीं शताब्दी तक*, **इकाई 3**, **भाग 3.2** से लिया गया है।

बहमनी शासकों ने विजयनगर शासकों को अपनी शक्ति के प्रमुख केंद्र तुंगभद्रा से दूर प्रायद्वीप के पूर्व और पश्चिम की ओर विस्तार करने के लिए विवश किया। शुरू में विजयनगर शासकों को रायचूर और तुंगभद्रा ***दोआब*** में बहमनी शक्ति को दबाने में मुश्किल उठानी पड़ी क्योंकि बहमनी शासकों की वारंगल स्थित राजकोंडा के वेलामाओं के साथ संधि थी। इन परिस्थितियों ने विजयनगर को उत्तर की ओर बढ़ने से रोका एवं उसे दक्षिण में तमिल-क्षेत्र तथा प्रायद्वीप के पूर्व और पश्चिम में विस्तार के लिए विवश किया। किंतु बाद में यह गठबंधन टूट गया जिसका लाभ विजयनगर साम्राज्य को मिला, जिसके परिणामस्वरूप विजयनगर शासक बहमनी राज्य की कीमत पर अपने साम्राज्य का विस्तार कर सके।

6.3.1 प्रारंभिक कालः 1336-1509

इस काल में विजयनगर, बहमनी, कोंडाविडु (ऊपरी कृष्णा-गोदावरी डेल्टा विस्तार) के रेड्डियों, राजकोंडा (कृष्णा-गोदावरी डेल्टा के निचले विस्तारों) के वेलामाओं, तेलुगु-चोडाओं (कृष्णा-गोदावरी क्षेत्र के मध्य) और ओडिशा के गजपतियों के मध्य कृष्णा-गोदावरी डेल्टा, तुंगभद्रा *दोआब* और मराठवाड़ा (विशेषतः कोंकण) के नियंत्रण को लेकर संघर्ष होते रहे।

इन निरंतर संघर्षों के कारण विजयनगर की सीमाएँ परिवर्तित होती रहीं। 1336-1422 के मध्य मुख्य संघर्ष विजयनगर एवं बहमनी शासकों के मध्य हुए जिसमें तेलुग-चोडा सरदारों ने बहमनी शासकों का और राजकोंडा के वेलामाओं एवं राजामुंद्री के रेड्डियों ने विजयनगर का साथ दिया। इसके फलस्वरूप विजयनगर का पलड़ा भारी रहा।

1422-1446 के दौरान रायचूर *दोआब* के अधिग्रहण को लेकर विजयनगर और बहमनी शासकों के मध्य संघर्ष छिड़ा जिसमें विजयनगर की हार हुई। इसने विजयनगर सेना की कमियों को पूरी तरह से उजागर किया। इसने शासकों को मुस्लिम तीरंदाज़ों तथा अच्छी नस्ल वाले घोड़ों को अपनी सेना में शामिल करने तथा उसके पुनर्गठन के लिए विवश किया। मुस्लिम तीरंदाज़ों को राजस्व अनुदान भी दिए गए। इस काल में संपूर्ण कोंडाविडु क्षेत्र का समामेलन विजयनगर साम्राज्य में हुआ।

1465-1509 के मध्य एक बार फिर रायचूर *दोआब* संघर्षों का केंद्र बना। प्रारंभ में विजयनगर को अपने पश्चिमी बंदरगाहों, यथाः गोवा, चौल और दाभोल बहमनी शासकों को समर्पित करने पड़े। परंतु, 1490 के आसपास यूसुफ आदिल खां के नेतृत्व में बीजापुर की स्थापना के बाद बहमनी राज्य में आंतरिक विघटन की प्रक्रिया प्रारंभ हुई। इस स्थिति का लाभ उठाते हुए विजयनगर ने तुंगभद्रा क्षेत्र (अदोनी एवं कुरनूल) पर कब्जा करने में सफलता पाई। इससे पहले पश्चिमी बंदरगाहों के हाथ से निकल जाने से अरबों के साथ अश्व-व्यापार अव्यवस्थित हो चुका था, जो विजयनगर की घुड़सवार सेना के लिए महत्वपूर्ण था। तथापि, होनावर, भतकल, बकानूर एवं मंगलौर बंदरगाहों को हासिल करने के बाद अश्व-व्यापार पुनः प्रारंभ हुआ। इसके फलस्वरूप घोड़ों की निरंतर आपूर्ति से विजयनगर सेना की कार्यक्षमता को बल मिला।

पूर्व में ओडिशा के गजपति एक प्रमुख शक्ति थे। उनके अधिकार-क्षेत्र में कोंडाविडु, उदयगीर और मसूलिपट्टम आते थे। विजयनगर शासकों ने गजपतियों को गोदावरी तक खदेड़कर कोंडाविडु, उदयगिरि एवं मसूलीपट्टम पर अधिकार जमाया। परंतु शीघ्र ही, 1481 में, बहमनियों द्वारा मसूलीपट्टम हथिया लिया गया। विजयनगर को उदयगिरि, उम्मातुर (मैसूर के समीप) एवं सेरिंगपट्टम के सरदारों के निरंतर विद्रोहों का भी सामना करना पड़ता था।

6.3.2 कृष्णदेव रायः 1509-1529

यह काल विजयनगर के महानतम शासक कृष्णदेव राय (1509-1529) की उपलब्धियों का है। इस अवधि में बहमनी शक्ति का पतन हुआ, जिसके फलस्वरूप पाँच राज्यों का उद्भव हुआः अहमदनगर में निज़ामशाही; बीजापुर में आदिल शाही; बरार में इमाद शाही, गोलकुंडा में कुतब शाही; और बीदर में बरीद शाही (जिसके बारे में हम विस्तृत रूप में **भाग 6.12** में चर्चा करेंगे)। बहमनी सल्तनत के विघटन की ओर अग्रसर होने के कारण कृष्णदेव राय को बीजापुर के आदिलशाहियों से कोविलकोंडा और रायचूर तथा बहमनी शासकों से गुलबर्गा एवं बीदर प्राप्त करने में सफलता मिली। कृष्णदेव राय ने उदयगिरि, कोंडाविडु (कृष्णा नदी के दक्षिण में) तथा नालगोंडा (आंध्र प्रदेश में) पर पुनः आधिपत्य स्थापित किया। गजपतियों से, तेलंगाना, राजामुंद्री एवं वारंगल पुनः प्राप्त किए।

मानचित्र 6.1: विजयनगर काल के दौरान दक्षिण भारत

स्रोतः ई.एच.आई.-03: *भारतः 8वीं सदी से 15वीं सदी तक*, **खंड 7**, **इकाई 27**, पृ. 42

1510 से पुर्तगाली भारत में एक प्रमुख नौसैनिक शक्ति के रूप में सामने आए। गोवा और साथ ही डांडा राजौरी एवं दाभोल पर अधिकार कर उन्होंने अश्व-व्यापार पर एकाधिकार जमाया, क्योंकि गोवा दक्खनी राज्यों में अश्व-व्यापार का प्रमुख व्यापारिक केंद्र था। कृष्णदेव राय ने पुर्तगालियों के साथ मित्रता के संबंध बनाए रखे। अलबुकर्क की प्रार्थना पर कृष्णदेव राय ने उन्हें भतकल में दुर्ग-निर्माण की स्वीकृति दी। इसी तरह, पुर्तगाली सैनिकों ने कृष्णदेव राय की बीजापुर के इस्माइल आदिल खान के विरुद्ध जीत में पर्याप्त योगदान दिया।

6.3.3 अस्थिरता का युगः 1529-1542

कृष्णदेव राय की मृत्यु के साथ ही आंतरिक संघर्ष एवं बाहरी आक्रमण प्रारंभ हुए। आंतरिक स्थिति का लाभ उठाते हुए बीजापुर के इस्माइल आदिल खां ने रायचूर और मुद्‌गल पर कब्जा कर लिया। गजपतियों और गोलकुंडा राजाओं ने भी कोंडाविडु को प्राप्त करने के लिए असफल प्रयास किए। इस अस्थिरता तथा अशांति का फायदा उठाते हुए कृष्णदेव राय के भाई अच्युत राय (1529-1542) ने विजयनगर सिंहासन हथियाने में सफलता पाई। परंतु उसकी मृत्यु के बाद पुनः उत्तराधिकार को लेकर अच्युत राय के पुत्र और उसके भतीजे सदाशिव के बीच संघर्ष छिड़ा। सदाशिव ने 1542 में सिंहासन प्राप्त किया। लेकिन वास्तविक शक्ति कृष्णदेव राय के दामाद राम राय के हाथों में ही रही।

सदाशिव ने मुसलमानों को सेना में प्रवेश देने की नीति अपनाई और उन्हें महत्वपूर्ण ओहदे दिए, जिससे सेना की कार्य-कुशलता में वृद्धि हुई।

6.3.4 पुर्तगालियों के साथ संबंध

राम राय के पुर्तगालियों के साथ मित्रतापूर्ण संबंध नहीं थे। 1542 में मार्टिन अल्फांसो डिसूज़ा गोवा का गवर्नर बना तथा उसने भतकल में लूटपाट की। बाद में, राम राय को अल्फांसो डिसूज़ा के उत्तराधिकारी जोआओ दे कास्त्रो के साथ 1547 में एक संधि करने में सफलता मिली, जिससे राम राय ने अश्व-व्यापार के एकाधिकार प्राप्त किए। राम राय ने कोरोमंडल स्थित सान थोम में पुर्तगालियों के प्रभाव को नियंत्रित करने की कोशिश की।

6.3.5 सुदूर दक्षिण के साथ विजयनगर के संबंध

1512 तक, विजयनगर शासकों ने लगभग संपूर्ण दक्षिणी प्रायद्वीप को अपने अधिकार में ले लिया। राजागंबीर राज्यन् (तोंडई मंडलम्) नामक छोटे से हिंदू राज्य, कालीकट के **ज़मोरिन** और क्विलोन (केरल) के शासकों ने विजयनगर का आधिपत्य स्वीकार किया। 1496 तक लगभग संपूर्ण सुदूर दक्षिण, केप कोमोरिन तक के क्षेत्र, जिसमें स्थानीय शासित चोल, चेर शासकों के क्षेत्र, तंजौर, पुडुकोट्टाई तथा मदुरा के मानभूषा आते थे, विजयनगर के अधीनस्थ हो गए। किंतु पांड्य शासक (ट्यूटीकोरिन तथा कयत्तार का सरदार) को गौण राजा (tributary) के रूप में शासन करने दिया गया।

तमिल प्रदेश के आधिपत्य का एक रोचक पहलू यह था कि जीत के बाद तेलुगु सैनिक उस दूरस्थ तथा विरल जनसंख्या वाले प्रदेश में स्थायी तौर पर बस गए। इन प्रवासियों ने वहां की काली मिट्टी का भरपूर फायदा उठाया एवं कालांतर में रेड्डियों के एक महत्वपूर्ण खेतिहर वर्ग का आविर्भाव हुआ। साथ ही, प्रदेश में *नायकों* का बिचौलियों के रूप में उद्भव भी तमिल क्षेत्र में प्रसार का ही परिणाम था।

विजयनगर राज्य एक वृहत राजनीतिक व्यवस्था थी, जिसके अंतर्गत विभिन्न लोग आते थे जैसे तमिल, कन्नड और तेलुगु भाषी समुदाय।

विजयनगर शासकों की तुंगभद्रा प्रदेश पर प्रत्यक्ष प्रादेशिक संप्रभुता थी। दूसरे स्थानों पर, विजयनगर शासकों ने तेलुगु योद्धाओं (*नायकों*) और उन स्थानीय सरदारों, जो *नायकों* के रूप में रूपांतरित हो चुके थे और उन संप्रदायी वर्गों, जैसे वैष्णवों द्वारा प्रतीकात्मक संप्रभुता स्थापित की (आप इनकी राजनीतिक भूमिका के विषय में अगली इकाई में पढ़ेंगे।

6.3.6 दक्खन के मुस्लिम राज्य

1538 तक बहमनी राज्य पांच प्रदेशों में विभाजित हो गया – बीजापुर, गोलकुंडा, अहमदनगर, बीदर और बरार। 1542-43 में बीजापुर और गोलकुंडा के मध्य आपसी समझ से बीजापुर को विजयनगर के विरुद्ध खुली छूट मिल गई, जबकि अहमदनगर ने बीदर की कीमत पर विस्तार की योजना बनाई। इस समझौते के साथ इब्राहिम आदिल शाह ने विजयनगर पर आक्रमण किया किंतु उसका दो टूक जवाब मिला। लेकिन यह समझ भी लंबे समय तक जारी न रह सकी। अहमदनगर ने बीदर के कल्याणी के दुर्ग को हासिल करने में राम राय की सहायता प्राप्त की। राम राय के दक्खन राज्यों के साथ संबंध बहुत जटिल थे, बीदर के विरुद्ध उसने अहमदनगर की सहायता की परंतु जब अहमदनगर ने गुलबर्गा (जो कि बीजापुरी क्षेत्र था) पर आक्रमण किया, तो राम राय ने बीजापुर शासक का पक्ष लिया। इसके अतिरिक्त, राम राय ने विजयनगर और दक्खनी राज्यों के मध्य एक सामूहिक सुरक्षा योजना बनाने में सफलता प्राप्त की। यह स्वीकार किया गया कि किसी एक के विरुद्ध आक्रमण की स्थिति में आक्रमणकारी के विरुद्ध अन्य सभी सशस्त्र संघर्ष करने को बाध्य होंगे।

इस समझौते का खुला उल्लंघन करते हुए 1560 में अहमदनगर ने बीजापुर पर आक्रमण कर दिया। राम राय को अहमदनगर के विरुद्ध गोलकुंडा की सहायता मिली, परंतु यह समझौता भी शीघ्र समाप्त हो गया। अहमदनगर पराजित हुआ और कल्याणी बीजापुर को समर्पित करना पड़ा। इसी समय, राम राय ने भी बीदर पर आक्रमण कर सुरक्षा समझौते का उल्लंघन किया। गोलकुंडा के शासक ने अहमदनगर के साथ मिलकर कल्याणी पर आक्रमण किया। राम राय ने अपनी सेना कल्याणी के दुर्ग को हथियाने के लिए गोलकुंडा के विरुद्ध भेजी। दूसरी तरफ, विजयनगर और

बीजापुर ने मिलकर (जो पुनः एक अस्थायी मिलन था) अहमदनगर और गोलकुंडा के आक्रमण का सामना किया। अंत में, अहमदनगर को अपने कोविलकोंडा, गनपुरा और पांगल के किले देने पड़े। इस दौरान राम राय की नीति एक मुस्लिम राज्य को दूसरे से लड़ाकर विजयनगर के पक्ष में शक्ति संतुलन को बनाए रखने की थी। बाद में गोलकुंडा, अहमदनगर, बीदर और बीजापुर ने सम्मिलित होकर विजयनगर के विरुद्ध मोर्चा बनाया। यह युद्ध कृष्णा नदी के निकट स्थित तालिकोटा (1565) नामक कस्बे में हुआ। विजयनगर पर इसका विनाशकारी प्रभाव पड़ा, इसे लूटा गया। राम राय मारा गया। यद्यपि, विजयनगर राज्य लगभग सौ और वर्षों तक अस्तित्व में रहा, इसका प्रभावक्षेत्र घट चुका था और रायों का दक्षिण भारत की राजनीति में कोई महत्व नहीं रहा।

बोध प्रश्न-1

1) संक्षेप में दक्षिण भारत के भौगोलिक विन्यास का विवरण कीजिए।

.....

.....

.....

2) कृष्णा-गोदावरी डेल्टा, तुंगभद्रा *दोआब* और कोंकण के नियंत्रण को लेकर विजयनगर और बहमनी राज्यों के मध्य संघर्ष का वर्णन कीजिए।

.....

.....

.....

3) 30 शब्दों में पुर्तगालियों और विजयनगर के शासकों के संबंधों का विवरण दीजिए।

.....

.....

.....

4) 'दक्खनी मुस्लिम राज्यों के साथ संघर्षों के कारण अंततः विजयनगर के भाग्य का सूर्यास्त हो गया'। टिप्पणी कीजिए।

.....

.....

.....

6.4 विजयनगर साम्राज्य में धर्म और राजनीति

धर्म और धार्मिक वर्गों की विजयनगर साम्राज्य के राजनीतिक, सामाजिक और आर्थिक जीवन में एक महत्वपूर्ण भूमिका थी।

6.4.1 प्रतीकात्मक राजत्व

सामान्य तौर पर यह कहा जाता है कि धर्म का कठोरता से पालन का सिद्धांत विजयनगर साम्राज्य का एक प्रमुख अवयव एवं विशिष्ट लक्षण था। लेकिन, अधिकतर विजयनगर के शासकों को हिंदू शासकों से भी युद्ध करना पड़ता था, जैसे ओडिशा के गजपति। विजयनगर की सेना में रणनीति के दृष्टिकोण से सबसे महत्वपूर्ण दस्ते मुस्लिम सेनानियों के अधीन होते थे। देवराया द्वितीय द्वारा मुस्लिम तीरंदाज़ों को भर्ती किया गया। इन मुस्लिम टुकड़ियों ने विजयनगर के हिंदू प्रतिद्वंद्वियों के विरुद्ध विजयनगर की जीत में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई।

विजयनगर शासकों ने सफल सैनिक कार्यवाहियों के फलस्वरूप *दिग्विजयन* की पदवी धारण की। विजयनगर का राजत्व एक प्रकार से प्रतीकात्मक था, क्योंकि विजयनगर के शासक अपनी सत्ता के प्रमुख केंद्र से परे भू-भागों पर अपने आधिपत्यों द्वारा नियंत्रण करते थे। इस प्रतीकात्मकता का निरूपण धर्म के जरिए होता था, जो लोगों द्वारा स्वामिभक्ति निश्चित करता था। उदाहरण के तौर पर, प्रतीकात्मक राजत्व का *महानवमी* के उत्सव में सबसे अच्छा दृष्टांत मिलता था। यह एक वार्षिक राजकीय समारोह था, जो 15 सितंबर और 15 अक्टूबर के मध्य नौ दिन तक चलता था। इसकी

समाप्ति दसवें दिन *दशहरा* के उत्सव में होती थी। प्रादेशिक/परिधीय क्षेत्रों के महत्वपूर्ण व्यक्ति (जैसे सेनानायक) इस उत्सव में भाग लेते थे। इस उत्सव द्वारा साम्राज्य के प्रादेशिक परिधीय भागों पर विजयनगर के शासकों की संप्रभुता की मान्यता को बल मिलता है। यद्यपि ब्राह्मण इस उत्सव में भाग लेते थे, उनकी भूमिका प्रमुख नहीं होती थी। उत्सव के अनुष्ठानिक कृत्यों का निष्पादन स्वयं राजा द्वारा किया जाता था।

6.4.2 ब्राह्मणों की राजनीतिक भूमिका

विजयनगर साम्राज्य का एक विशिष्ट लक्षण ब्राह्मणों का राजनैतिक एवं धर्म-निरपेक्ष कार्यकर्ताओं न कि धार्मिक मुखियाओं के रूप में महत्व था। अधिकतम ***दुर्ग दन्नायक*** (दुर्ग-प्रभारी) ब्राह्मण होते थे। साहित्यिक स्रोत इस बात की पुष्टि करते हैं कि उस युग में दुर्गों का बहुत महत्व था और उनका नियंत्रण ब्राह्मणों, विशेषतः तेलुगु मूल के, द्वारा किया जाता था।

इस काल में अधिकतर शिक्षित ब्राह्मण प्रशासक व लेखाकार के रूप में राजकीय कर्मचारी बनना चाहते थे, जहाँ उनके लिए उज्जवल जीविकोपार्जन के साधनों की संभावनाएँ थीं। शाही सचिवालय पूर्ण रूप से ब्राह्मणों द्वारा संचालित थे। ये ब्राह्मण अन्य ब्राह्मणों से भिन्न थेः यह तेलुगु नियोगी नामक उपजाति से संबंधित थे। वे धार्मिक कृत्यों को लेकर बहुत पुरातनपंथी नहीं थे। ब्राह्मण प्रभावशाली ढंग से राजा के लिए प्रजा की दृष्टि में वैधता स्थापित करने का कार्य करते थे। विद्यारण्य नामक ब्राह्मण और उसके परिजन संगमा-बंधुओं के मंत्री थेः उन्होंने उनको पुनः हिंदू धर्म में स्वीकार कर उनके शासन को वैधता प्रदान की।

ब्राह्मणों ने सेनापतियों के रूप में विजयनगर की सेना में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। उदाहरण के तौर पर, कृष्णदेव राय के काल में ब्राह्मण टिम्मा को आर्थिक सहायता प्रदान की गई क्योंकि वह राजनीतिक व्यवस्था का एक अंगीभूत अंग था। इन ब्राह्मणों का कार्य साम्राज्य के विभिन्न भागों में दुर्गों का निर्माण और देखरेख करना होता था, जिसके लिए उन्हें कुछ शाही गाँवों (***मंडारवड़ा***) का राजस्व प्राप्त होता था। शाही गाँवों और ***अमरम्*** गाँवों (जिनकी आय स्थानीय सैनिक मुखियाओं के अधीन थी) में विभेदन किया गया।

6.4.3 राजाओं, संप्रदायों और मंदिरों के मध्य संबंध

दूरस्थ तमिल भू-भाग पर प्रभावी नियंत्रण हेतु विजयनगर के शासकों ने तमिल क्षेत्र के वैष्णव संप्रदायी मुखियाओं का सहयोग लिया। तमिल प्रदेश में अजनबी होने से विजयनगर के शासकों के लिए अपनी शक्ति को वैधता प्रदान करने हेतु मूलभूत तमिल धार्मिक संगठनों, जैसे मंदिरों, के साथ संबंध स्थापित करना आवश्यक हो गया।

राजाओं, संप्रदायों और मंदिरों के मध्य संबंधों की निम्नलिखित चार बिंदुओं के आधार पर व्याख्या की जा सकती हैः

1) राजत्व को बनाए रखने के लिए मंदिर आधारभूत थे।

2) संप्रदायी मुखिया, राजाओं और मंदिरों के मध्य एक कड़ी का कार्य करते थे।

3) यद्यपि मंदिरों की सामान्य देखरेख स्थानीय संप्रदायी वर्गों द्वारा की जाती थी, मंदिरों संबंधी विवादों को सुलझाने का कार्य राजा के हाथों में होता था।

4) ऐसे विवादों में राजा का हस्तक्षेप वैधानिक न होकर, प्रशासनिक होता था।

1350-1650 के मध्य दक्षिण भारत में कई मंदिरों का निर्माण हुआ। भौतिक संपत्ति (निश्चित गाँवों के कृषि उत्पादन का एक हिस्सा) के रूप में मंदिरों को प्राप्त होने वाले अनुदानों और उपहारों के फलस्वरूप विजयनगर राज्य के अधीन एक विशेष कृषि-अर्थव्यवस्था ने जन्म लिया (इसकी चर्चा आगामी इकाई में की जाएगी)।

संगमा वंश के आरंभिक शासक शैव थे, जिन्होंने विजयनगर के श्री विरुपाक्ष (पम्पापति) मंदिर का पुनः निर्माण किया। सलूव मुख्यतः वैष्णव थे, जिन्होंने शैव और वैष्णव दोनों ही मंदिरों को संरक्षण दिया। कृष्णदेव राय (तुलूव शासक) ने कृष्णास्वामी मंदिर (वैष्णव मंदिर) का निर्माण किया और शिव मंदिरों को भी अनुदान दिया। अराविडु राजाओं ने भी वैष्णव मंदिरों को उपहार प्रदान किए।

बोध प्रश्न-2

1) प्रतीकात्मक राजत्व की व्याख्या कीजिए।

.....

.....

.....

2) संक्षिप्त में विजयनगर साम्राज्य में ब्राह्मणों की भूमिका और कार्यों का वर्णन कीजिए।

.....

.....

.....

3) विजयनगर शासन के दौरान राजाओं, सम्प्रदायों और मंदिरों के मध्य क्या संबंध था?

.....

.....

.....

6.5 सारांश

विजयनगर राज्य का अध्ययन यह प्रदर्शित करता है कि मुख्य संघर्ष विजयनगर और बहमनी के मध्य था। इस संघर्ष के केंद्र कृष्णा-गोदावरी डेल्टा, कावेरी बेसिन, तुंगभद्रा *दोआब* और कोंकण प्रदेश थे। विजयनगर राजत्व परिधीय क्षेत्रों में प्रतीकात्मक था, जिस पर शासक अपने अधिपतियों के द्वारा नियंत्रण रखते थे। ब्राह्मण धार्मिक मार्गदर्शक से अधिक राजनीतिक और धर्मनिरपेक्ष कार्मिक थे।

6.6 शब्दावली

अमरम्	सेनानायकों को प्रदत्त गाँव
भंडारवड़ा	गाँव की शाही भूमि
दोआब	दो नदियों के बीच का क्षेत्र
दुर्ग-दन्नायक	किला प्रभारी
नायक	योद्धा प्रमुख
ज़मोरिन	कालीकट के शासक

6.7 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न-1

1) भाग 6.3 देखें

2) भाग 6.3 देखें

3) उप-भाग 6.3.4 देखें

4) उप-भाग 6.3.6 देखें

बोध प्रश्न-2

1) देखें उप-भाग 6.4.1

2) देखें उप-भाग 6.4.2

3) देखें उप-भाग 6.4.3

6.8 संदर्भ ग्रंथ

महालिंगम, टी. वी., (1969) *एडमिनिस्ट्रेशन एंड सोशल लाइफ अंडर विजयनगर* (मद्रासः यूनिवर्सिटी ऑफ मद्रास).

शास्त्री, नीलकंठ, (1958) *हिस्ट्री ऑफ साउथ इंडिया फ्रॉम प्रीहिस्टोरिक टाइम्स टू द फॉल ऑफ विजयनगर* (लंदनः ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस).

स्टाइन, बर्टन, (1999) *पेजेन्ट, स्टेट एंड सोसाइटी इन मिडिवल साउथ इंडिया* (दिल्लीः ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस).

स्टाइन, बर्टन, (1989) *द न्यू कैम्ब्रिज हिस्ट्री ऑफ इंडिया, विजयनगरः 2* (कैम्ब्रिजः कैम्ब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस).

6.9 शैक्षणिक वीडियो

द विजयनगर एंपायर हिस्ट्री । पी डी एफ विज़्यूएल्स
https://www.youtube.com/watch?v=yN7P2qefiFk

स्पेशल रिपोर्टः हंपी – ज्वेल ऑफ विजयनगर एंपायर
https://www.youtube.com/watch?v=icF4uuppzTU

ignou
THE PEOPLE'S
UNIVERSITY

इकाई 7 संस्थागत विकासः राजत्व तथा *नायक* प्रणाली*

इकाई की रूपरेखा

7.0 उद्देश्य

7.1 प्रस्तावना

7.2 विजयनगर राज्य की प्रकृति

7.3 विजयनगर साम्राज्य में स्थानीय प्रशासन

7.3.1 *नायनकार* व्यवस्था

4.3.2 *आयगार* व्यवस्था

7.4 विजयनगर साम्राज्य में अर्थव्यवस्था

7.4.1 भूमि एवं आय संबंधी अधिकार

7.4.2 मंदिरों की आर्थिक भूमिका

7.4.3 विदेशी व्यापार

7.4.4 आंतरिक व्यापार और नगरीय जीवन

7.5 समाज

7.6 सारांश

7.7 शब्दावली

7.8 बोध प्रश्नों के उत्तर

7.9 संदर्भ ग्रंथ

7.10 शैक्षणिक वीडियो

7.0 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के पश्चात् आपः

- विजयनगर राज्य की प्रकृति को समझ सकेंगे,
- *नायनकार* और *आयगार* व्यवस्था के विशेष संदर्भ में प्रशासनिक व्यवस्था का विश्लेषण कर पाएंगे,
- विजयनगर साम्राज्य की अर्थव्यवस्था का मूल्यांकन कर सकेंगे,
- विदेशी तथा आंतरिक व्यापार और व्यावसायिक गतिविधियों का विश्लेषण कर सकेंगे, और
- विजयनगर साम्राज्य की सामाजिक संरचना का मूल्यांकन कर सकेंगे।

7.1 प्रस्तावना

पिछली इकाई में हमने दक्षिण भारतीय वृहत् क्षेत्र में विजयनगर के उदय, प्रसार और सुदृढ़ीकरण के बारे में चर्चा की। इस इकाई में हम विजयनगर राज्य की प्रकृति के विश्लेषण संबंधी विभिन्न दृष्टिकोणों, उसकी विभिन्न संस्थाओं, अर्थव्यवस्था तथा समाज पर अपना ध्यान केन्द्रित करेंगे।

* डॉ. संगीता पांडे, सामाजिक विज्ञान विद्यापीठ, इंदिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय, नई दिल्ली। यह इकाई हमारे पाठ्यक्रम ई.एच.आई.-03: *भारतः 8वीं सदी से 15वीं तक*, खंड 7, इकाई 27 से ली गई है।

7.2 विजयनगर राज्य की प्रकृति[1]

भारतीय राजनीति के मूल्यांकन के संदर्भ में सामन्तवादी, खंडात्मक और एकीकरणात्मक, आदि दृष्टिकोण हैं। यहाँ हम विजयनगर कालीन राजनीति का विश्लेषण इन दृष्टिकोणों के तहत करेंगे।

खंडात्मक राज्य

बर्टन स्टाइन विजयनगर राज्य को एक खंडात्मक राज्य के रूप में प्रदर्शित करते हैं। उनके अनुसार विजयनगर राज्य में संपूर्ण राजनीतिक संप्रभुता केंद्र के साथ रही, परंतु परिधीय क्षेत्रों में 'आनुष्ठानिक राजत्व' (प्रतीकात्मक नियंत्रण) *नायकों* और ब्राह्मण सेनानायकों के हाथों में रहा। इन अधीनस्थ इकाइयों – खंडों – के केंद्रीय सत्ता के साथ संबंध पिरामिडानुसार थे। केंद्र से जितना अधिक दूर कोई खंड होता था, उतनी ही ज्यादा अपनी स्वामीभक्ति को एक शक्ति पिरामिड से दूसरे की ओर स्थानांतरित करने की उसकी क्षमता होती थी।

सामन्तवादी मॉडल

कुछ विद्वानों ने विजयनगर राज्य के स्वरूप की सामंती-ढाँचे की पृष्ठभूमि में व्याख्या करने का प्रयास किया है। उनका कहना है कि ब्राह्मणों को नवीन भू-अनुदान प्रदान करने की नीति, सामंती विभाजन का प्रमुख कारण थी। बार-बार इन भू-अनुदानों के दिए जाने के कारण ब्राह्मणों की स्थिति सुदृढ़ बनी। इसके परिणामस्वरूप, उन्हें अपनी व्यवस्थाओं में बहुत अधिक स्वायत्तता प्राप्त हुई, उन्हें प्रशासनिक शक्तियाँ और राजस्व-स्रोतों को नियंत्रित करने के अधिकार मिल गए। विद्वानों का मानना है कि क्योंकि विजयनगर के शासकों ने हिंदू धर्म की रक्षा का प्रयास किया, इससे नई ब्राह्मण व्यवस्थाओं का जन्म हुआ।

इसी प्रकार सैन्य दृष्टि से तमिल-क्षेत्र में विस्तार में *अमरनायकों* (योद्धाओं) और अन्य उच्चाधिकारियों के नियंत्रण में सामंतीय भू-भागों का निर्माण हुआ। *अमरनायक* वंशानुगत भू-स्वामी होते थे। वे राजा को नज़राना अदा करते थे और सैन्य-सेवा प्रदान करते थे (उत्तर भारत के सामंतों की तरह)।

इन भूमिधरों ने बदले में अपने अधीनस्थ लोगों को भूमि अनुदान देना प्रारंभ किया, जिसके फलस्वरूप उप-सामंतीकरण का मार्ग प्रशस्त हुआ। साम्राज्य की विशालता और परिवहन तथा संचार के पर्याप्त साधनों की कमी के कारण साम्राज्य के शासन संचालन हेतु शासकों द्वारा इन सामंती वर्गों को अधिकार प्रदान करना एक आवश्यकता बन गई। विजय और साम्राज्य के सुदृढ़ीकरण की इस प्रक्रिया में विरोधी सरदारों के स्वर को दबाकर उनके भू-भागों को नए सरदारों के बीच बाँट दिया जाता था। फिर भी, कुछ पुराने सरदारों को इस नई व्यवस्था में भी जारी रखा गया।

अन्य व्याख्याएँ

एन. के. शास्त्री विजयनगर राज्य को बुनियादी तौर पर एक हिंदू-राज्य के रूप में देखते हैं जो बहमनी सल्तनत और उसके उत्तराधिकारी राज्यों के मुसलमानों के विरुद्ध हिंदू संस्कृति के रक्षक के रूप में एक वैचारिक (धार्मिक-राजनीतिक) भूमिका का निर्वहन करता था। इससे विजयनगर राज्य के सैनिकवादी स्वरूप का सिद्धांत जन्म लेता है। उनके अनुसार विजयनगर राज्य एक सैनिक राज्य था।

7.3 विजयनगर साम्राज्य में स्थानीय प्रशासन

विजयनगर साम्राज्य के काल में ***नायक*** और *आयगार* व्यवस्था की प्रमुखता के बावजूद ***नाडु***, ***सभा*** और **उर** जैसी स्थानीय संस्थाएँ पूर्ण रूप से लुप्त नहीं हुईं।

7.3.1 *नायनकार* व्यवस्था

नायनकार व्यवस्था विजयनगर के राजनैतिक संगठन की एक महत्वपूर्ण विशेषता थी। सेनानायक और योद्धा *नायक* या *अमरनायक* की पदवी धारण किया करते थे। इन योद्धाओं को इनकी जातीय पहचान, कर्तव्यों या अधिकारों और विशेषाधिकारों के आधार पर वर्गीकृत करना कठिन है।

नायक संस्था का गहन अध्ययन दो पुर्तगाली विद्वानों फरनाओं नूनिज़ और डोमेंगो पाएस द्वारा किया

[1] यह भाग हमारे पाठ्यक्रम ई.एच.आई.-03: *भारतः 8वीं सदी से 15वीं तक*, के पृष्ठ 63 से लिया गया है।

गया जिन्होंने 16वीं शताब्दी में तुलूव वंश के कृष्णदेव राय और अच्युतराय के राज्यकाल में भारत की यात्रा की थी। उन्होंने *नायकों* को महज रायों (केंद्रीय सरकार) के एजेंट के रूप में देखा। नूनिज़ द्वारा वर्णित *नायकों* द्वारा रायों को दी जाने वाली अदायगी, के प्रमाण से सामंती दायित्वों का प्रश्न सामने आता है। विजयनगर के अभिलेख और बाद में मेकेंजी की पांडुलिपियाँ *नायकों* का प्रादेशिक *नायकों* के रूप में चित्रण करती हैं, जिनकी राजनीतिक महत्वाकांक्षाएँ कई बार शासकों के उद्देश्यों के विपरीत टकराती थीं।

एन. के. शास्त्री (1958 में) ने 1565 के पूर्व और उसके बाद के *नायकों* के मध्य एक विभाजन रेखा खींची है। पहले वे पूर्ण रूप से शासकों पर निर्भर थे, जबकि बाद में ये *नायक* अर्द्ध-स्वतंत्र हो गए थे। किंतु, बाद में उन्होंने अपनी राय में संशोधन करते हुए 1565 के पूर्व के *नायकों* को सैनिक-मुखिया बताया जिनके अधीन सैनिक जागीरें (fiefs) होती थीं। अपनी एक नवीनतम कृति (*सोर्सेस ऑफ इंडियन हिस्ट्री*) में उन्होंने विजयनगर साम्राज्य को एक सैनिक महासंघ बताया जिसमें कई सरदार मिलकर उनमें से सर्वाधिक शक्तिशाली के नेतृत्व में सहयोग करते थे। उन्होंने इस बात पर बल दिया कि इस्लाम के बढ़ते खतरे को देखते हुए विजयनगर शासकों को सैन्य-शक्ति और धर्म पर महत्व देना पड़ा। कृष्णस्वामी *नायक* व्यवस्था को सामंती मानते हैं। परंतु वेंकटरमन्या का कहना है कि *नायक* व्यवस्था में यूरोपीय सामंतवाद के प्रमुख लक्षण जैसे स्वामीभक्ति, सम्मान और उप-सामंतीकरण अनुपस्थित थे। इसी तरह डी. सी. सरकार इस सिद्धांत का खंडन करते हुए इसकी सामंतवाद के एक रूपांतर के रूप में इसकी एक प्रकार की *ज़मींदारी* प्रथा के रूप में व्याख्या करते हैं, जिसमें राजा हेतु सैनिक सेवाओं के लिए *अमरनायकों* को भूमि आवंटित की जाती थी।

इस प्रकार, डी. सी. सरकार और टी. वी. महालिंगम विजयनगर के *नायकों* को योद्धाओं के रूप में प्रस्तुत करते हैं, जिन्हें केंद्रीय सरकार द्वारा सैन्य सेवा के बदले पद (कर) दिया जाता था। *अमरनायक* उस सैन्य अधिकारी (*नायक*) को कहा जाता था, जिसके अधीन निश्चित संख्या में सैनिक टुकड़ियाँ रहती थीं। इन *नायकों* को भूमि या क्षेत्र में राजस्व अधिकार प्राप्त थे, जो ***अमरम्*** (*अमरमकरा या अमरमहाली*) कहलाते थे। तमिल-प्रदेश और विजयनगर साम्राज्य में भूमि का लगभग तीन-चौथाई भाग इसके अंतर्गत आता था। *नायकों* की जिम्मेदारियाँ और गतिविधियों में से कुछ इस प्रकार थीं: मंदिरों को उपहार देना, तालाबों का निर्माण और मरम्मत, उजाड़ भूमि को फिर से उपजाऊ बनाना और मंदिरों से शुल्क वसूल करना। तथापि, तमिल अभिलेख राजा या उसके अधिकारियों को *नायकों* द्वारा भुगतान का उल्लेख नहीं करते हैं।

मेकेंजी की पांडुलिपियों के आधार पर कृष्णस्वामी का मानना है कि विजयनगर के सेनापतियों (पहले कृष्णदेव राय के अधीन) ने कालांतर में स्वतंत्र *नायक* राज्यों की स्थापना की। इन खतरों से बचने के लिए विजयनगर सम्राटों ने सामुद्रिक व्यापार पर अधिक नियंत्रण करने का प्रयास किया, जो घोड़ों की खरीद-फरोख्त के लिए महत्वपूर्ण था। उन्होंने अच्छी नस्ल के घोड़ों के लिए उच्च दाम देकर इस व्यापार पर अपना एकाधिकार स्थापित करना चाहा। उन्होंने वफादार सैनिकों की सुरक्षा सेनाएँ बनायीं। इस प्रकार, जहाँ एक तरफ तेलुगु *नायक* विजयनगर साम्राज्य की शक्ति के स्रोत थे, वहीं दूसरी ओर वे इसके प्रतिद्वंद्वी भी बन गए।

7.3.2 *आयगार* व्यवस्था

विजयनगर युग में स्वायत्त स्थानीय संस्थाओं को, विशेषतः तमिल क्षेत्र में, आघात पहुंचा। विजयनगर काल से पहले कर्नाटक तथा आंध्र में स्थानीय संस्थाओं के पास तमिल क्षेत्र की अपेक्षा कम स्वायत्तता थी। विजयनगर काल में कर्नाटक में स्थानीय क्षेत्रीय डिवीज़नों में बदलाव आए। फिर भी, *आयगार* व्यवस्था जारी रही और संपूर्ण वृहत्तर क्षेत्र में व्यापक रूप से प्रचलित थी। 15-16वीं शताब्दी के मध्य नाडु और *नट्टार* की क्षीण होती शक्ति के फलस्वरूप तमिल प्रदेश में इसका विस्तार हुआ। *आयगार* ग्राम्य सेवक अथवा कर्मचारी होते थे, तथा इसके अंतर्गत परिवारों के समूह आते थे। ये थे – मुखियागण (*रेड्डी* या *गौड़ा, मणियम्*), लेखाकार (*कर्णम् सेनाभोवा*) और पहरेदार (*तलाईयारी*)। इन्हें गाँव का एक भाग या गाँव में एक भूखंड दे दिया जाता था।

कभी-कभी उन्हें एक निश्चित लगान अदा करना पड़ता था, किंतु सामान्यतः ये भूखंड *मान्या* अर्थात कर-मुक्त होते थे, क्योंकि उनकी कृषि आय पर कोई नियमित कर नहीं लगाया जाता था। कुछ विशेष स्थितियों में ग्राम्य कर्मचारियों को नकद के रूप में उनकी सेवा के लिए सीधा भुगतान किया

जाता था। अन्य ग्राम्य-सेवकों जैसे धोबी या पुजारी को भी आनुष्ठानिक कार्यों और गाँव के समुदायों की सेवा के लिए भुगतान भूमि के रूप में किया जाता था। अन्य सामान्य सेवाएँ देने वाले ग्राम्य सेवकों में चमड़ा-कारीगर, जिनके बनाए चमड़े के थैले सिंचाई के साधनों (*कपिला या मोहते*) में उपयोगी थे, कुम्हार, लुहार, बढ़ई, जलापूर्ति कारक व्यक्ति (*निरनिक्करः* जो सिंचाई मार्गों की देखरेख करता था और साहूकारों, महाजनों का पर्यवेक्षक था) थे। *आयगार* व्यवस्था की विशिष्टता यह थी कि भूमि द्वारा आय का विशेष आवंटन तथा निश्चित नकद भुगतान पहली बार ग्रामीण सेवकों, जिनका निश्चित कार्य था, को किया गया।

बोध प्रश्न-1

1) विजयनगर राज्य की प्रकृति का विश्लेषण कीजिए।

.....

.....

.....

2) विजयनगर साम्राज्य में *नायनकार* व्यवस्था की व्याख्या कीजिए।

.....

.....

.....

3) विजयनगर साम्राज्य में *आयगार* व्यवस्था पर एक टिप्पणी लिखिए।

.....

.....

.....

7.4 विजयनगर साम्राज्य में अर्थव्यवस्था

इस भाग में हम विभिन्न भूमि एवं आय संबंधी अधिकारों तथा मंदिरों की आर्थिक भूमिका का अध्ययन करेंगे। हम विदेशी और आंतरिक व्यापार के विभिन्न पहलुओं तथा नगरीय जीवन का भी अध्ययन करेंगे।

7.4.1 भूमि एवं आय संबंधी अधिकार

चावल मुख्य पैदावार थी। कोरोमण्डल से लेकर पूलिकट तक काले और श्वेत दोनों किस्म के चावल उगाए जाते थे। इसके अलावा, दालों और चने जैसे खाद्यान्न भी उगाए जाते थे। अन्य महत्वपूर्ण उत्पादों में गर्म मसाले (विशेषतः काली मिर्च), नारियल और सुपारियाँ थीं। भू-राजस्व राज्य की आय का मुख्य स्रोत था। राजस्व निर्धारण की दर साम्राज्य के विभिन्न भागों में और एक ही स्थान पर भूमि की उर्वरता और उसकी क्षेत्रीय अवस्थिति के आधार पर भिन्न-भिन्न थी। सामान्य तौर पर यह आय का 1/6 भाग थी, परन्तु कुछ मामलों में यह अधिक, 1/4 भाग तक थी। ब्राह्मणों और मंदिरों पर यह क्रमशः 1/20 भाग और 1/30 भाग थी। इसका भुगतान नकद और वस्तुओं दोनों के रूप में किया जाता था। हमें भू-काश्तकारी के तीन मुख्य वर्गों का संदर्भ मिलता हैः *आमरा*, ***भंडारवड़ा*** और ***मान्या***। ये गाँवों की आय के विभाजन को प्रदर्शित करते हैं। *भंडारवड़ा* राजा के अधीनस्थ गाँव थे, यह वर्ग सबसे छोटा था। इसकी आय के एक भाग का उपयोग विजयनगर के दुर्गों के हितार्थ होता था। *मान्या* (कर-मुक्त) गाँवों की आय का उपयोग ब्राह्मणों, मंदिरों और मठों की देख-भाल हेतु होता था। सबसे बड़ा वर्ग *आमरा* गाँवों का था, जिन्हें विजयनगर शासकों द्वारा *अमरनायकों* को प्रदत्त किया जाता था। *आमरा* गाँवों की भूमि पर *अमरनायकों* का मालिकाना हक नहीं होता था, परन्तु इससे होने वाली आय पर उनका विशेषाधिकार था। *आमरा* काश्तकारी (पट्टेदारी) इस अर्थ में मुख्यतः अवशिष्ट (residual) संपत्ति थी कि इसमें से ब्राह्मण और दुर्गों के लिए कटौती करने के पश्चात् इसका वितरण होता था। सभी गाँवों का तीन-चौथाई हिस्सा इस वर्ग में आता था। अधिकांश इतिहासकार *अमरमकनी* शब्द का अर्थ 'जागीर' अथवा 'भू-सम्पत्ति' बताते हैं, लेकिन इसका शाब्दिक अर्थ 1/6 वां हिस्सा (*मकनी*) है। इससे संकेत मिलता है कि *अमरनायक* गांव की आय के एक सीमित भाग पर ही दावा कर सकते थे। इस काल में *मान्या* अधिकारों में भी परिवर्तन हुए।

राज्य द्वारा भूमि की पट्टेदारी व्यक्तिगत रूप से (*एकभोगन*), ब्राह्मणों और ब्राह्मणों के समूहों, साथ ही मठों जिसमें गैर-ब्राह्मण शैव सिद्धांत और वैष्णव गुरु भी सम्मिलित थे, को दी जाती थी। परन्तु राज्य द्वारा दिए जाने वाले अनुदानों में तुलनात्मक रूप से ***देवदान*** अनुदान (मंदिर को दिए जाने वाले अनुदान) में अत्यधिक वृद्धि हुई।

भूमि कर के अतिरिक्त कई व्यावसायिक कर प्रचलित थे। ये दुकानदारों, खेतों में काम करने वाले कर्मचारियों, चरवाहों, धोबियों, कुम्हारों, संगीतकारों और जूते बनाने वालों पर लगाए जाते थे। संपत्ति कर का भी प्रावधान था। चराई और गृह कर भी आरोपित किए गए। गाँववासियों को गाँव के अधिकारियों के भरण-पोषण हेतु भी भुगतान करना पड़ता था। इसके अलावा, *स्थल दायम, मार्ग दायम* और *मनुला दायम* तीन मुख्य परिवहन शुल्क थे।

भूमि अधिकार की एक अन्य श्रेणी के अंतर्गत सिंचाई में पूँजी निवेश द्वारा आय प्राप्त की जाती थी। इसे तमिल क्षेत्र में ***दसावन्दा*** और आन्ध्र तथा कनार्टक में ***कट्टू-कोडगे*** के नाम से जाना जाता था। सिंचाई संबंधित इस प्रकार की कृषि गतिविधियाँ अर्द्ध-शुष्क भागों में होती थीं जहाँ जलराशिकीय तथा स्थलाकृतिक लक्षण विकासात्मक कार्यों के लिए उपर्युक्त होते थे। *दसावन्दा* और *कट्टू-कोडगे* इस तरह के विकास कार्य, जैसे किसी तालाब या नहर का निर्माण करने वाले व्यक्ति द्वारा अर्जित अधिक उत्पादकता के भाग थे। आय पर यह अधिकार व्यक्तिगत और हस्तांतरणीय होता था। इस बढ़ी हुई उत्पादकता का एक भाग उस गाँव के किसानों को जाता था, जहाँ विकास संबंधी कार्य किया जाता था।

7.4.2 मंदिरों की आर्थिक भूमिका

विजयनगर के काल में मंदिर महत्वपूर्ण भूस्वामी बने। सैकड़ों गाँवों का अनुदान उन देवी-देवताओं को किया गया, जिनकी पूजा विशाल मंदिरों में होती थी। मंदिर-अधिकारी *देवदान* गाँवों की व्यवस्था अनुदान के सही उपयोग के लिए करते थे। *देवदान* गाँवों की आय से धार्मिक कर्मचारियों का पोषण होता था। इसका उपयोग आनुष्ठानिक कृत्यों हेतु आवश्यक खाद्य चढ़ावा या अन्य सामग्रियों (अधिकतर सुगंधित वस्तुओं और वस्त्रों) की खरीद हेतु भी किया जाता था। राज्य द्वारा मंदिरों को आनुष्ठानिक प्रयोजनों हेतु नकद धर्मदान भी दिए जाते थे।

मंदिरों द्वारा सिंचाई-संबंधी कार्य भी किया जाता था। *देवदान* भूमि प्राप्त बड़े मंदिरों में एक सिंचाई विभाग होता था, जिसका कार्य मंदिरों को प्राप्त मुद्रा-अनुदानों का समुचित उपयोग करना था। मंदिरों को नकद अनुदान देने वालों को परिवर्द्धित उत्पादन क्षमता से प्राप्त खाद्य भेंट (*प्रसादम्*) का एक भाग प्राप्त होता था।

वास्तव में, मंदिर दक्षिण भारत की आर्थिक गतिविधियों के मुख्य केन्द्र थे। वे केवल विशाल भूस्वामी ही नहीं थे, बल्कि बैंकिग गतिविधियों में भी संलग्न थे। उन्होंने कई लोगों को रोजगार दिया। महालिंगम एक अभिलेख का उल्लेख करते हैं, जिसमें एक मंदिर में 370 सेवकों के होने का वर्णन है। आनुष्ठानिक सेवाओं के लिए मंदिर स्थानीय साज-सामान खरीदते थे। आर्थिक प्रयोजनों के लिए वे व्यक्तियों और ग्राम्य सभाओं को ऋण प्रदान करते थे। ये ऋण भूमि के बदले में दिए जाते थे, जिसकी आय मंदिरों को प्राप्त होती थी। तिरुपति मंदिर को राज्य द्वारा दिए जाने वाले नकद अनुदान सिंचाई के रूप में पुनः निवेशित किए जाते थे। इस प्रकार से प्राप्त आय का प्रयोग धार्मिक कार्यों के लिए किया जाता था। श्रीरंगम मंदिर में नकद अनुदानों का प्रयोग त्रिचनापल्ली के व्यवसायिक संघों को व्यावसायिक ऋण प्रदान करने में किया जाता था। मंदिरों के अपने व्यापार संघ होते थे, जो अपनी निधि का उपयोग विभिन्न उद्देश्यों के लिए करते थे। इस प्रकार, मंदिर लगभग एक स्वतंत्र आर्थिक व्यवस्था के रूप में कार्य करते थे जिसमें व्यक्ति और संस्थाएँ आर्थिक संबंधों द्वारा बंधे हुए थे।

7.4.3 विदेशी व्यापार

विदेशी व्यापार संबंधी जानकारी हमें कृष्णदेव राय के *अमुक्तामाल्यदा*, डोमेन्गो पाएस और नूनिज़ द्वारा प्राप्त होती है। उनमें अश्व-व्यापार का रोचक वर्णन मिलता है। भारतीयों की भूमिका विदेशी व्यापार में न्यूनतम थी। बारबोसा के अनुसार, भारतीय समुद्री व्यापार पर मुस्लिम सौदागरों का पूर्ण नियंत्रण था। शासकों द्वारा उनके साथ अच्छा बर्ताव किया जाता था। उसके अनुसार लाल सागर

से लौटने पर सम्राट उन्हें स्थानीय लेन-देन में सहायता हेतु एक *नायर* अगरंक्षक, *चेट्टी* लेखाकार और एक *दलाल* प्रदान करता था। उनकी प्रतिष्ठा इतनी थी कि कायल में, *मुक्ता मात्स्यकी* (मोती ढूँढने संबंधी कार्य) पर सम्राट के एकाधिकार को भी एक मुस्लिम सौदागर को दे दिया गया। अश्व-व्यापार पर अरबों और बाद में पुर्तगालियों का नियंत्रण था। घोड़ों को अरब, सीरिया और तुर्की के पश्चिमी सामुद्रिक बंदरगाहों पर लाया जाता था। गोवा द्वारा विजयनगर और साथ ही दक्खनी सल्तनतों को घोड़ों की आपूर्ति की जाती थी। सैन्य दृष्टि से दक्षिणी राज्यों के लिए घोड़ों की बहुत महत्ता थी क्योंकि भारत में अच्छी नस्ल के घोड़े प्रजनित नहीं होते थे। इसके अलावा, विजयनगर के उत्तरी दक्खनी मुस्लिम राज्यों के साथ संघर्ष ने मध्य एशिया से आयातित घोड़ों की उत्तरी भारत द्वारा आपूर्ति पर अंकुश लगा दिया था। घोड़ों के अलावा, हाथी-दाँत, मोती, मसाले, मूल्यवान पत्थर, नारियल, ताड़-गुड़, नमक, इत्यादि भी आयातित किए जाते थे। मोती फारस की खाड़ी और लंका तथा मूल्यवान पत्थर पेगु से मंगाए जाते थे। मक्का से मखमल और चीन से साटन, रेशमी, जरीदार एवं बूटेदार कपड़ा आयात किया जाता था। सफेद चावल, गन्ना (ताड़-गुड़ से भिन्न) और लोहे का मुख्यत: निर्यात किया जाता था। विजयनगर से हीरों का आयात होता था। नूनिज़ वर्णन करता है कि इसकी हीरों की खानें विश्व में सबसे बड़ी थीं। मुख्य खानें कृष्णा नदी के तट पर और कुरनूल तथा अनन्तपुर में थीं। इसके फलस्वरूप, विजयनगर और मालाबार में हीरा, नीलम और माणिक जैसे बहुमूल्य पत्थरों को काटने और परिष्कृत करने के बड़े उद्योगों का विकास हुआ।

7.4.4 आंतरिक व्यापार और नगरीय जीवन

समकालीन विदेशी वृत्तांत प्रदर्शित करते हैं कि विजयनगर शासकों के काल में स्थानीय लंबी दूरी के व्यापार में वृद्धि हुई। नगरों के मध्य यात्रियों के लिए मार्ग और उनसे संबंधित सुविधाएँ श्रेष्ठ थीं। कम दूरी तक खाद्यान्नों के परिवहन हेतु गाड़ियों का प्रयोग किया जाता था। नदी तटीय परिवहन विशेषतः पश्चिमी तट पर अप्रवाही जल-व्यवस्था का भी संदर्भ मिलता है। लंबी दूरी के परिवहन हेतु भारवाही पशुओं का इस्तेमाल होता था। कुछ स्थानों में लंबे मार्गों के परिवहन में सुरक्षा हेतु सशस्त्र रक्षकों का उपयोग किया जाता था। प्रभावशाली स्थानीय व्यक्तियों ने व्यापार की महत्ता समझते हुए नगर-आधारित व्यापार और पूरक व्यापार को नियमित और नियतकालिक मेलों के रुप में प्रोत्साहन दिया। उत्सव के समय मंदिरों की ओर जाने वाले मुख्य मार्गों पर नियमित और नियतकालिक मेलों का आयोजन होता था। इन मेलों का आयोजन समीप के कस्बों के व्यापार-संघों द्वारा किया जाता था और इनकी देखभाल व्यापार-संघ के अध्यक्ष द्वारा की जाती थी जिसे *पट्टनस्वामी* कहते थे। स्थानीय प्रभावशाली लोगों, जैसे *गौडा* या *नाडु* के मुखिया के आदेशों पर नगरीय व्यापार को बढ़ावा देने हेतु मेलों का आयोजन होता था। 14वीं से 16वीं शताब्दियों के मध्य के साहित्यिक और अभिलेखीय प्रमाण 80 प्रमुख व्यापारिक केन्द्रों के अस्तित्व को प्रकट करते हैं। कुछ नगर धार्मिक थे तो अन्य व्यापारिक और प्रशासनिक केन्द्र थे। इन नगरों में कई बाजार होते थे, जिनमें व्यापारियों द्वारा व्यवसाय किया जाता था। वे नगरों को किराया अदा करते थे। विशेष वस्तुओं के बाजार भी पृथक होते थे। कृषि संबंधी और गैर-कृषि संबंधी उत्पादों के बाजार वाम हस्त (left hand) और दक्ष हस्त (right hand) हाथ के जाति संबंधों के अनुरूप अलग-अलग होते थे। तीर्थयात्रियों के लिए पवित्र आहार का व्यवसाय और आनुष्ठानिक कार्यों और पदों के अधिकार की खरीद मंदिर-संबंधित नगरीय-व्यापार के महत्वपूर्ण अंग थे।

आन्ध्र के व्यापारियों और शिल्पकारों के संगठनों ने नगर विशेष से अपने घनिष्ठ संबंध बनाए, जैसे तेलुगु के तेलियों और व्यापारियों ने बेरवाडा (कृष्णा जिले में) शहर से संबंध स्थापित किए। इन नगरों की आय, परिवहन शुल्क, दुकानों और घरों के किराए से होती थी। मंदिर-दस्तावेज व्यापारियों और शिल्पकारों की संपन्नता और प्रतिष्ठा का वर्णन करते हैं। विजयनगर राज्य में एक ऐसी नगरीय-विशेषता थी, जो उस युग के किसी अन्य दक्षिण भारत के राज्य में नहीं थी। राजधानी-शहर अपने परिवेश में बाजारों, महलों, मंदिरों, मस्जिदों, इत्यादि को अंगीभूत किए हुए था। तथापि यह नगरीय-विशिष्टता 16वीं शताब्दी के मध्य तक पूर्ण रूप से नष्ट हो गई।

7.5 समाज

विजयनगर साम्राज्य के दक्षिण भारतीय वृहत्तर भाग में सामाजिक संरचना भारतीय समाज की आम संरचना से भिन्न है। सामाजिक संरचना की यह विलक्षणता तीन तरह से थीः

- दक्षिण भारतीय ब्राह्मणों की धर्म-निरपेक्ष भूमिका,
- निचले सामाजिक समूहों में दोहरा विभाजन, और
- समाज का क्षेत्रीय खंडीकरण।

ब्राह्मण जिन स्थानों पर रहते थे, वहाँ भूमि पर उनका नियंत्रण था, एवं उनकी प्रतिष्ठा और शक्ति भी भूमि पर आश्रित लोगों के नियंत्रण से थी। पुजारी वर्ग की हैसियत से पवित्र कार्यों के कारण भी उन्हें प्रतिष्ठा प्राप्त की थी। असंख्य वैदिक मंदिरों के आविर्भाव से, जिन्हें गाँवों (*देवदान*) का अनुदान प्राप्त था, ब्राह्मणों को मंदिर-अधिकारियों के रूप में इतनी शक्ति प्राप्त हुई कि उनका अन्य जातियों और धार्मिक संस्थाओं पर धर्म-विध्यात्मक (ritual) नियंत्रण हो गया। इन धार्मिक केन्द्रों के व्यवस्थापकों की हैसियत से ब्राह्मणों को बहुत अधिक धर्म-निरपेक्ष अधिकार प्राप्त थे।

क्षेत्रीय खंडीकरण का तात्पर्य यह है कि तमिल प्रदेश में सामाजिक समुदायों का, प्राकृतिक उप-क्षेत्र और उससे संबंधित व्यावसायिक ढाँचे के आधार पर, विभाजन था। दक्षिण भारत के सामाजिक समुदायों का अपने स्थान से दूर स्थित समुदायों से कम संबंध था। वे भाई-बहन और मामा-भांजी विवाह को वरीयता देते थे।

सामाजिक संरचना की एक और विशिष्टता 'निचली' जातियों का दोहरा विभाजन था, जो वाम हस्त (left hand [*इडंगई*]) और दक्ष हस्त (right hand [*वलंगई*]) की परिकल्पना से संबंध रखता था (दक्ष हस्त समूह वैष्णव और वाम हस्त जातियाँ शैव थी)। अधिकतर दक्ष हस्त जातियाँ कृषि उत्पादन तथा कृषि उत्पादों के स्थानीय व्यापार में संलग्न थी। वाम हस्त जातियाँ गैर-कृषि उत्पादों में व्यापार तथा चल-शिल्प उत्पादन (mobile artisan production) में संलग्न थीं।

विजयनगर युग में किसान सामाजिक व्यवस्था का आधार था, जिस पर समाज के सभी अन्य वर्ग निर्भर थे। तमिल काव्य शैली, *सत्कम*, मुख्य कृषक वर्ग को विशुद्ध *सत-शूद्र* मानती थी। उन्होंने अपने लिए आनुष्ठानिक पवित्रता और आदरणीय धर्म-निरपेक्ष दर्जा प्राप्त किया।

मंदिर किसी विशेष देवता की पूजा करने वाले वर्गों के सामाजिक अंतरण की रूपरेखा या निर्धारण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते थे। दक्षिण भारतीय राजशाही में वंश-परंपरा की एक प्रमुख विशेषता वंश-देवता की सामूहिक भक्ति थी। किसानों के देवताओं के तीर्थों (जैसे *अम्मन*) के गैर-ब्राह्मण पुजारी ब्राह्मण प्रभुत्व वाले विशाल शिव और विष्णु तीर्थ-स्थानों की व्यवस्था में भी भाग लेते थे। विशाल तीर्थ-स्थलों पर स्थित सम्प्रदायी संगठन के अधिष्ठानों (*मठों*) में ब्राह्मण, गैर-ब्राह्मण परंपरा दोनों के व्यक्ति होते थे। इस प्रकार, इस युग के सामाजिक संगठन में ब्राह्मण, वाम हस्त और दक्ष हस्त की जातियाँ (जिनमें आदर योग्य कृषि-जातियाँ वेल्लाल और बुनकरों जैसी कमज़ोर जातियाँ आती थीं) सम्मिलित थीं।

बोध प्रश्न-2

1) विजयनगर साम्राज्य में भू-पट्टेदारी की प्रकृति पर एक टिप्पणी कीजिए।

.....

.....

.....

2) विजयनगर साम्राज्य में मंदिरों की आर्थिक भूमिका की चर्चा कीजिए।

.....

.....

.....

3) विजयनगर शासकों के काल में विदेशी व्यापार के विशेष संदर्भ सहित वाणिज्य और व्यापार की प्रगति का वर्णन कीजिए।

.....

.....

.....

4) दक्ष हस्त (right hand) और वाम हस्त (left hand) जातियों को परिभाषित कीजिए।

.....

.....

.....

7.6 सारांश

विजयनगर शक्ति का आधार उसकी दो प्रमुख राजनीतिक संस्थाएँ *नायनकार* और *आयगार* थीं जिन्हें इतिहासकारों द्वारा विभिन्न प्रकार से व्याख्यायित किया गया है। मंदिर न केवल धार्मिक केन्द्र अपितु आर्थिक गतिविधियों के महत्वपूर्ण केन्द्र भी थेः वे बैंकिंग और सिंचाई के कार्यो, आदि का निर्वहन करते थे, वाणिज्य और व्यापार उन्नत अवस्था में था। किंतु, भारतीय व्यापारियों की विदेशी (समुद्री) व्यापार में भूमिका नगण्य थी, जबकि मुस्लिम व्यापारियों का इस पर एकाधिकार था।

7.7 शब्दावली

अमरम्	सेनानायकों को प्रदत्त गाँव
भंडारवड़ा	गाँव की शाही भूमि
देवदान	मंदिरों को प्राप्त गाँव
दसावंदा और कट्टू कोडगे	सिंचाई निवेश से प्राप्त आय
नाडु	किसान सभा या संगठन
मान्या	ग्राम्य स्तर के अधिकारियों, ब्राह्मणों, मंदिरों तथा मठों को दी जाने वाली कर-मुक्त भूमि
नायक	योद्धा प्रमुख
सभा	ब्राह्मण सभा

7.8 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न-1

1) भाग 7.2 देखें

2) उप-भाग 7.3.1 देखें

3) उप-भाग 7.3.2 देखें

बोध प्रश्न-2

1) देखें उप-भाग 7.4.1

2) देखें उप-भाग 7.4.2

3) देखें उप-भाग 7.4.3

4) देखें भाग 7.5

7.9 संदर्भ ग्रंथ

महालिंगम, टी. वी., (1969) *एडमिनिस्ट्रेशन एंड सोशल लाइफ अंडर विजयनगर* (मद्रासः यूनिवर्सिटी ऑफ मद्रास).

नीलकंठ, शास्त्री, (1958) *हिस्ट्री ऑफ साउथ इंडिया फ्रॉम प्रीहिस्टोरिक टाइम्स टू द फॉल ऑफ विजयनगर* (लंदनः ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस).

स्टाइन, बर्टन, (1999) *प्रेजेन्ट, स्टेट एंड सोसाइटी इन मिडिवल साउथ इंडिया* (दिल्लीः ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस).

स्टाइन, बर्टन, (1989) *द न्यू कैम्ब्रिज हिस्ट्री ऑफ इंडिया, विजयनगरः 2* (कैम्ब्रिजः कैम्ब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस).

7.10 शैक्षणिक वीडियो

विजयनगर पॉलिटी

https://www.youtube.com/watch?v=ywHABSci1js

सोशियो-पॉलिटिकल फॉरमेशन्स एंड इकॉनोमी ऑफ द विजयनगर एम्पायर

https://www.youtube.com/watch?v=5T_Q_VWjZGU

ignou
THE PEOPLE'S
UNIVERSITY

इकाई 8 पन्द्रहवीं शताब्दी में नवीन राज्यों का उदय*

इकाई की रूपरेखा

8.0 उद्देश्य

8.1 प्रस्तावना

8.2 क्षेत्रीय शक्तियों का आविर्भावः विभिन्न दृष्टिकोण

8.3 मध्य तथा पूर्वी भारत

- 8.3.1 मालवा
- 8.3.2 जौनपुर
- 8.3.3 बंगाल
- 8.3.4 असम
- 8.3.5 ओडिशा

8.4 उत्तरी एवं पश्चिमी भारत

- 8.4.1 कश्मीर
- 8.4.2 उत्तर-पश्चिमः राजपूताना
- 8.4.3 गुजरात
- 8.4.4 सिंध

8.5 क्षेत्रीय राज्य और वैद्यता का प्रश्न

- 8.5.1 क्षेत्रीय राज्यों की विशेषताएँ
- 8.5.2 सामंत और भूमिपति कुलीग वर्ग
- 8.5.3 उत्तराधिकारी राज्यों के रूप में उत्तर भारतीय राज्य
- 8.5.4 उत्तराधिकार का प्रश्न
- 8.5.5 वैधता का प्रश्न

8.6 सारांश

8.7 शब्दावली

8.8 बोध प्रश्नों के उत्तर

8.9 संदर्भ ग्रंथ

8.10 शैक्षणिक वीडियो

8.0 उद्देश्य

इस इकाई में हम 13-15वीं शताब्दियों के मध्य के क्षेत्रीय राज्यों के उदय का अध्ययन करेंगे। इस इकाई को पढ़ने के बाद आपः

- मध्य तथा पूर्वी भारत में क्षेत्रीय राज्यों के उदय के विषय में जान पाएंगे,
- आप उन क्षेत्रीय शक्तियों के विषय में बता सकेंगे जिनका उत्तरी तथा पश्चिमी भारत में उदय हुआ,

* डॉ. फिरदौस अनवर, किरोड़ीमल कॉलेज, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली; प्रो. सुनीता जैदी, इतिहास और संस्कृति विभाग, जामिया मिलिया इस्लामिया, नई दिल्ली; और प्रो. आभा सिंह, सामाजिक विज्ञान विद्यापीठ, इंदिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय, नई दिल्ली।

यह इकाई हमारे पूर्ववर्ती पाठ्यक्रम ई.एच.आई-03: *भारतः 8वीं सदी से 15वीं सदी तक* के खंड 7, इकाई 23, 24, और 25 से ली गई है।

- आप इन राज्यों के क्षेत्रीय प्रसार के विषय में जानकारी प्राप्त करेंगे,
- इन राज्यों के अपने पड़ोसी राज्यों तथा अन्य दूसरी क्षेत्रीय शक्तियों के साथ संबंधों के विषय में भी आप जान सकेंगे,
- आपको दिल्ली सल्तनत और इन राज्यों के बीच संबंधों के विषय में भी जानकारी प्राप्त होगी,
- क्षेत्रीय राज्यों की चरित्रगत विशेषताओं का उल्लेख कर सकेंगे,
- उत्तराधिकार के मुद्दे पर प्रकाश डाल सकेंगे, और
- राजाओं द्वारा अपनी प्रभुसत्ता को वैध बनाने की चेष्टाओं को रेखांकित कर सकेंगे।

8.1 प्रस्तावना

कमज़ोर होती दिल्ली सल्तनत को क्षेत्रीय राज्यों ने गंभीर खतरा पैदा कर दिया था और उनके उदय के कारण सल्तनत के भौगोलिक बिखराव की प्रक्रिया का प्रारंभ हो गया। इस इकाई में हमारा अध्ययन मध्य तथा पूर्वी भारत में मालवा, जौनपुर, बंगाल, असम तथा ओडिशा में क्षेत्रीय राज्यों के उदय पर केन्द्रित होगा।

इस इकाई में हमारा ध्यान उत्तरी तथा पश्चिमी भारत में क्षेत्रीय शक्तियों के उदय पर भी केंद्रित होगा। इस इकाई में हम कश्मीर, राजपूताना, सिंध तथा गुजरात के क्षेत्रीय राज्यों के प्रादेशिक प्रसार की विवेचना करेंगे। हम इन उपरोक्त राज्यों में राजनीतिक प्रणाली की स्थापना और उनके प्रसार तथा विखंडन का अध्ययन करेंगे। आप देखेंगे कि किस प्रकार से उनका उद्भव हुआ और कैसे उन्होंने अपनी प्रभुमत्ता को स्थापित करने में सफलता प्राप्त की।

13वीं से 15वीं सदियों के दौरान दो प्रकार के राज्यों का उदय हुआः (अ) प्रथम वे राज्य थे जिनका उदय एवं विकास सल्तनत से स्वतंत्र तौर पर हुआ (जैसे कि असम, ओडिशा एवं कश्मीर के राज्य); और (ब) बंगाल, जौनपुर, मालवा एवं गुजरात जैसे राज्य, जो अपने अस्तित्व के लिए सल्तनत के ऋणी थे। हालांकि सिंध एवं राजपूताना लगातार दिल्ली सल्तनत के आक्रमणों से प्रभावित रहे, और कभी-कभी वे दिल्ली सल्तनत का एक हिस्सा भी रहे लेकिन फिर भी सिंध और राजपूताना अपनी-अपनी क्षेत्रीय विशेषताओं को बनाए रखने में सफल हुए। ये सभी राज्य निरंतर एक दूसरे के साथ युद्ध करते रहते थे। इन संघर्षों में कुलीन वर्गों, अमीरों या राजाओं तथा स्थानीय अभिजात वर्गों ने निर्णायक भूमिका अदा की। अतः इन क्षेत्रीय शक्तियों में से कुछ दिल्ली सल्तनत के पतन का परिणाम थीं, जबकि कुछ का स्वतंत्र तौर पर विकास हुआ था। कश्मीर राज्य का विकास स्वतंत्र तौर पर हुआ, जबकि गुजरात राज्य का विकास दिल्ली सल्तनत के पतन के फलस्वरूप हुआ।

इस इकाई में उत्तर भारत से तात्पर्य विंध्य पर्वत श्रृंखला के उत्तर में स्थित समस्त प्रदेश से है, उत्तर में कश्मीर, उत्तर-पश्चिम में राजपूताना, सिंध, मुल्तान और गुजरात, मध्य मालवा और जौनपुर; पूर्व में ओडिशा, बंगाल, असम के कमाटा और अहोम क्षेत्र इसके अंतर्गत शामिल किए गए हैं। दिल्ली और इसके आसपास के इलाके भी उत्तर भारत का ही हिस्सा है, परन्तु इस इकाई में हम उनका जिक्र नहीं कर रहे हैं क्योंकि यहाँ हमारा उद्देश्य क्षेत्रीय राज्यों पर विचार-विमर्श करना है जबकि यह क्षेत्र दिल्ली सल्तनत में आता था। इस इकाई में क्षेत्रीय राज्यों की चरित्रगत विशेषताओं और क्षेत्रीय राजनीतिक व्यवस्था में कुलीन वर्ग की भूमिका का विश्लेषण करने का प्रयास भी किया जाएगा।

लेकिन हम यहाँ जानबूझकर दक्षिण भारत और दक्खन में चोल साम्राज्य के पतन के बाद उदय हुई क्षेत्रीय शक्तियों की चर्चा नहीं कर रहे हैं क्योंकि उनकी चर्चा हम अपने पाठ्यक्रम **बीएचआईसी-132** की **इकाई 5** और **6 (पांड्य और होयसल)** में पहले ही कर चुके हैं; वहीं यादव, काकतीय और माबार की चर्चा इस पाठ्यक्रम की **इकाई 2** तथा **5** में उनके दिल्ली सुल्तानों के साथ संघर्ष के संदर्भ में की गई है। चौदहवीं शताब्दी से दक्खन और दक्षिण भारत में नवीन राजनीतिक संरचनाओं का उदय होता है जिनसे अंततः शक्तिशाली विजयनगर तथा बहमनी साम्राज्यों का उदय हुआ, इनकी चर्चा हम इस पाठ्यक्रम की **इकाई 5** और **6** में करेंगे। इसके अतिरिक्त, यहाँ हम विभिन्न क्षेत्रों में हुए राजनीतिक घटनाक्रम की ही चर्चा करेंगे, उनके तहत हुए सांस्कृतिक विकास की चर्चा **खंड IV** की विषयवस्तु है।

8.2 क्षेत्रीय शक्तियों का आविर्भावः विभिन्न दृष्टिकोण

क्षेत्रीय शक्तियों के आविर्भाव के प्रश्न पर समाजशास्त्रियों में बहुत मतभेद हैं। जोसेफ ई. श्वाट्ज़बर्ग ने सल्तनत युग की अस्थिरता के लिए कुछ विशेष भू-राजनीतिक और पारिस्थितिकीय कारकों पर प्रकाश डाला है।

श्वाट्ज़बर्ग के अनुसारः

> प्रमुख शक्तियों के प्रभाव क्षेत्र व अवधि में उत्तरोत्तर कमी की वजह उनके द्वारा समतुल्य सामर्थ्य रखने वाली अन्य प्रमुख शक्तियों के साथ लगातार बढ़ती हुई गंभीर प्रतिस्पर्धा में देखी जा सकती है। इसके फलस्वरूप सल्तनत काल में दो या दो से अधिक बड़ी शक्तियों में बार-बार युद्धों और इनकी गहनता में वृद्धि की प्रवृत्ति विकसित हुई। इससे एक ही शक्ति व्यवस्था के भीतर अस्थिरता बढ़ी और व्यवस्था के भीतर के सभी प्रदेशों की सामर्थ्य में वृद्धि पर प्रतिबंध लग गया।

मध्यकाल तक श्रेष्ठ उपलब्ध कृषि-भूमि पर खेती करने और बसने की प्रक्रिया लगभग पूर्ण हो चुकी थी। इसने गहन कृषि को जन्म दिया, जिसने बदले में अधिक गहन बसावट को जन्म दिया। इससे जनसंख्या वृद्धि और जनसंख्या दबाव का मार्ग प्रशस्त हुआ। अंतिम दो कारणों से सेना की आक्रामक और रक्षात्मक दोनों ही प्रकार की शक्ति में वृद्धि हुई। इस प्रकार, श्वाट्ज़बर्ग के अनुसार भौगोलिक विशिष्टताओं ने संघर्ष को अवश्यंभावी बना दिया और क्षेत्रीय शक्तियों के आविर्भाव में योगदान किया।

रिचर्ड जी. फॉक्स, बर्नाड कोहन और के. एन. सिंह ने क्षेत्रीय शक्तियों के उदय की, सामाजिक-राजनीतिक-मानवविज्ञान मॉडल के आधार पर व्याख्या की है जहाँ सगोत्रता, कुल और वंश मुख्य संघठक कारक होते हैं। रिचर्ड फॉक्स के अनुसार, इन वर्गों में राजनैतिक सत्ता की गारंटी और सुरक्षा के लिए कार्य करते हुए भी बार-बार विद्रोह की प्रवृत्ति पाई जाती है, जिससे केन्द्रीय नियंत्रण के संकट में होने के समय केन्द्रीय सत्ता खण्डित एवं कमजोर होती है। राजपूत कुल-गोत्र संगठन इसके प्रत्यक्ष उदाहरण हैं। राजपूताना में कुलीय आधार पर संगठित ये सरदार अथवा राजा समान वंशों के छोटे प्रदेशों को नियंत्रित करते थे। राजपूत सामाजिक संगठन घनिष्ठ रूप से कुल, जाति और वंश के द्वारा आपस में गुंथा हुआ था। उनके प्रभाव क्षेत्रों का आधार विवाहों द्वारा और असंतुष्ट उप-वंशों के दूसरे प्रदेशों में बस जाने से था। ये 'एकवंशीय कुल-संगठन' कई राजनीतिक और सैनिक जिम्मेदारियाँ निभाते थे जो राजस्व वसूली और कानून व व्यवस्था को बनाए रखने से संबंधित होती थीं। उन्हें राज्य द्वारा 'वैधता' प्राप्त थी। राज्य का 'शासनादेश' कुलनिष्ठा का 'शासनदेश' माना जाता था। इस 'आतंरिक एकजुटता' और 'बाह्य मान्यता' के कारण स्थानीय स्तर पर उनकी स्थिति इतनी मजबूत हो गयी कि न तो राज्य और न ही कुल-सदस्य उन्हें बेदखल कर सकते थे।

तैमूर के आक्रमण के पश्चात् केन्द्र में उत्पन्न रिक्तता ने इन सरदारों और राजाओं को स्थानीय स्तर पर गहरी जड़ें जमाने का अवसर दिया। इस प्रकार 13वीं-15वीं शताब्दी के मध्य परिस्थिति का लाभ अपने हितों में उठाने वाले शक्ति-केन्द्रों के मध्य आपसी लड़ाइयाँ प्रारंभ हुईं।

क्षेत्रीय-राज्य साम्राज्य का दर्जा क्यों नहीं प्राप्त कर सके?

प्रश्न यह है कि ये क्षेत्रीय राज्य 'दोयम' दर्जे के राज्य के रूप में सीमित रहे और साम्राज्य का दर्जा क्यों प्राप्त नहीं कर सके? क्यों ये 'अधि-प्रादेशिक क्षेत्रीय शक्तियों' ('supra-regional power') के रूप में बने रहे और 'अखिल भारतीय शक्ति' ('Pan-Indian power') का दर्जा प्राप्त नहीं कर सकें? श्वाट्ज़बर्ग के शब्दों में, इसके कतिपय भू-राजनीतिक, संरचनात्मक और पारिस्थितिकीय कारण थे। सर्वप्रथम कारण उनका परिधि पर स्थित होना था। कश्मीर, गुजरात, राजपूताना, सिंध, ओडिशा, असम और बंगाल मुख्य दर्जा प्राप्त करने के लिहाज से साम्राज्य के हृदय-स्थल (केन्द्र) में स्थित नहीं थे। पहाड़ी भू-भागों ने भी उनके क्षेत्रीय विस्तार के मार्ग में बाधाएँ खड़ी कीं। कश्मीर अपना विस्तार मुख्य रूप से अगम्य पहाड़ों की वजह से नहीं कर सका। इसी प्रकार, उत्तर-पश्चिम में प्रमुख भारतीय रेगिस्तान की बढ़ती शुष्कता ने सिंध और राजपूताना के राज्यों के विस्तार पर रोक लगाई। यद्यपि मालवा और जौनपुर मध्य भारत में स्थित और अत्यंत उर्वर मैदान थे, उनकी 'खुली-सीमाएँ' विरोधी राज्यों से घिरी थीं। प्रत्येक राज्य एक दूसरे के प्रचुर-स्रोतों के नियंत्रण हेतु प्रयास करता रहता था, फलतः क्षेत्रीयता की मुख्य विशेषता निरंतर युद्ध की स्थिति थी जो विस्तार में बाधक थी।

एक अन्य समस्या राजस्व-स्रोतों की कमी थी जिसके कारण वे आगे और विस्तार एवं मजबूती प्रदान

करने के लिए बड़ी सेनाएँ रखने में असमर्थ थे। उनके सीधे नियंत्रण में बहुत छोटा भाग होता था जिसका राजस्व सीधे राज्य-कोष में जाता था। उन्हें अपनी आय और सशस्त्र सेवकों की आपूर्ति के लिए मुख्यतः 'बिचोलियों' या 'सरदारों' पर निर्भर रहना पड़ता था। यही नहीं, राजस्व जमाकर्ता (बिचौलिए) कर-निर्धारण में टालमटोल करते थे। अधीन सरदार भी विद्रोह करने के लिए प्रत्येक अवसर का फायदा उठाते थे। आप पायेंगे कि, जैसा कि आप अगले भाग में पढ़ेंगे, मालवा और गुजरात के बीच के परिधीय क्षेत्र के ये करदाता सरदार, अक्सर मौके अनुसार कभी मालवा और कभी गुजरात को समर्थन देते थे। राजपूतों द्वारा 'अखिल भारतीय' दर्जा प्राप्त न करने का मुख्य कारण बढ़ती हुई अंतर-वंशीय लड़ाइयाँ थीं। गुजरात और बंगाल के अतिरिक्त दूसरे प्रदेशों (विशेषतः जौनपुर और मालवा) के स्थल-रुद्ध (land-locked; समुद्र से संबंध विच्छिन्न) होने से उन्हें सामुद्रिक वाणिज्य और व्यापार बढ़ाने का अवसर प्राप्त नहीं हुआ। इसके फलस्वरूप उनकी आय में कमी आयी और विस्तारवादी नीति हेतु आवश्यक 'अतिरिक्त' स्रोतों के लिए उनके पास बहुत कम संभावनाएँ थीं।

8.3 मध्य तथा पूर्वी भारत

इस भाग में हम मुख्य रूप से मध्य तथा पूर्वी भारत में 13वीं-15वीं शताब्दियों के मध्य उदित क्षेत्रीय शक्तियों पर ध्यान केन्द्रित करेंगे।

8.3.1 मालवा

सल्तनत के पतन ने मालवा के स्वतंत्र राज्य की स्थापना के मार्ग को प्रशस्त किया। मालवा के तुगलक गवर्नर दिलावर खां गौरी (मृ. 1406) ने सन् 1401-02 में स्वतंत्रता प्राप्त कर ली तथा स्वयं को मालवा का राजा घोषित कर दिया। उसने निमाड़, सौयर, दमोह तथा चन्देरी पर अधिकार करके अपने राज्य की सीमाओं का प्रसार किया। दिलावर खां ने अपनी पुत्री का विवाह खानदेश के मलिक राजा फारूकी के बेटे अली शेर खलजी के साथ किया और फारूकी की बेटी का विवाह अपने पुत्र अल्प खां के साथ। इन वैवाहिक संबंधों द्वारा उसे अपने राज्य की दक्षिण-पूर्वी सीमाओं की रक्षा करने में मदद मिली। गुजरात के शासक मुज़फ्फर शाह के साथ मित्रतापूर्ण संबंध बनाए रखते हुए उसने सफलतापूर्वक मालवा को आक्रमणों से बचाया। लेकिन शीघ्र ही 1406 में उसकी मृत्यु हो जाने के कारण मालवा गुजरात के शासक मुज़फ्फर की साम्राज्यवादी अभिलाषाओं का शिकार हो गया। लेकिन 1408 में होशंग शाह (1406-35) ने मालवा की सत्ता पर अधिकार करने में सफलता प्राप्त कर ली। उसने शीघ्र ही खेरला तथा गगरौन पर अधिकार कर लिया। उसकी दृष्टि ग्वालियर पर भी लगी थी। लेकिन मुबारक शाह की शक्ति को महसूस करने पर ग्रामीण क्षेत्रों में थोड़ा बहुत नकुसान पहुँचाने के बाद 1423 में होशंग शाह ने ग्वालियर से अपनी सेनाओं को वापस लौटा लिया। होशंग शाह ने कालपी के मुस्लिम शासक के साथ वैवाहिक संबंध स्थापित किए जिससे कालपी का उपयोग जौनपुर-मालवा तथा दिल्ली-मालवा के बीच मध्यवर्ती राज्य के रूप में किया जा सके।

होशंग शाह का उत्तराधिकारी मुहम्मद शाह अयोग्य साबित हुआ। मुहम्मद शाह के एक वर्ष के संक्षिप्त शासनकाल में मालवा का दरबार आंतरिक षड्यंत्रों का अखाड़ा बन गया और इसके गंभीर परिणाम हुए। इसकी अंतिम परिणति उसकी हत्या (1436) के रूप में हुई और यह हत्या उसके ही कुलीन वर्ग के एक सदस्य महमूद खलजी द्वारा की गई। इस तरह से गौरी शासन का स्वयं ही अंत हो गया।

महमूद खलजी की स्वयं की स्थिति को पुराने गौरी अमीरों द्वारा चुनौती दी गई। महमूद खलजी ने प्रारंभ में तुष्टीकरण की नीति का अनुसरण किया और उनको *इक्ते* तथा उच्च पद प्रदान किये, लेकिन वह उनका समर्थन प्राप्त न कर सका। उसको उच्च कुलीनों द्वारा किए गए अनेक विद्रोहों का सामना करना पड़ा। अंततः उसने इन विद्रोही कुलीनों की समस्या का सफलतापूर्वक हल कर लिया। अपनी आंतरिक स्थिति को सुदृढ़ करने के बाद महमूद खलजी को अब अपने राज्य के प्रसार करने का समय प्राप्त हो गया।

मेवाड़ ऐसा राज्य था, जिसने उसका ध्यान सबसे अधिक आकर्षित किया। राणा कुम्भा के अधीन मेवाड़ ने अपने सीमावर्ती राजपूत राज्यों को अपने अधीन करने और मेवाड़ के साथ मिलाने की नीति का अनुसरण किया। इससे मालवा के लिए प्रत्यक्ष तौर पर खतरा पैदा हो गया। शासन के प्रारंभ

में 1437 में ही महमूद खलजी को शक्तिशाली राणा का सामना करना पड़ा। राणा कुम्भा ने होशंग शाह के पुत्र उमर खां से वायदा किया कि वह महमूद खलजी के स्थान पर मालवा की गद्दी पर उसको बैठाएगा। सारंगपुर की लड़ाई (1437) में महमूद खलजी को पराजित कर दिया गया और उसको गिरफ्तार कर लिया गया। बाद में, महमूद खलजी ने रणमल की मृत्यु के बाद मेवाड़ में फैली अराजकता का लाभ उठाते हुए, 1442 में मेवाड़ पर आक्रमण कर दिया। उसने बनमाता के मंदिर को नष्ट कर दिया और बिना कुछ विशेष प्राप्ति के वह वापस लौट गया। तब से महमूद खलजी ने राणा कुम्भा के विरुद्ध हर वर्ष आक्रमण किए। यद्यपि महमूद खलजी ने गगरौन पर 1444 में तथा मण्डलगढ़ पर 1457 में अधिकार कर लिया था, लेकिन राणा कुम्भा अपने क्षेत्र की एकता बनाए रखने तथा उसकी ठीक प्रकार से सुरक्षा करने में सफल रहा। लेकिन यह संघर्ष बिना किसी विराम के अनवरत चलता रहा।

मालवा एवं जौनपुर के बीच संघर्ष का मुख्य कारण कालपी था। होशंग शाह अपने भतीजे जलाल खां को कालपी की सत्ता प्राप्त कराने में पहले मदद दे चुका था। लेकिन जलाल खां की मृत्यु के बाद (1442) नसीर खान जहाँ कालपी का शासक बना। परन्तु महमूद शर्की ने उसको बाहर खदेड़ दिया। इसके कारण जौनपुर का कालपी पर नियंत्रण बढ़ने लगा। महमूद खलजी ने इसको पसंद नहीं किया। इसका परिणाम 1444 में दोनों के बीच संघर्ष के रूप में हुआ। अंततः एक संधि पर हस्ताक्षर किए गए। महमूद शर्की कालपी को खान जहाँ को देने को तैयार हो गया और इसके कारण जौनपुर तथा मालवा के बीच मधुर संबंध कायम हो गए।

गुजरात ऐसी दूसरी अन्य शक्ति थी जिसका सामना मालवा को करना पड़ा। यहाँ तक कि मुज़फ्फर गुजराती ने एक बार होशंग शाह को कैद करने में सफलता भी प्राप्त की।

मानचित्र 8.1: मालवा

1442 में अहमद शाह की मृत्यु के बाद, मुहम्मद शाह गुजराती की स्थिति कमज़ोर हो जाने पर महमूद खलजी को सुल्तानपुर तथा नन्दुरबार पर 1451 में अधिकार करने का अवसर प्राप्त हो गया। जिस समय महमूद खलजी मुहम्मद गुजराती के विरुद्ध अभियान पर था ठीक उसी समय मुहम्मद गुजराती की मृत्यु हो गई। उसके उत्तराधिकारी सुल्तान कुतबुद्दीन ने महमूद खलजी के साथ संधि कर ली। दोनों पक्ष एक दूसरे की प्रादेशिक सीमाओं का सम्मान करने के लिए सहमत हो गए। दोनों इस बात के लिए भी सहमत हुए कि वे मेवाड़ में अपनी-अपनी स्वतंत्र नीति का अनुसरण करेंगे। परन्तु अन्य क्षेत्रों के लिए दोनों के मध्य इस तरह का समझौता न हो सका। महमूद खलजी ने बहमनी राजनीति में जो हस्तक्षेप किया, महमूद बेगड़ा उससे कठोरता से निपटा।

महमूद खलजी के पुत्र एवं उत्तराधिकारी ग़ियास शाह (1469-1500) ने विजयों की अपेक्षा सुदृढ़ीकरण की ओर अधिक ध्यान दिया। मेवाड़ के राणा के साथ संक्षिप्त संघर्ष के अलावा (1473 में यह संघर्ष हुआ) ग़ियास शाह का शासनकाल अपनी इस नीति के फलस्वरूप अंत तक शांतिमय रहा। 1531 में सुल्तान महमूद खलजी द्वितीय की मृत्यु के बाद खलजी वंश का अंत हो गया। तत्पश्चात् आगे आने वाले तीन दशकों से लेकर 1562 में मुगलों के मालवा को अपने अधीन करने तक (1580 में अकबर द्वारा इसे एक अलग *सूबे* के रूप में स्थापित किया गया) मालवा प्रारम्भिक अफगानों के मध्य संघर्ष का केन्द्र-बिन्दु बना रहा जब अंततः बहादुरशाह द्वारा मालवा को 1531 में अपने अधीन कर लिया गया; तथा बाद में यह मुगलों तथा अफगानों के मध्य संघर्ष स्थल रहा।

8.3.2 जौनपुर

अफीफ हमें सूचित करता है कि गोमती नदी के किनारे जौनपुर नगर की स्थापना फिरोज़ शाह तुगलक द्वारा 1359-1360 में उस समय की गई थी, जबकि वह अपने दूसरे बंगाल अभियान पर था। यह शहर सत्ता का एक मज़बूत केन्द्र हो गया और शीघ्र ही इसका विकास कुछ समय के लिए दिल्ली के समानान्तर एक प्रतिभागी नगर के रूप में हुआ।

फिरोज़ शाह तुगलक के एक अमीर मलिक सरवर ने फिरोज़ के पुत्रों के बीच उत्तराधिकार के लिए हुए संघर्ष का भरपूर लाभ उठाया और सुल्तान मुहम्मद शाह के अधीन वह *वज़ीर* के पद तक पहुँच गया। मलिक सरवर ने *सुल्तान-उस शर्क* की उपाधि के साथ-साथ पूर्वी जिलों का नियंत्रण प्राप्त कर लिया। तैमूर के आक्रमण के कारण दिल्ली का राज्य बिखर गया। सरवर ने इस अवसर का लाभ उठाते हुए स्वयं को जौनपुर का स्वतंत्र शासक घोषित कर दिया। उसने अपने राज्य की सीमाओं को कोल (अलीगढ़), सम्भल तथा मैनपुरी में स्थित रापरी तक विस्तारित कर दिया। उसकी उच्च अभिलाषाओं के कारण जौनपुर का दिल्ली, बंगाल, ओडिशा तथा मालवा के साथ कड़ा सैन्य संघर्ष हुआ। यद्यपि इन संघर्षों में उसे सफलता प्राप्त न हुई, लेकिन उसने जाजनगर तथा ग्वालियर के शासकों को अपने अधीन कर लिया। उसके उत्तराधिकारी एवं पुत्र मुबारक शाह शर्की (1399-1401) को अपनी स्थिति को सुदृढ़ करने का शायद ही समय प्राप्त हो सका। लेकिन छोटे भाई एवं उत्तराधिकारी इब्राहिम शाह शर्की (1401-1440) ने प्रभावशाली ढंग से अपने राज्य का प्रसार किया। इस संबंध में उसकी सबसे महत्वपूर्ण विजय कन्नौज (1406) की थी। इस समय कन्नौज मुहम्मद शाह तुगलक के अधीन था। इससे उसके सम्मान में बहुत अधिक वृद्धि हुई और उसकी आगामी उपलब्धियों के लिए मार्ग प्रशस्त हुआ। 1407 में उसने दिल्ली पर अधिकार करने की इच्छा से आक्रमण किया, लेकिन प्रारंभिक सफलताओं के बावजूद उसका यह प्रयास असफल रहा। यद्यपि उसने कालपी (1414) पर भी अपना प्रभाव स्थापित कर लिया था, लेकिन कालपी का शासक कादिर खां उसके लिए लगातार समस्याएँ पैदा करता रहा। 1414 में इब्राहिम ने बंगाल के शासक गणेश को भी पराजित किया। अपने शासन के अंतिम वर्षों में उसने पुनः 1437 में दिल्ली पर आक्रमण किया और उसके आसपास के कुछ *परगनों* पर अधिकार कर लिया। दिल्ली के सुल्तान मुहम्मद शाह तुगलक को अंततः उससे समझौता करना पड़ा। सुल्तान अपनी पुत्री बीबी हाजी का विवाह इब्राहिम के पुत्र महमूद खां से करने के लिए सहमत हुआ। इब्राहिम के जोश और शक्तिशाली सफलताओं ने जौनपुर राज्य की प्रतिष्ठा में वृद्धि की। इब्राहिम को *शीराज-ए हिन्द* की उपाधि प्राप्त हुई।

इब्राहिम के उत्तराधिकारियों महमूद शर्की (1440-1454), मुहम्मद शर्की (1457-1458) तथा हुसैन शर्की (1458-1505) के शासनकाल में दिल्ली सुल्तानों के साथ लगातार संघर्ष होते रहे। अंततः

बहलोल लोदी ने 1483-1484 में जौनपुर पर अधिकार कर लिया और इसे मुबारक नोहानी के अधीन कर दिया गया। हुसैन शाह ने इसको पुनः प्राप्त करने के लिए अंतिम प्रयास किए, किन्तु वह असफल रहा। अंततः बहलोल ने अपने पुत्र बरबक शाह को जौनपुर के सिंहासन पर बैठा दिया और इस तरह से शर्की शासकों के काल का अंत हो गया।

बोध प्रश्न-1

1) होशंग शाह की प्रमुख उपलब्धियाँ बताइए।

.....

.....

.....

2) 'लोदी-शर्की संघर्ष ने अंततः शर्की राज्य के भाग्य का सूर्यास्त कर दिया'। उपरोक्त कथन के प्रकाश में शर्की शासकों के पतन की विवेचना लगभग पाँच पंक्तियों में कीजिए।

.....

.....

.....

3) निम्नलिखित कथनों में कौन-सा सही है और कौन-सा गलत। सही (✓) तथा गलत (×) के चिह्न लगाइए:

i) दिलावर खां तुगलक गवर्नर था। ( )

ii) गगरौन मालवा तथा शर्की शासकों के बीच एक मध्यवर्ती राज्य था। ( )

iii) महमूद खलजी के साथ संघर्ष में राणा कुम्भा उमर खां के साथ था। ( )

iv) इब्राहिम शर्की ने *शीराज-ए हिन्द* की उपाधि प्राप्त की। ( )

8.3.3 बंगाल

बंगाल दिल्ली से काफी दूरी पर स्थित था और अपनी भौगोलिक-राजनीतिक परिस्थितियों के कारण इस पर दिल्ली के सुल्तानों द्वारा अपना कड़ा नियंत्रण रख पाना काफी मुश्किल था। राज्य के गवर्नरों ने इस दूरी का पूरा-पूरा लाभ उठाया। जैसे ही केन्द्रीय सत्ता कमजोर होती या शासकगण किसी अन्यत्र स्थान पर व्यस्त होते तब इस क्षेत्र के कुलीन वर्ग के लोग स्वतंत्र शासकों के रूप में कार्य करने लगते। पहले भी 1225 में इल्तुतमिश ने स्वयं अपनी सत्ता को स्थापित करने के लिए बंगाल के विरुद्ध सैनिक अभियान का संचालन किया था और बलबन को बंगाल के गवर्नर तुग़रिल बेग के विद्रोह को कुचलने में लगभग तीन वर्ष का समय लगा। बंगाल पर दिल्ली सल्तनत के प्रभुत्व को बनाए रखने के लिए बलबन ने अपने पुत्र बुग़रा खां को 1281 में बंगाल का गवर्नर नियुक्त किया। बुगरा खां ने बलबन की मृत्यु के पश्चात् (1287) स्वयं को दिल्ली सल्तनत के सिंहासन का दावेदार प्रस्तुत करने के स्थान पर बंगाल का शासक बने रहने का निर्णय किया। बाद में, हम देखते हैं कि 1301 में ग़ियासुद्दीन तुगलक ने लखनौती की ओर सैनिक अभियान के लिए प्रस्थान किया। लेकिन मुहम्मद तुगलक के समय में बंगाल के प्रति अधिक प्रभावशाली नीति का अनुसरण किया गया। मुहम्मद तुगलक ने अपने वफादार समर्थकों को लखनौती, सोनारगाँव एवं सतगाँव का गवर्नर नियुक्त किया। इससे शक्तिशाली गुटों के मध्य संतुलन स्थापित करने में सफलता प्राप्त हुई। इसके कारण स्थानीय प्रभावशाली तत्वों की शक्ति को कम करने में मदद मिली और दिल्ली के नियंत्रण में वृद्धि हुई। फिर भी, समय-समय पर बंगाल की ओर से दिल्ली के प्रभुत्व को चुनौती मिलती रही।

बंगाल दो शक्तिशाली वंशों द्वारा शासित हुआ – इलियास शाही (1342-1481) और हुसैन शाही (1494-1538)। बीच के छोटे अंतरालों में राजा गणेश (1415-16 से 1432-33) और अबीसीनियाईयों (1487-1493) ने शक्ति अधिगृहीत की। बाद में, बंगाल शेरशाह सूर और हुमायूँ के आक्रमणों का शिकार बना। तत्पश्चात् अफगान-करारानी शासन प्रारंभ हुआ। अंत में 1576 में दाउद खां करारानी को हरा अकबर ने बंगाल पर अधिकार कर लिया और उसे अपने साम्राज्य का हिस्सा बना लिया। हालांकि, संपूर्ण शांति 1599 तक ही स्थापित की जा सकी।

इलियास शाह (1342-1357), जो मूलतः मुहम्मद तुगलक का अमीर था और जो दिल्ली में उसका मातहत रहा था, इलियासशाही वंश का संस्थापक था। इलियास शाह बंगाल का शक्तिशाली शासक बनकर उभरा और उसने *सिकन्दर-ए सानी* (द्वितीय सिकन्दर) की उपाधि धारण की। शीघ्र ही उसने तिरहुत (1339-1340), लखनौती (1342) और सोनारगाँव (1353) पर अधिकार कर लिया और इसी के साथ उसने बनारस की ओर कूच किया और गोरखपुर तथा बहराइच पर कब्जा कर लिया। उसने 1357 में कामरूप को भी अपने अधिकार में ले लिया। उसने नेपाल (1350-1351) और जाजनगर (ओडिशा; 1353) की ओर भी सैन्य अभियान भेजे। सुल्तान फिरोज़ तुगलक ने स्वयं बंगाल की ओर सैनिक अभियान के लिए प्रस्थान किया और इस समस्या का निदान करने में उसे लगभग एक वर्ष (1353-1354) का समय लगा।

एक बार फिर 1359 में सुल्तान फिरोज़ तुगलक को सिकन्दर शाह (1357-1389) की शक्ति को दबाने के लिए उसके विरुद्ध सैनिक अभियान पर जाना पड़ा। फिरोज़ तुगलक की मृत्यु (1388) के बाद दिल्ली के सुल्तान इतने कमजोर हो गए कि वे बंगाल के विद्रोही शासकों को अपने अधीन न रख सके।

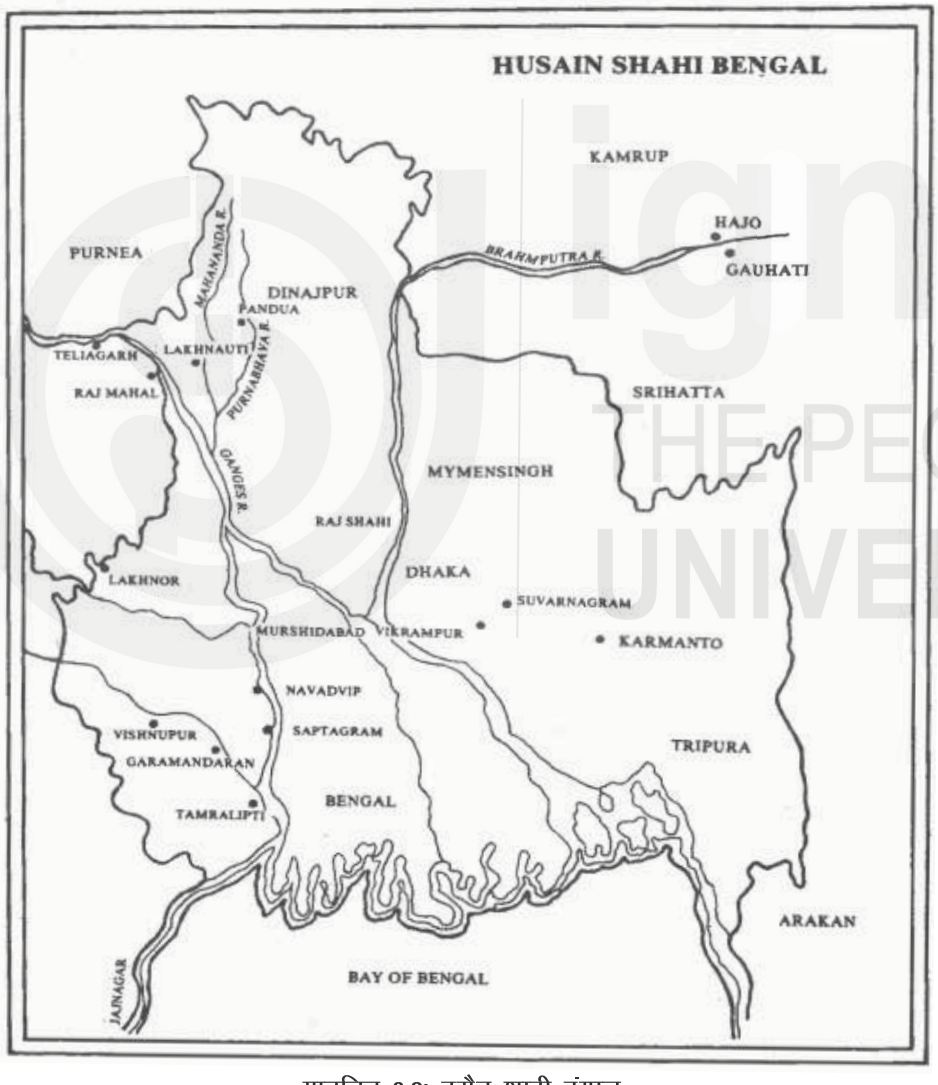

मानचित्र 8.2: हुसैन शाही बंगाल

सिकन्दर शाह का पुत्र ग़ियासुद्दीन आज़म शाह (1390-1410) एक लोकप्रिय शासक था। अराकान से सटा हुआ सीमांत प्रदेश चटगाँव भी आज़म शाह की सल्तनत का प्रमुख हिस्सा था। बर्मा के आक्रमण के समय उसने अराकानी शासक को संरक्षणत्व प्रदान किया तथा सहायता दी। उसे कमाटा तथा अहोम के राजाओं के संयुक्त आक्रमण का सामना करना पड़ा और करातोय नदी के

पार के क्षेत्र का समर्पण करना पड़ा। चीन के साथ उसने कूटनीतिक संबंध स्थापित किए। उसके द्वारा 1404 में पहला राजदूत मिंग शासक के दरबार में भेजा गया, तत्पश्चात् 1409-1410 तक दोनों देशों के मध्य राजदूतों का नियमित आदान-प्रदान होता रहा। प्रसिद्ध चीनी यात्री मा-हुआन, जो बंगाल सल्तनत का विशिष्ट विवरण प्रदान करता है, 1405 में चीनी मिशन के साथ ही बंगाल आया था।

1410 में ग़ियासुद्दीन शाह की हत्या के बाद बंगाल को आंतरिक अराजकता तथा संघर्षों के दोहरे संकट का सामना करना पड़ा (1410-1418 और 1435-42)। लेकिन इलियास शाह के एक वंशज नसीरूद्दीन अबुल मुज़फ्फर महमूद (1434-1460) के सत्ता में आ जाने के साथ स्थिति संभली। उसने जाजनगर (ओडिशा) के शासक कपिलेन्द्र देव के आक्रमण (1445) का सामना किया। उसके द्वारा ही राजधानी गौड़ को पुनः स्थापित किया गया जिसे अलाउद्दीन अली शाह द्वारा फिरोज़ाबाद (पांडुआ) स्थानांतरित किया गया था। उसके पुत्र रुक्नुद्दीन बरबक शाह प्रथम (1460-1474) ने प्रसारवादी नीति का अनुसरण किया। इसके फलस्वरूप उसकी सीमाएँ गंगा के उत्तर में बाड़नेर तक तथा दक्षिण में जैस्सोर-खुलना तक फैल गईं। प्रसार के कार्य में अबीसीनिया के गुलाम सैनिकों ने निर्णायक भूमिका अदा की, लेकिन बरबक के द्वारा उनको संरक्षण दिए जाने की नीति घातक सिद्ध हुई। 1487 में अबीसीनिया के सेनापति सैफुद्दीन फिरोज़ ने बंगाल की सत्ता पर अधिकार कर लिया। लेकिन वह अपनी स्थिति को सुदृढ़ करने में असफल रहा और 1493 में अलाउद्दीन हुसैन शाह (1493-1519) ने सत्ता पर अधिकार कर लिया और उसने हुसैनशाही वंश की स्थापना की। उसने न केवल अबीसीनिया के गुलामों पर नियंत्रण स्थापित करने में सफलता प्राप्त की अपितु एक गहन प्रसारवादी नीति का अनुसरण किया। उसके शासनकाल में बंगाल की सीमाएँ उत्तर-पश्चिम में सरन तथा बिहार तक, दक्षिण-पूर्व में सिलहट तथा चटगाँव तक, उत्तर-पूर्व में हाजो और दक्षिण-पश्चिम में मन्दरान तक फैल गईं। 1495 में उसे सुल्तान सिकन्दर लोदी के शक्तिशाली आक्रमण का सामना करना पड़ा क्योंकि उसने जौनपुर के शासक हुसैन शाह को शरण दी थी। बाद में आक्रमण न करने की संधि पर हस्ताक्षर किए गए और हुसैन शाह ने इस तरह के भगोड़ों को शरण न देने का वचन दिया। 1538 में शेरशाह सूर के हाथों गौड़ के पतन के साथ गौरवशाली हुसैन शाही वंश के शासन का अंत हो गया। इसके साथ ही इसके अंतिम शासक ग़ियासुद्दीन महमूद शाह VI (1526-1527-1538) की मृत्यु भी 1539 में शीघ्र ही हो गई।

बोध प्रश्न-2

1) भौगोलिक-राजनीतिक परिस्थितियों ने बंगाल को अपनी स्वतंत्रता बनाए रखने में कैसे मदद की?

.....

.....

.....

2) बंगाल की 15वीं सदी के अंत की राजनीति में अबीसीनियाई कुलीनों की क्या भूमिका थी?

.....

.....

.....

3) तिथिक्रमानुसार व्यवस्थित कीजिए:

i)	बख्तियार खलजी	1281
ii)	बुग़रा खां	1460-1474
iii)	इलियास शाह	1357-1389
iv)	रुक्नुद्दीन बरबक	1205
v)	सिकन्दर शाह	1342

8.3.4 असम

भौगोलिक तौर पर मध्यकालीन असम के अंतर्गत पश्चिम में करातोया नदी की घाटी के साथ-साथ

संपूर्ण ब्रह्मपुत्र की घाटी तथा उत्तर-पूर्व में मिश्मी पहाड़ियों एवं पटकाय बूम का संपूर्ण इलाका आता था। इसके पूर्व की ओर बर्मा राज्य की सीमा समानांतर जाती थी। 13वीं सदी से 15वीं सदी तक असम के अंदर चूटिया, अहोम (या ताय-अहोम), कोच, दिमासा, त्रिपुरी, मणिपुरी, खासी एवं जैनतिया जैसी कबीलाई राज्य-व्यवस्थाएँ विद्यमान थीं। अंततः चूटिया और अहोम कबीलों का शक्तिशाली कबीलों के रूप में उदय हुआ। इनके अतिरिक्त असम में कमाटा (कामरूप) राज्य भी विद्यमान था। इस भाग में हम अहोम तथा कमाटा-कामरूप राज्यों के उदय की विस्तार से चर्चा करेंगे।

कमाटा-कामरूप

मध्यकालीन कमाटा राज्य में ब्रह्मपुत्र घाटी सहित (रंगपुर को छोड़कर), भूटान, कूच बिहार, मैमनसिंह तथा गारो पहाड़ियों के क्षेत्र शामिल थे। राय सन्ध्या के काल (1250-1270) तक कामरूप (आधुनिक उत्तरी गोहाटी) कमाटा राज्य की राजधानी था। लेकिन कचारी राज्य के प्रसार ने राय सन्ध्या को अपनी राजधानी को कामरूप से कमाटापुर (आधुनिक कूच बिहार जिले में) ले जाने के लिए बाध्य किया और तभी से इसको कमाटा-कामरूप राज्य कहा जाने लगा।

हम पहले ही पढ़ चुके हैं कि मुहम्मद गौरी के एक सेनापति बख्तियार खलजी ने 1206 में कामरूप पर आक्रमण किया था। लेकिन उसके लिए यह अभियान एक त्रासदी साबित हुआ। उसकी सेना पूर्णरूपेण नष्ट हो गई थी। 1227 में सुल्तान ग़ियासुद्दीन इवाज़ ने भी कामरूप पर अधिकार करने का प्रयास किया और उसका भी राय पृथु के हाथों वही हश्र हुआ जो बख्तियार खलजी का हुआ था। बाद में इल्तुतमिश के पुत्र नसीरूद्दीन महमूद ने राय पृथु की शक्ति को कुचलने में सफलता प्राप्त की। 1255 में मलिक युज़बेक ने कामरूप पर आक्रमण किया और बाद में उसका भी वही हाल हुआ जो बख्तियार खलजी का हुआ था। उसकी सेनाएँ शीघ्र ही शक्ति-विहीन हो गईं, मलिक युज़बेक गंभीर रूप से घायल हो गया और शीघ्र ही 1257 में उसकी मृत्यु हो गई। सिंहध्वज के शासनकाल (1300-1305) में बंगाल के सुल्तान शमसुद्दीन फिरोज़ शाह (1301-1322) ने 1303 में ब्रह्मपुत्र को पार करते हुए मैमनसिंह एवं सिलहट पर अधिकार कर लिया।

कामरूप राज्य सदैव अहोम साम्राज्यवादी योजनाओं का शिकार होता रहा। *बुरंजी* साहित्य में कमाटा के शासक सिंधु राय (1260-1285) के विरुद्ध अहोम राजा सुकाफा (1228-1268) की सफलता का वर्णन मिलता है। सिंधु राय ने सुकाफा की अधीनस्थता को स्वीकार कर लिया, लेकिन उसके उत्तराधिकारी प्रतापध्वज (1300-1305) ने अहोम राजाओं को नज़राना देना बंद कर दिया, फलस्वरूप सुखांगफा (1293-1332) ने फिर कमाटा राज्य पर आक्रमण किया। एक लंबी लड़ाई तथा भारी नुकसान के बाद अंततः प्रतापध्वज ने शांति के लिए सुलह की और सुखांगफा के साथ अपनी पुत्री रजनी का विवाह कर दिया।

14वीं सदी के कमाटा राज्य की एक महत्वपूर्ण विशेषता *भूयान* सरदारों का महान् विद्रोह था, जिन्होंने अस्थिर परिस्थितियों का लाभ उठाया। चचेरे भाइयों धर्म नारायण तथा दुर्लभ नारायण के बीच उत्तराधिकार के लिए युद्ध हुआ। प्रारंभ में *भूयान* सरदारों का विद्रोह असफल रहा, क्योंकि दुर्लभ नारायण (1330-1350) तथा अरिमत्ता (1365-1385) की शक्ति इनसे कहीं अधिक थी। लेकिन अरिमत्ता की मृत्यु (1385) के बाद उसके उत्तराधिकारी *भूयान* सरदारों के प्रहारों का सामना कर सकने में कमजोर साबित हुए और 15वीं शताब्दी के मध्य में राय पृथु के वंश को *भूयान* सरदारों के ख्यान वंश द्वारा उखाड़ फेंक दिया गया और नीलध्वज (1440-1460) ने इस नए वंश की स्थापना की। नीलाम्बर (1480-1498) ख्यान वंश का सबसे शक्तिशाली शासक हुआ और उसने अपने राज्य की सीमाओं को करातोया से बारनदी तक बढ़ा दिया। अबीसीनियाई गुलामों ने बंगाल (गौड़) में अराजकता की जो स्थिति पैदा की थी, नीलाम्बर ने उसका लाभ उठाते हुए, बंगाल के उत्तर-पूर्वी भाग पर अधिकार करने में सफलता प्राप्त की। बाद में, अलाउद्दीन हुसैन शाह (1493-1519) ने नीलाम्बर की शक्ति को कुचल दिया और इसी के साथ ख्यान वंश के शासन का अंत हो गया।

अहोम

अहोमों का संबंध दक्षिण-पूर्वी एशिया के ताय कबीले की उप-शाखा माओ-शान से था। 1228 में अहोम ऊपरी बर्मा में स्थित मोगांग नामक प्रदेश तथा यूनान को छोड़कर अंततः 1253 में ऊपरी असम दिखोऊ घाटी (आधुनिक सिबसागर मण्डल) में अंतिम तौर में बस गए। उन्होंने चरायदेव (बाद में, 1397 में चारगुआ को राजधानी बनाया) को अपने राज्य की राजधानी बनाया। माओ-शान कबीले

का सुकाफा (1228-1268) प्रथम अहोम शासक था और उसने चुटियों, मोरान, बोरहियों, नागों, कचारियों तथा कमाटा (कामरूप) को अपने अधीन कर लिया। उसके पुत्र सुत्यूफा (1268-1281) ने कचारियों को पराजित कर अपने प्रभुत्व-क्षेत्र को दक्षिण की ओर ब्रह्मपुत्र के किनारे कालंग (आधुनिक उत्तरी कछार उपमंडल) तक बढ़ा दिया। सुखांगफा (1293-1332) के अधीन अहोम शासक संपूर्ण ब्रह्मपुत्र घाटी में सर्वोच्च शक्ति बन गए। सुखांगफा की मृत्यु के बाद एक रिक्तता पैदा हो गई थी और इसके फलस्वरूप अहोम राज्य में तीन बार राजा के बिना (1364-1369, 1376-1380 तथा 1389-1397) अन्तराल रहा। सुदंगफा के शासनकाल में (1397-1407) स्थिति में स्थायित्व पैदा हुआ। इसके शासनकाल में नारा तथा कमाटा के शासकों के साथ संघर्ष हुए। इसके फलस्वरूप अहोम राज्य की सीमाएँ उत्तर में पटकाय तथा उत्तर-पूर्व में करातोया नदी तक पहुँच गईं। सुदंगफा के शासनकाल में स्थापित सीमाएँ संपूर्ण 15वीं सदी में बनी रहीं। बाद में सुहेनफा (1488-1493) को नाग तथा कचारियों के विद्रोहों का सामना करना पड़ा। लेकिन इन विद्रोहों का दमन कर दिया गया। 15वीं सदी के अंतिम वर्षों में सुपिम्फा (1493-1497) के *बुरागोहिन* खेनपुंग जैसे कुलीनों ने विद्रोह कर दिया। यद्यपि विद्रोह का दमन कर दिया गया, लेकिन इसने कुलीनों के बीच होने वाली आतंरिक कलहों को स्पष्ट कर दिया जिसका प्रारंभ 15वीं सदी के अंतिम वर्षों में हो चुका था।

अहोम शासनकाल का एक अन्य महत्वपूर्ण पहलू बिस्वा सिंघा के अधीन कोचों का संघर्ष था। कोच शासक नारायणन और उसके सेनापति चिलाराय ने अहोम सत्ता का तख्ता पलट करने की कोशिश की। लेकिन 1565 में अहोम इस क्षेत्र में सर्वाधिक प्रबल शक्ति के रूप में उभरे तथा 1581 में कोचों का कूच बिहार, संकोश के पश्चिम में और कोच हाजो, संकोश के पूर्व में, के रूप में विभाजन ने कोच शक्ति को कमजोर कर दिया। कूच बिहार को मुगल साम्राज्य में मिला लिया गया तथा कोच हाजो, अहोम सत्ता का हिस्सा बन गया। अहोम क्षेत्र में मुगल अभियान 1612 से प्रारंभ हुए जो निरंतर चलते रहे। इस बीच मीर जुमला 1662-1663 में अहोम राजधानी गरगाँव पर मुगल प्रभुत्व स्थापित करने में सफल रहा। लेकिन मीर जुमला की मृत्यु से तख्ता पलट गया और अंततः सरायघाट के युद्ध (1671-1672) में शक्ति संतुलन अहोम शासकों के पक्ष में झुक गया और राजा राम सिंह, जिसे औंरगजेब द्वारा भेजा गया था, को अहोमों के हाथों अपमानजनक पराजय का सामना करना पड़ा। हालांकि मुगल हमले 1682 तक चलते रहे, जब अंततः औंरगजेब ने अपना ध्यान पूरी तरह से दक्खन की ओर केन्द्रित कर दिया।

अहोम राजनीति में कुलीन वर्ग की विशेष भूमिका थी। मूल सलाहकार जो सुकाफा के साथ आए थे, वे *बुरागोहिन* और *बरगोहिन* थे। बाद में सी-हुम-माँग (1494-1539) द्वारा *बरपात्रगोहिन* को शामिल किया गया। प्रताप सिंघा (1603-1641) ने पुनः *बरबरूआ* और *बरफुकन* को शामिल कर पाँच सलाहकारों की समिति, ***पात्र मंत्री***, का निर्माण किया। इनमें से प्रथम तीन का पद वंशानुगत तथा स्थायी था, और उन्हें मात्र उन्हीं लोगों में से चुना जाता था जो सुकाफा के साथ आए थे। इसके अतिरिक्त अन्य अधिकारी भी थे जैसे, *फुकन, राजखोवा* और *बरूआ*। उनका पद न तो वंशानुगत था और न ही स्थायी। अहोम शासन का एक और अन्य प्रमुख तत्व ***पायक*** थे। *पायक* प्रणाली उनका सामाजिक-आर्थिक बनाम सैन्य संगठन था। समस्त अहोम समुदाय के 16-50 वर्ष की आयु के पुरुष *पायक* (*करनी* [निम्न स्तरीय] *पायक*) के रूप में संगठित थे। उन्हें सिविल, सैन्य मजदूरों अथवा सैनिकों के रूप में नियोजित किया जाता था। उनमें उच्च श्रेणी के *पायक* (*चामुआ/विसया*) भी होते थे। वे *खेल* (*पायकों* की एक इकाई जो विशिष्ट कार्य करते थे; बाद में *खेल* विशिष्ट क्षेत्र अथवा समूह/गोत्र के *पायकों* के आधार पर संगठित किए जाने लगे) के रूप में संगठित थे जिनके प्रमुख *फुकन* अथवा *बरूआ* होते थे। एक *खेल*, पुनः ***गोत*** में वर्गीकृत थे, जो कि चार *पायकों* की एक इकाई थी, और प्रत्येक *गोत* में से एक व्यक्ति हमेशा राज्य की सेवा में सेवारत होता था। इस प्रकार *पायक* प्रणाली राजनीतिक सत्ता तथा सामाजिक-राजनीतिक संगठन के केंद्रीकरण का प्रमुख स्रोत थी जिस पर समस्त प्रशासनिक मशीनरी निर्भर थी।

8.3.5 ओडिशा

तुर्कों के आक्रमण के समय ओडिशा पूर्वी गंगा शासकों के अधीन था। *तबकात-ए नासिरी* के वृत्तांत के अनुसार बख्तियार खलजी ने मुहम्मद तथा अहमद भाइयों को जाजनगर (आधुनिक ओडिशा) पर ठीक अपनी मृत्यु से पूर्व (1205) आक्रमण करने के लिए भेजा था। इस समय जाजनगर का शासक

राजराजा-III (1197-1211) था। अगला आक्रमण ग़ियासुद्दीन इवाज़ के नेतृत्व में अनंगभीम-III (1211-1238) के सत्तारूढ़ होने के तुरन्त बाद हुआ। यद्यपि *तबकात-ए नासिरी* में इवाज़ की सफलता की प्रशंसा की गई है, लेकिन चाटेश्वर अभिलेख के अनुसार इस संघर्ष में अनंगभीम-III की विजय हुई थी। ऐसा प्रतीत होता है कि इवाज़ के आक्रमण को रोक दिया गया था।

नरसिंहम-I (1238-1264) को इख्तियारूद्दीन यूजबेक के आक्रमण का सामना करना पड़ा और यूजबेक को अपने प्रथम दो आक्रमणों में सफलता भी प्राप्त हुई। लेकिन बाद में नरसिंहम-I ने उसके प्रयासों को विफल कर दिया। नरसिंहम-I ने अपने राज्य की सीमाओं को मिदनापुर, हावड़ा तथा हुगली तक फैला दिया। 13वीं सदी के समापन पर (1296) सतगाँव दिल्ली सुल्तानों के अधीन हो गया। आप **इकाई 2** में पढ़ चुके हैं कि ग़ियासुद्दीन तुगलक (1320-1325) के शासनकाल में तथा उलुग खां (बाद में मुहम्मद तुगलक) ने किस तरह से जाजनगर पर अधिकार कर लिया था और यहाँ के शासक उनके सामन्त हो गए थे।

भानूदेव-III (1352-1378) के शासनकाल से ही गंगा राजाओं की शक्ति कमज़ोर होने लगी। इस अवसर का लाभ उठाते हुए पड़ोसी राज्यों ने ओडिशा पर आक्रमण शुरू कर दिये।

सन् 1353 में बंगाल के शासक शमसुद्दीन इलियास ने चिल्का झील को पार करते हुए जाजनगर के शासक को पराजित किया और वह विशाल लूट की दौलत के साथ अनेक हाथी भी ले गया। बाद में, दिल्ली, विजयनगर, जौनपुर तथा बहमनी शासकों ने भी ओडिशा में यदा-कदा लूटपाट की।

इस तरह की अव्यवस्था तथा अनिश्चय की स्थिति में भानूदेव-IV (1414-1435) के मंत्री कपिलेन्द्र ने 1435 में ओडिशा के सिंहासन पर अधिकार कर ओडिशा में गजपति शासन की नींव डाली। 1464-1465 तक उसके राज्य की सीमाएँ दक्षिण अरकाट जिले तथा दक्खन पठार के पूर्वी क्षेत्र तक फैल गईं। कपिलेन्द्र ने हुमायूँ शाह बहमनी को उस समय अपमानजनक ढंग से पराजित किया, जिस समय हुमायूँ ने देवरकोन्डा पर आक्रमण किया और कपिलेन्द्र देवरकोन्डा के सरदार की मदद (1459) के लिए आया। इसके बाद कपिलेन्द्र जब तक जीवित रहा तब तक बहमनी शासकों ने तेलंगाना पर आक्रमण करने का साहस नहीं किया। 1450 में कपिलेन्द्र ने बंगाल के शासक नसीरूद्दीन (1442-1459) को पराजित करने में सफलता प्राप्त की और *गौडेश्वर* की उपाधि को धारण किया। 1453 में राजामुन्द्री भी उसके राज्य का एक भाग बन गया। 1462 तक उसके राज्य की सीमाएँ हुगली से दक्षिण में कावेरी नदी तक फैल गईं। लेकिन उसके शासन काल के अंतिम वर्षों में विजयनगर के शासक सलूवा नरसिंह (1485-1491) ने कावेरी नदी के बेसिन से ओडिशा के लोगों को निष्कासित कर दिया। पुरुषोत्तम ने सिंहासन प्राप्त करने के बाद (1467) तमिल क्षेत्रों पर पुनः आधिपत्य स्थापित करने की कोशिश की, लेकिन उसकी विजयों का प्रभाव क्षेत्र केवल कांची तक सीमित रहा। इसी के साथ-साथ पुरुषोत्तम को बहमनी शासक मुहम्मद शाह-III (1463-1482) को कोन्डनीर (कोण्डाविडु) तथा राजामुन्द्री देना पड़ा। सलूवा नरसिंह (बाद में विजयनगर शासक) ने स्थिति का लाभ उठाते हुए उदयगिरि (1476) पर अधिकार कर लिया। जब तक मुहम्मद शाह-III जीवित था, पुरुषोत्तम ने इन क्षेत्रों पर अधिकार करने का प्रयास नहीं किया। 1482 में उसकी मृत्यु के बाद पुरूषोत्तम ने राजामुन्द्री, कोण्डनीर को 1484 में तथा उदयगिरि को 1486-1491 के मध्य सलूवा नरसिंह से छीन लिया। इस तरह से उसने अपने राज्य की सीमाओं को उत्तर में भागीरथी से दक्षिण में पेन्नार नदी तक बढ़ा लिया। अपने पिता की भाँति, उसके पुत्र प्रताप रूद्र (1497-1540) ने भी प्रसारवादी नीति का अनुसरण किया। उसने अपने शासन का अधिकतर समय विजयनगर के शासक कृष्णदेव राय तथा बंगाल के शासक हुसैन शाह के साथ संघर्ष करने में बिताया। प्रताप रूद्र ने विजयनगर पर आक्रमण किया लेकिन 1509 में बंगाल शासक हुसैन शाह के आक्रमण के कारण उसे वापस लौटना पड़ा। कृष्णदेव राय ने अपने राज्याभिषेक (1510) के बाद विजयनगर के उन सब किलों को जो गजपति राजा प्रताप रूद्र देव ने अपने आधिपत्य में ले लिए थे वापस लेने का प्रयत्न किया और वह 1515 तक उदयगिरि, कोंडाविडु और अन्य किलों को वापस जीतने में सफल रहा। उसने प्रताप रूद्र के बेटे वीरभ्रद को भी पकड़ लिया जिसने विजयनगर की राजधानी में आत्महत्या कर ली जिसके कारण प्रताप रूद्र को मजबूरन 1519 में संधि करनी पड़ी और अंततः कृष्णा नदी दोनों राज्यों के मध्य सीमा बन गई। उसने कृष्णदेव राय को अपनी बेटी भी विवाह में दी। 1540 में उसकी मृत्यु के बाद उसके उत्तराधिकारी राज्य की एकता को कायम न रख सके और शीघ्र ही सूर्यवंशी (गजपति) शासन का अंत (1542) हो गया।

बोध प्रश्न-3

1) कामरूप राज्य के साथ बंगाल के शासकों के संबंधों की व्याख्या कीजिए।

.....

.....

.....

2) ताय-अहोम कौन थे? सुखांगफा की उपलब्धियों को बताइए।

.....

.....

.....

3) विजयनगर, बहमनी तथा बंगाल के शासकों के साथ कपिलेन्द्र के संबंधों की विवेचना कीजिए।

.....

.....

.....

4) रिक्त स्थानों को भरिए:

क) ..... ने राजधानी को कामरूप से कमाटापुर स्थानांतरित कर दिया।

ख) असमिया साहित्य को ..... कहा जाता है।

ग) ख्यान वंश की नींव ..... के द्वारा रखी गई।

घ) अहोम ..... कबीले से संबंधित थे।

ड.) पुरुषोत्तम ने कोन्डाविडु तथा राजामुन्द्री ..... को दे दिया।

8.4 उत्तरी एवं पश्चिमी भारत

इस भाग में हम विशेष रूप से कश्मीर, सिंध, राजपूताना तथा गुजरात राज्यों की चर्चा करेंगे।

8.4.1 कश्मीर

भौगोलिक तौर पर कश्मीर घाटी के दक्षिण तथा दक्षिण-पश्चिम में पीर पंजाल की पर्वत श्रृंखलाएँ और दक्षिण-पूर्व में किश्तवार घाटी है तथा दक्षिण-पूर्व तथा उत्तर-पश्चिम क्षेत्र शक्तिशाली मध्य तथा उत्तर-पश्चिमी हिमालय पर्वत की श्रृंखलाओं से ढका है। कश्मीर घाटी के अंतर्गत एक ओर झेलम नदी एवं इसकी सहायक नदियों का मैदानी क्षेत्र आता है तो दूसरी ओर पठारी क्षेत्र है। नदी के किनारे का मैदानी क्षेत्र उपजाऊ है तथा भूमि कछारी है और यहाँ काफी मात्रा में खेती होती है, लेकिन ऊँचे पठार कम उपजाऊ हैं और अगर खेती की भी जाती है तो फसल अच्छी नहीं होती है। कश्मीर घाटी के पर्वतों से घिरे होने के कारण दर्रों (ज़ोजिला, बनिहाल, बुदिल, पीर पंजाल तथा तोशामैदान) का बहुत अधिक महत्व है और राजनीतिक, आर्थिक तथा सामाजिक प्रक्रियाओं पर उनका व्यापक प्रभाव पड़ा है। लेकिन दक्षिणी दर्रों को लोदी शासकों के समय तक पार न किया जा सका था; किंतु बारामुला, पाखली तथा स्वात के दर्रों को सदैव पार किया जाता रहा।

13वीं सदी का कश्मीर एक स्वतंत्र राज्य था लेकिन वहाँ का हिन्दू राजा जगदेव (1198-1212) एक कमजोर शासक था। उसके शासन के दौरान एक असंतुष्ट सामंतीय समुदाय दमरा ने विद्रोह किया परंतु इस विद्रोह को सफलतापूर्वक दबा दिया गया। लेकिन उसके राजादेव (1212-1235), संग्रामदेव (1235-1252) तथा रामदेव (1252-1256) जैसे उत्तराधिकारी अपनी शक्ति को बनाए न रख सके। रामदेव की मृत्यु के बाद दमरा सामंत सिंहदेव (1286-1301) को शासन पर अधिकार करने का अवसर मिल गया। लेकिन उसके वंश का शासन भी अधिक दिनों तक न चल सका। विशेष बात यह है कि तुर्कों के भारत आगमन के बाद लगभग दो सदियों तक कश्मीर उनके प्रभाव से मुक्त रहा। यद्यपि इससे पहले महमूद गज़नवी ने 1015 तथा 1021 में दो बार कश्मीर पर आक्रमण करने का प्रयास किया लेकिन हिमालय तथा हिन्दुकश की दुर्गम पहाड़ियों ने उसकी इच्छाओं को पूरा न होने दिया। कश्मीर में कभी भी आक्रमणकारी प्रवेश नहीं कर सकते थे – इस

मान्यता को 1320 में उस समय तोड़ दिया गया जबकि सेनापति दुलाचा ने कश्मीर पर आक्रमण कर उसे पराजित करने में सफलता प्राप्त की और अथाह संपत्ति को लूटा। लेकिन भंयकर तूफान के कारण बनिहाल दर्रे पर उसकी मृत्यु हो गई।

इस आक्रमण के गहरे दूरगामी प्रभाव हुए। इसने कश्मीर में मुस्लिम शासन की स्थापना के मार्ग को प्रशस्त कर दिया। जिस ढंग से राजा सहदेव ने मंगोल समस्या का सामना किया, तथा मंगोलों द्वारा कश्मीर में भंयकर तबाही के कारण कश्मीर की जनता में असंतोष बढ़ा। इस स्थिति का लाभ लद्दाख के भौटा राजकुमार रिंचन ने उठाया और 1320 में उसने सिंहासन पर अधिकार कर लिया। उसने शीघ्र ही इस्लाम को स्वीकार कर लिया और उसने सुल्तान सद्रूद्दीन की उपाधि धारण की। उसकी हत्या के बाद कश्मीर राज्य में लम्बे समय तक अराजकता की स्थिति बनी रही जिसके कारण 1339 में शमसुद्दीन प्रथम शाह मीर वंश की स्थापना करने में सफल हुआ। बाद में शाह मीर वंश के शासक शहाबुद्दीन (1354-1373) ने कश्मीर सल्तनत को मजबूत आधार प्रदान करने का प्रयास किया। जिस समय 1398 में तैमूर लंग ने भारत पर आक्रमण किया, उसने फौलाद बहादुर तथा ज़ैनुद्दीन को कश्मीर के सुल्तान सिकन्दर (1389-1413) के पास दूत बनाकर भेजा और उन्होंने सुल्तान से विशाल धन-राशि की माँग की। इससे एक बार फिर कश्मीर में अराजकता का लंबा दौरा चला जो 1420 में ज़ैन-उल आबिदीन के कश्मीर के सिंहासन पर बैठने के साथ समाप्त हुआ। उसने (मृ. 1470) 50 वर्षों तक कश्मीर में कुशलतापूर्वक शासन किया। उसने अपने राज्य की सीमाओं को पश्चिमी तिब्बत तक बढ़ाया और लद्दाख तथा शैल पर अधिकार कर लिया। लेकिन उसकी उपलब्धियों को शीघ्र ही उसके उत्तराधिकारियों ने नष्ट कर दिया। उसकी मृत्यु ने आंतरिक कलह को जन्म दिया। अंततः 16वीं सदी के प्रारंभ में सैय्यद शासकों ने कश्मीर राज्य की सत्ता को प्राप्त कर लिया।

सैय्यदों के शासन तक दिल्ली के सुल्तानों एवं कश्मीर के शासकों के बीच कोई संघर्ष नहीं हुआ। लेकिन बहलोल लोदी के समय में कश्मीर एवं दिल्ली के बीच संबंध तनावपूर्ण हो गये। *तबकात-ए अकबरी* के अनुसार हैदर शाह (1470-1472) की मृत्यु के बाद उत्तराधिकार के लिए प्रारंभ हुए संघर्ष में बहलोल लोदी के आदेश पर पंजाब के गवर्नर तातार खाँ ने सुल्तान हसन के चाचा बहराम खाँ का पक्ष लिया। सुल्तान हसन ने बहराम खाँ का वध करने में सफलता प्राप्त की। तातार खाँ के द्वारा बहराम खाँ की सहायता करने से सुल्तान हसन नाराज हो गया। उसने मलिक ताज़ी भट्ट को पंजाब पर आक्रमण करने के लिए भेजा। ताज़ी भट्ट ने न केवल तातार खाँ को पराजित किया बल्कि उसने सियालकोट पर अधिकार कर लिया। सुल्तान हसन की मृत्यु (1484) के बाद सैय्यद हसन के पुत्र सैय्यद मुहम्मद के आदेश पर तातार खाँ ने कश्मीर पर एक बार फिर आक्रमण किया। जम्मू एवं कश्मीर की संयुक्त सेनाओं के सामने तातार खाँ को पराजय का मुँह देखना पड़ा। मुहम्मद शाह के शासन (1517-1528) के अंतिम वर्षों में मुगलों ने कश्मीर की राजनीति में प्रवेश किया। बाबर ने कूचक बेग और शेख अली बेग की अधीनता में मुगल सेना को सिकन्दर को सिंहासन प्राप्त करने में सहायता के लिए भेजा। इस प्रकार कश्मीर में मुगल घुसपैठ की शुरुआत हुई। बाबर के पश्चात् मिर्ज़ा कामरान ने भी कश्मीर के मामलों में हस्तक्षेप किया। परन्तु कश्मीरी राजनीति में सर्वाधिक महत्वपूर्ण भूमिका मिर्ज़ा हैदर दोग़लत ने निभाई। उसने 1532 में कश्मीर में प्रवेश किया और अपनी मृत्यु (1551) तक कश्मीर की राजनीति में अपना वर्चस्व बनाए रखा और वास्तविक शासक के रूप में उसे अपनी इच्छानुसार शासित किया। मिर्ज़ा की मृत्यु के पश्चात् चकों ने नाजुक शाह द्वितीय (1540-1552) के दरबार में पुनः सत्ता हासिल की। अंततः गाज़ी चक ने शाह मीर वंश के शासक हबीब शाह पर अयोग्यता का इल्ज़ाम लगाकर उसे अपदस्थ कर दिया और 1561 में चक वंश की नींव डाली जिसका शासन 1586 तक चलता रहा, जब अंततः अकबर ने कश्मीर को विजित कर अपने साम्राज्य का अंग बना लिया।

बोध प्रश्न-4

1) कश्मीर के एक स्वतंत्र राज्य के रूप में उदित होने में भौगोलिक परिस्थितियों की भूमिका की विवेचना कीजिए।

.....

.....

.....

2) ज़ैन-उल आबिदीन कौन था?

.....

.....

.....

8.4.2 उत्तर-पश्चिमः राजपूताना

भारत के वर्तमान उत्तर-पश्चिम क्षेत्र के अंतर्गत राजस्थान, गुजरात का एक भाग तथा पंजाब आता है। भौगोलिक दृष्टिकोण से इस क्षेत्र के अंतर्गत थार का वह विशाल रेगिस्तान है जिसमें बीकानेर, जैसलमेर तथा बाढ़मेर आते हैं। दक्षिण-पश्चिम क्षेत्र में कच्छ का वह मैदान है जिसके अंतर्गत नगर पारकर राज्य फला-फूला। अरावली पहाड़ियों की तलहटी में प्रसिद्ध मेवाड़ राज्य, डूंगरपुर, बांसवाड़ा, चित्तौड़ तथा रणथम्भौर का विकास हुआ।

इस क्षेत्र में राजपूतों के कबीलाई राजतंत्रों के उदय से पूर्व भील, मीना, मेड़ तथा जाट यहाँ की स्थानीय जातियाँ थीं। ये जातियाँ भिन्न-भिन्न इलाकों में फैल गईं। भीलों की प्रमुखता, मेवाड़, डूंगरपुर तथा बांसवाड़ा राज्यों में थी और मीना, मेड़ तथा जाट क्रमशः जयपुर, जोधपुर तथा बीकानेर में प्रमुख थे। इन स्थानीय जातियों को राजतंत्र स्थापित करने में सफलता प्राप्त न हो सकी। जबकि अन्य राजपूत जो भारत के उत्तर-पश्चिम भाग से आये थे, इस कार्य में सफल हुए।

जैसलमेर के भाटी पंजाब में स्थित सतलज नदी के मैदान से आये थे और सिसोदिया दक्षिण भारत में नर्मदा नदी की घाटी से। मध्य भारत में स्थित नरवर से कछवाहा आये तथा जोधपुर एवं बीकानेर के राठौरों के संबंध कन्नौज क्षेत्र से थे। राजपूतों के विस्थापन से कुछ महत्वपूर्ण प्रवृत्तियों की ओर संकेत प्राप्त होता है। प्रारंभ में वे नदियों के किनारे पर बसे जहाँ पर उनको पर्याप्त मात्रा में पानी तथा खेती करने के लिए अच्छी भूमि उपलब्ध थी। जिस समय आबादी में वृद्धि हुई और उत्तराधिकार या अन्य विषयों को लेकर झगड़े बढ़ने लगे, तब कमजोर वर्ग उन क्षेत्रों की ओर प्रस्थान कर गये जहाँ पर जनसंख्या कम थी और ऐसी कोई राजनीतिक शक्ति विद्यमान न थी जो नये आगन्तुकों का अपने-अपने क्षेत्रों में विरोध कर पाती। ये नये आगन्तुक वहाँ की मूल जनजातियों की तुलना में राजनीतिक संगठन या युद्ध करने की कला में कहीं अधिक कुशल थे। इन नये आगन्तुकों की संख्या कम होने के कारण उन्होंने स्थानीय कबीलों पर नियंत्रण स्थापित करने के लिए दोहरी नीति का अनुसरण किया। प्रथम, शक्ति का प्रयोग किया और दूसरा सामाजिक-आर्थिक उपायों को अपनाया।

शक्ति के प्रदर्शन के संदर्भ में, अपनी स्थिति को सुदृढ़ करने के लिए उन्होंने पहले किलों का निर्माण कराया। दूसरा कार्य सामाजिक-धार्मिक दृष्टिकोण से महत्वपूर्ण था। विस्थापित जातियों ने मस्तक पर तिलक लगाने की एक परंपरा का प्रारंभ किया। जिसके अनुसार प्रत्येक उत्तराधिकारी सरदार के मस्तक पर एक स्थानीय जाति या कबीले के सदस्य द्वारा *टीका* (तिलक) लगाया जाता था। उदाहरण के तौर पर, मेवाड़ में भील, बीकानेर में गोदरा जाट तथा जयपुर में मीना अपने क्षेत्रों के उत्तराधिकारी सरदारों के मस्तकों पर *टीका* (तिलक) लगाते थे। *टीका* (तिलक) लगाने की इस परंपरा के बिना उत्तराधिकारी सरदार को क्षेत्र विशेष तथा उसकी जनता का वैध सरदार या प्रमुख नहीं माना जाता था। राजपूत वंशों द्वारा 16वीं-17वीं सदियों में मुगल शासकों की अधीनस्थता स्वीकार करने के बावजूद भी स्थानीय जाति द्वारा तिलक करने की यह सामाजिक परंपरा निरंतर जारी रही। राजनीतिक तौर पर मुगल सम्राट इन विशेषाधिकारों का उपयोग करते हुए शासक वंश के परिवार के एक सदस्य को उत्तराधिकारी घोषित करते थे। लेकिन स्थानीय स्तर पर तिलक लगाने के सामाजिक अनुष्ठान के कार्य को स्थानीय जाति के द्वारा ही किया जाता रहा। यह इस अर्थ में प्रतीकात्मक था कि जहाँ वास्तविक शक्ति मूल जाति के हाथों में थी, वहीं इन जातियों ने शासन करने की अपनी शक्तियाँ एक ऐसे सरदार को सौंप दी हैं जिसका कर्त्तव्य उस क्षेत्र की जनता की बाहरी आक्रमण से रक्षा करना तथा जनता के लिए लोक हित कार्यों की देखभाल करना था। प्रारंभ में इस सामूहिक रीति का अनुसरण स्थानीय लोगों की भावनाओं का सम्मान करने के लिए किया गया। लेकिन समय के चलते यह परंपरा मात्र एक सामाजिक अनुष्ठान बनकर रह गई। धीरे-धीरे राजपूत, क्षेत्र के वास्तविक (*de facto*) तथा विधिक (*de jure*) दोनों, शासक एवं सरदार हो गये तथा कबीलाई लोग किसान। सरदार लोग सैनिकों तथा स्वयं के रख-रखाव के लिए किसानों से अतिरिक्त उत्पाद को प्राप्त करते थे। इस अतिरिक्त उत्पाद को प्राप्त करने हेतु इसको

धार्मिक स्वरूप प्रदान कर इसे ***भोग*** कहा गया। *भोग* शब्द से धार्मिक पवित्रता का बोध होता है: देवी-देवताओं की पूजा-अर्चना में चढ़ाई गई भेंट को भी *भोग* कहा जाता था। कहने का तात्पर्य यह है कि राजा को ईश्वर का प्रतिनिधि माना गया। इसलिए राजा तथा उसके अधिकारियों को दिए जाने वाले *भोग* को धार्मिक कर्त्तव्य समझा जाता था। इसने राजा के प्रभुत्व को और शक्तिशाली बनाया और स्थानीय लोगों द्वारा विद्रोह किए जाने की संभावनाएँ काफी क्षीण हो गई। बाह्य आक्रमण से राज्य की रक्षा करना राजा का अनुबंधित कर्त्तव्य था। कुछ निश्चित भू-भाग पर सरदार के पास सामंतीय अधिकार थे और इसने कबीलाई बनाम राजतंत्रीय राज्य को जन्म दिया।

गुहिल एवं सिसोदिया

उत्तर-पश्चिम क्षेत्र में जिस सबसे शक्तिशाली राज्य का उदय हुआ वह मेवाड़ का राज्य था। 13वीं शताब्दी के दौरान जैत्र सिंह (1213-61) ने गुहिल शक्ति को सुदृढ़ किया और वह तुर्कों के आक्रमणों का सामना करने में असफल रहा। अलाउद्दीन खलजी ने राणा रतन सिंह को पराजित करने में सफलता प्राप्त की और 1303 में मेवाड़ पर अधिकार कर लिया। 14वीं सदी के दौरान मेवाड़ राज्य में आंतरिक कलहों का बोलबाला हो गया। इसके फलस्वरूप सिसोदिया राजा हमीर के द्वारा मेवाड़ को विजित करने में सफलता प्राप्त हुई। इस तरह मेवाड़ में सिसोदिया राज्य की नींव पड़ी। हमीर के उत्तराधिकारियों ने मेवाड़ राज्य के अधीन अजमेर, जहाज़पुर, मण्डलगढ़, छापेन, बूंदी, नागौर, जालैर तथा साम्भर को कर लिया। लेकिन राणा कुम्भा (1433-68) के शासनकाल में सिसोदिया शक्ति अपने चरमोत्कर्ष पर थी। राणा कुम्भा के शासनकाल में एक महत्वपूर्ण घटना यह घटित हुई कि सिसोदियों पर राठौड़ वंश का प्रभाव बढ़ने लगा। राणा कुम्भा किसी तरह से राठौड़ों पर नियंत्रण बनाए रखने में सफल हुआ।

राणा कुम्भा ने मेवाड़ राज्य की सीमाओं को दूर-दराज तक बढ़ाया। लगभग सम्पूर्ण राजस्थान उसके शासन के अधीन हो गया। उसने कोटा, बूंदी, आमेर, नरवर, दुर्गापुर, साम्भर, नागौर, रणथम्भौर तथा अजमेर पर अधिकार कर लिया। उसने मालवा तथा गुजरात के सुल्तानों के आक्रमणों को कई बार निष्क्रिय किया (इन झड़पों के विषय में अलग से गुजरात एवं मालवा के भाग में विस्तृत रूप से लिखा जाएगा)। राणा कुम्भा का वध उसके पुत्र उदा के द्वारा कर दिया गया और 1468 में वह सिंहासनारूढ़ हुआ। उदा (1468-73) और उसके उत्तराधिकारी रैमल (1473-1508) के शासनकाल में निरंतर सत्ता के लिए संघर्ष होता रहा और 1508 में अंततः यह संघर्ष तब समाप्त हुआ जब राणा सांगा ने मेवाड़ के सिंहासन को प्राप्त किया।

मुगल और मेवाड़ राज्य के मध्य संघर्ष, जो राजा सांगा और बाबर के बीच खानवा के युद्ध (1527) से प्रारंभ हो, अकबर और राणा प्रताप (156,1576) के मध्य तक चलता रहा। जब तक राणा प्रताप जीवित रहे उन्होंने मुगल शक्ति का डटकर विरोध किया, लेकिन बाद में, जहांगीर के काल में, राणा अमर सिंह ने 1615 में जहांगीर के साथ संधि कर ली और इस प्रकार अंततः मेवाड़ को मुगलों ने अपने अधीन कर लिया।

वागड़ के गहलौत

मेवाड़ के गुहिल केवल मेवाड़ की सीमाओं तक ही सीमित न थे। 12वीं सदी के प्रारंभ में मेवाड़ का सामंत सिंह अपने राज्य की स्थापना के लिए वागड़ (आधुनिक डूंगरपुर तथा बांसवाड़ा) गया। लेकिन गुजरात के हस्तक्षेप के कारण वह लम्बे समय तक इस क्षेत्र पर अपना नियंत्रण कायम न कर सका। जब वागड़ पर गुजरात का नियंत्रण कमजोर हो गया, तभी सामंत सिंह का एक वंशज जगत सिंह 13वीं सदी में इस क्षेत्र को अपने अधीन कर पाया। 14वीं तथा 15वीं सदियों के दौरान गुहिलों के नियंत्रण को सुदृढ़ किया गया। अक्सर उनके संघर्ष गुजरात के सुल्तान के साथ होते रहते थे। मालवा का सुल्तान भी उनका परमपरागत शत्रु था।

गुहिलों की एक दूसरी शाखा राणा मोकल द्वितीय के पुत्र खेम सिंह तथा उसके वंशज सूरजमल (1473-1526) के नेतृत्व में प्रतापगढ़ गई जहाँ उनके द्वारा 15वीं सदी के अंत में प्रतापगढ़ में एक स्वतंत्र राज्य की स्थापना की गई।

मारवाड़ के राठौड़

13वीं सदी के मध्य राठौड़ों ने कन्नौज से पाली की ओर विस्थापन किया। राठौड़ सरदार सिहा ने

पाली के ब्राह्मणों को मेड़ तथा मीनाओं के आक्रमण से मुक्त करने में मदद की। इस तरह से लगभग 1243 के आसपास उसने इस क्षेत्र पर अपने प्रभुत्व को स्थापित कर दिया। अस्थान और उसके बाद के राठौड़ सरदारों ने अपने शासन का विस्तार इदर, मल्लानि, मंदसौर, जैसलमेर, बाड़मेर, अमरकोट एवं भीनमल पर स्थापित कर दिया। परन्तु राठौड़ शक्ति राव चुण्डा (1384-1423) तथा राव जोधा (1438-1489) के शासनकालों में अपने चरमोत्कर्ष पर पहुँची।

1395 में राव चुण्डा ने दहेज में मन्दसौर को प्राप्त किया। बाद में उसने अपने प्रभाव को खातू, डीडवाना, साम्भर, नागौर तथा अजमेर तक फैला दिया जो दिल्ली सुल्तान के अधीन था। चुण्डा की बढ़ती शक्ति को चुनौती देने के लिए भाटियों, संखालों तथा मुल्तान के गवर्नर ने एक गुट बनाया। उन्होंने नागौर पर आक्रमण किया तथा 1423 में चुण्डा का वध कर दिया। राव जोधा के अधीन राठौड़ एक महत्वपूर्ण शक्ति बनकर उभरे और उन्होंने आगे अपने प्रभाव क्षेत्र को बढ़ाते हुए मेड़ता, फलोदी, पोखरन, भद्राजुन, सोजत, जैतारन, सिवाना, गौडवद के कुछ भागों तथा नागौर को अपने अधीन कर लिया। बाद में राव सुजा के शासनकाल के दौरान (1492-1515) राठौड़ शक्ति के पतन के संकेत मिलने लगे। बीरन देव ऐसा प्रथम सरदार था जिसने अपनी स्वतंत्रता की घोषणा की। इसके तुरंत बाद बाडमेर तथा पोखरन के सरदारों ने राठौड़ राज्य से अपने संबंध तोड़ लिए।

राठौड़ शक्ति केवल मारवाड़ क्षेत्र तक सीमित न थी और जोधा (1438-1489) के पुत्र बीका के नेतृत्व में इसका प्रसार जंगल क्षेत्र अर्थात् आधुनिक बीकानेर की ओर हुआ। बीका ने लगभग 1465 में जंगल क्षेत्र की ओर विस्थापन किया। उसने पुंगल के राव शेखा के साथ वैवाहिक संबंध स्थापित करके अपनी स्थिति को मजबूत किया। राव शेखा ने अपनी पुत्री को उसे विवाह में दिया। इस क्षेत्र के जाटों ने भी उसके सम्मुख आत्मसमर्पण कर दिया। 1488 में उसने बीकानेर नगर की स्थापना की और यह सत्ता का एक केन्द्र बन गया। अपने पिता की मृत्यु के बाद बीका ने अपने पूर्वजों की जोधपुर ***गद्दी*** को प्राप्त करने का असफल प्रयास किया। हालांकि वह पंजाब के कुछ क्षेत्रों को विजित करने में सफल रहा। 1504 में उसकी मृत्यु के समय उसके नियंत्रण में एक विशाल भू-भाग था।

गौण राजपूत राज्य

उपरोक्त उद्धृत किए गए राजपूत राज्यों के अतिरिक्त राजपूताना में 13वीं सदी से 15वीं सदी के बीच अन्य कई छोटे 'राज्यों' का उदय हुआ। सबसे महत्वपूर्ण जैसलमेर के भाटी थे। उन्होंने 11वीं सदी के प्रारंभ में पंजाब से थार रेगिस्तान की ओर विस्थापन किया। संपूर्ण 14वीं एवं 15वीं सदियों के दौरान जैसलमेर शासकों के लगातार मेवाड़, मुल्तान, अमरकोट तथा बीकानेर के साथ संघर्ष होते रहे।

इसके बाद कछवाह आते हैं। उन्होंने मध्य भारत से ढूंढर की ओर विस्थापन किया। वे गुर्जर-प्रतिहार शासकों के सामन्त थे। 11वीं सदी के दौरान कछवाहा सरदार दुलाह राय ने नरवर से पूर्वी राजस्थान की ओर विस्थापन किया तथा वहाँ पर उसने बड़गूजरों को पराजित कर ढूंढर राज्य (आमेर, आधुनिक जयपुर) की स्थापना की। 15वीं सदी के दौरान कछवाहों ने आमेर, मेद, बैराट तथा शेखावटी क्षेत्र पर नियंत्रण बनाए रखा। लेकिन मुगल शासन के दौरान उनका महत्व बढ़ गया।

हम पहले ही **इकाई 2** में पढ़ चुके हैं कि जिस समय तुर्कों ने आक्रमण किया उस समय चौहान एक महत्वपूर्ण शक्ति थे। लेकिन तुर्कों के हाथ पृथ्वीराज की पराजय (1192 का तराइन का दूसरा युद्ध) के बाद चौहानों की शक्ति का पतन हो गया। उसके बाद जालौर, रणथम्भौर, नाडोल, सिरोही तथा हाडौती जैसे छोटे-छोटे सत्ता के केंद्रों का उद्भव हुआ और ये राज्य एक समय दिल्ली सल्तनत के भाग बन गए (देखें **इकाई 2**) या ये राज्य इतने कमजोर थे कि ये मेवाड़ और मारवाड़ के प्रहारों का सामना नहीं कर सके।

13वीं सदी के मध्य में किसी समय हाड़ाओं ने बूंदी-कोटा क्षेत्र में एक छोटा सा राज्य स्थापित करने में सफलता प्राप्त की। वे मेवाड़ के राजा के सामन्त थे। समर सिंह ने 1253-1254 में बलबन के आक्रमण के विरुद्ध अपने राज्य की रक्षा करने में सफलता प्राप्त की, लेकिन वह अलाउद्दीन के शक्तिशाली प्रहार का सामना न कर सका और युद्ध करते हुए मारा गया। 1304 में उसके पुत्र नपुज का भी अलाउद्दीन के हाथों वही हाल हुआ। 15वीं सदी के दौरान हाड़ा शासकों के मेवाड़, गुजरात तथा मालवा राज्यों के साथ काफी संघर्ष हुए। वास्तव में, 13वीं सदी से 15वीं सदी के बीच बूंदी राज्य का नाममात्र का अस्तित्व था।

13वीं-15वीं सदियों के दौरान अमरकोट एवं बाड़मेर क्षेत्र में करावी तथा सोधा के यादवों का एक राजनीतिक शक्ति के रूप में उदय हुआ। लेकिन 13वीं सदी से 15वीं सदी के बीच उन्होंने क्षेत्रीय शक्तियों के निर्माण में कोई विशेष योगदान नहीं किया।

बोध प्रश्न-5

1) राजपूत कबीलों ने उत्तर-पश्चिम भारत में स्वतंत्र राजतंत्रों को स्थापित करने में कैसे सफलता प्राप्त की?

.....

.....

.....

2) राठौड़ कौन थे?

.....

.....

.....

3) राजा कुम्भा की शक्ति के उदय की संक्षिप्त विवेचना कीजिए।

.....

.....

.....

8.4.3 गुजरात

8वीं-12वीं सदी के बीच गुजरात राज्य में चालुक्यों के उद्‌भव के विषय में आप हमारे पाठ्यक्रम **बीएचआईसी-132** में पहले ही पढ़ चुके हैं। सल्तनत की स्थापना के बावजूद भी 13वीं सदी के दौरान गुजरात पर चालुक्यों का नियंत्रण बना रहा। **इकाई 2** में आप पढ़ चुके हैं कि 1299 में अलाउद्‌दीन के सेनापतियों, उलुग खां तथा नुसरत खां, ने किस तरह से चालुक्य शासक राजा करण बघेला को पराजित किया और इस प्रकार उन्होंने गुजरात में सल्नतन राज्य की नींव रखी। संपूर्ण 14वीं सदी में दिल्ली के सुल्तानों की गुजरात पर सर्वोच्चता बनी रही। लेकिन फिरोज़शाह के समय से सल्तनत का नियंत्रण कमजोर होता दिखायी पड़ता है जिसने शमसुद्‌दीन दमघनी को गुजरात के गवर्नर का भार सौपा। तैमूर के आक्रमण (1398) ने गवर्नरों को केंद्र से अलग होने का एक सुअवसर प्रदान किया। इसके शीघ्र बाद ही उस समय गुजरात के गवर्नर ज़फर खान (बाद में उसने मुज़फ्फर शाह की उपाधि धारण की) ने 1407 में गुजरात में एक स्वतंत्र राज्य की स्थापना की।

अपनी स्वतंत्रता की स्थापना के समय से ही गुजरात का अपने पड़ोसियों – मालवा, राजपूताना, खानदेश तथा बहमनी राज्यों के साथ संघर्ष चलता रहा।

मालवा के साथ संबंध

मालवा के शासक गुजरात राज्य के परंपरागत शत्रु थे। 1408 में मुज़फ्फर शाह ने मालवा पर आक्रमण किया और मालवा के शासक होशंग शाह को बंदी बना लिया। यद्यपि होशंग शाह ने गुजरात की अधीनस्थता को स्वीकार कर लिया था किंतु वह गुजरात की बढ़ती शक्ति के प्रति ईष्यालु था। गुजरात की शक्ति को कम करने के लिए मालवा के शासक ने गुजरात राज्य के शत्रुओं के साथ मित्रता कर ली। लेकिन गुजरात के शासक अहमद शाह ने होशंग शाह की शक्ति को कुचल दिया। बाद में कुतबुद्‌दीन अहमद शाह द्वितीय के शासनकाल में (1451-1459) मालवा के महमूद खलजी ने गुजरात पर आक्रमण किया, लेकिन उसके इस आक्रमण को गुजरात ने असफल कर दिया। बाद में, मेवाड़ के शासक राणा कुम्भा को पराजित करने के लिए महमूद खलजी ने कुतबुद्‌दीन अहमद शाह द्वितीय के साथ गठबंधन कर लिया। लेकिन महमूद खलजी का यह कार्य शुद्ध तौर पर कूटनीतिक था और उसने ऐसे किसी भी सम्भावित अवसर को नहीं छोड़ा, जिसके द्वारा वह गुजरात की प्रतिष्ठा पर आघात कर सकता था।

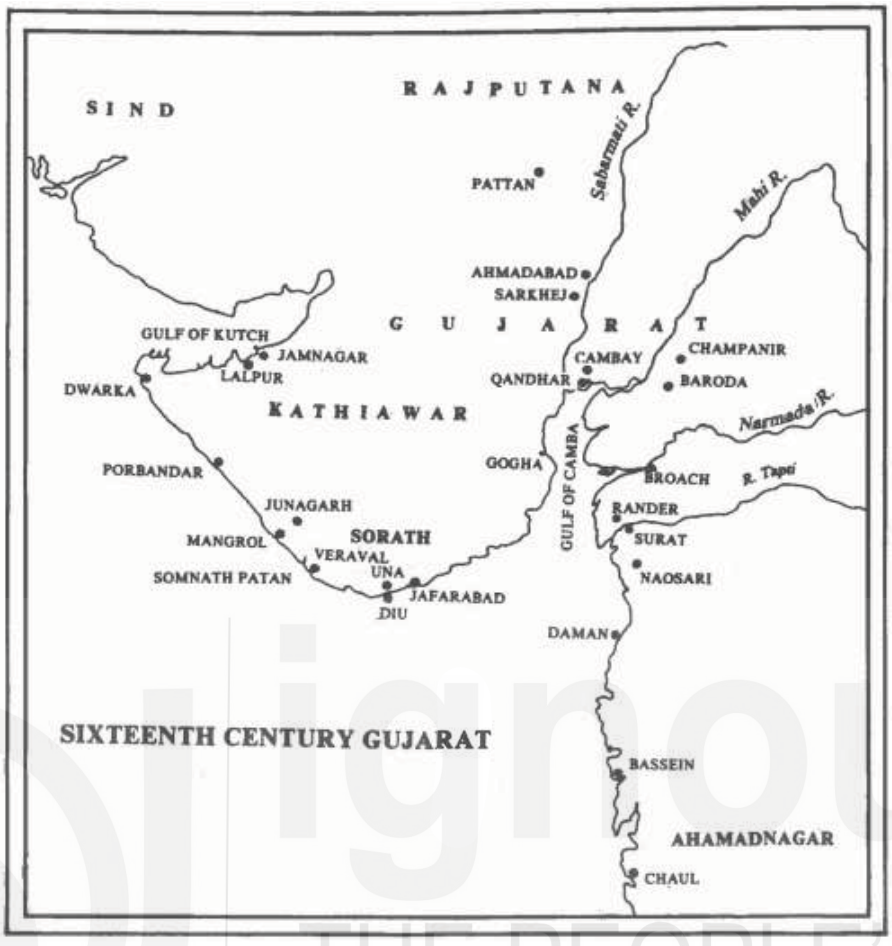

मानचित्र 8.3: 16वीं शताब्दी का गुजरात

राजपूताना के साथ संबंध

जिस अन्य शक्ति के साथ गुजरात लगातार संघर्षरत रहा, वह राजपूताना था। जिस प्रथम राजपूत राज्य को गुजरात का भाग बनाया गया वह इदर था। अहमद शाह ने शीघ्र ही डूँगरपुर (1433) पर अधिकार कर लिया। बाद में कुतबुद्दीन (1451-1459) और महमूद बेगड़ा (1459-1511) को मेवाड़ के शासक राणा कुम्भा का सामना करना पड़ा। जैसा कि हम पहले ही देख चुके हैं कि राणा कुम्भा ने सिरोही, आबू तथा नागौर पर अधिकार कर लिया। नागौर पर अहमद शाह के चाचा फिरोज़ शाह का शासन था। राणा की इस कार्यवाही के फलस्वरूप राणा कुम्भा को गुजरात, सिरोही तथा नागौर के संयुक्त आक्रमण का मुकाबला करना पड़ा। इस युद्ध का अंतिम परिणाम यह हुआ कि राणा को भारी हर्जाना देकर शांति संधि करनी पड़ी। लेकिन कुम्भलगढ़ पर दो बार अधिकार होने के बावजूद राणा कुम्भा अपनी राजधानी को अपने पास कायम रखने में सफल रहा।

चम्पानेर के राजपूत राज्य का भी गुजरात के साथ संघर्ष होता रहता था। लेकिन 1483-1484 में महमूद बेगड़ा ने अंतिम तौर पर इस राज्य को गुजरात राज्य में मिला लिया और इसका नाम मुहम्मदाबाद रख दिया गया तथा यह गुजरात राज्य की दूसरी राजधानी हो गया। महमूद बेगड़ा के समय में अन्य छोटी राजपूत रियासतों जैसे – जूनागढ़, सोरठ, कच्छ तथा द्वारका पर अधिकार कर लिया गया और मुज़फ्फर शाही राज्य की सीमाएँ काठियावाड़ प्रायद्वीप के दूर-दराज के स्थलों तक पहुँच गईं।

बहमनी तथा खानदेश के साथ संबंध

बहमनी शासक फिरोज़ शाह (1397-1422) के गुजरात शासकों के साथ मधुर संबंध बने रहे। लेकिन उसकी मृत्यु के बाद अहमद बहमनी (1422-1436) के सत्तासीन होने के साथ इस स्थिति में गुणात्मक परिवर्तन हुआ। उसने खानदेश के साथ वैवाहिक संबंध स्थापित किये। 1429 में बहमनी तथा खानदेश ने झालावाड़ के शासक राय कान्हा को शरण दी। इस कार्य ने गुजरात के शासक

अहमद शाह गुजराती को भड़काया और उसको उनके विरुद्ध बल प्रयोग करना पड़ा। उसने उनको पराजित कर दिया और माहिम पर अधिकार कर लिया। लेकिन बेगड़ा के समय में पुनः सौहार्दपूर्ण संबंधों को स्थापित किया गया। जिस समय मालवा के शासक महमूद खलजी ने बहमनी राज्य पर आक्रमण किया, तब महमूद बेगड़ा उसकी सहायता के लिए दो बार आया।

महमूद बेगड़ा ने खानदेश शासकों के साथ भी मित्रतापूर्ण संबंध बनाए रखे, लेकिन आदिल खां द्वितीय ने नज़राना देना बंद कर दिया और अहमदनगर तथा बरार के साथ मिल गया। इसी कारण से महमूद बेगड़ा ने खानदेश पर आक्रमण किया और अंततः आदिल खां को महमूद बेगड़ा की अधीनस्थता को स्वीकार करने के लिए बाध्य किया गया। लेकिन बेगड़ा ने खानदेश या दौलताबाद पर अधिकार नहीं किया बल्कि उसने यहाँ के शासकों को केवल नज़राना अदा करने के लिए बाध्य किया।

महमूद बेगड़ा के सिंध के शासक **जाम** निज़ामुद्दीन के साथ भी घनिष्ठ सम्बन्ध थे। निज़ामुद्दीन उसका नाना था और जब सिंध के कबीलाई समुद्री डाकुओं ने उसके विरुद्ध विद्रोह किया तब वह निज़ामुद्दीन की सहायता करने के लिए गया।

महमूद बेगड़ा ने भारतीय समुद्र में उदित होती पुर्तगाली शक्ति का भी दमन किया। इस कार्य में उसे मिश्र के शासकों तथा ऑटामेन शासकों द्वारा भेजे गए उनके सेनापतियों अमीर हुसैन तथा सुलेमान रईस ने सहायता प्रदान की। इनकी संयुक्त सेनाओं ने 1508 में चौल में पहली बार पुर्तगाल के जहाजी बेड़े को पराजित किया। लेकिन 1509 में अलबुकर्क ने इस संयुक्त सेना को पराजित कर दिया। इसके फलस्वरूप महमूद बेगड़ा ने 1510 में पुर्तगालियों के साथ एक संधि की और उनसे अरब सागर में गुजरात के जहाजों की सुरक्षा का आवश्वासन प्राप्त किया।

1508 में दिल्ली सुल्तान सिकन्दर लोदी ने अपना एक दूत गुजरात भेजा। सिकन्दर लोदी तथा ईरान के इस्माइल सफवी जैसे शासकों के दूतों के गुजरात आने से गुजरात के शासक की प्रतिष्ठा में बहुत वृद्धि हुई। इससे यह स्पष्ट है कि समकालीन राष्ट्रीय एवं अंतर्राष्ट्रीय राजनीति में महमूद बेगड़ा का महत्वपूर्ण स्थान बन गया था।

8.4.4 सिंध

भारत की पश्चिमी सीमा पर स्थित सिंध एक दूसरा स्वतंत्र राज्य था। सिंध राज्य में मुसलमान शक्ति की स्थापना का इतिहास 712 में उस समय से प्रारंभ होता है जब मुहम्मद बिन कासिम ने सिंध पर आक्रमण किया। ऐसा प्रतीत होता है कि सुमीरों ने सिंध में अपनी शक्ति की स्थापना किसी समय 10वीं सदी में की थी। उनके शासन के विषय में हमें कोई विशेष जानकारी नहीं है और न ही उनके पड़ोसी राज्यों के साथ संबंध के बारे में। लेकिन यदा-कदा उद्धरणों से स्पष्ट है कि उनका प्रभाव देबल तथा मकरान समुद्र तट तक फैला हुआ था। कच्छ के कुछ क्षेत्रों पर भी उनका प्रभाव था। *तारीख-ए जहॉगुशा* के अनुसार 1224 में ख्वारिज़्म शासक जलालुद्दीन मंगबरनी ने सुभीर राजकुमार चानेसर को पराजित किया तथा देबल व दमरिला पर अधिकार कर लिया। इल्तुतमिश के शासनकाल में उसके *वज़ीर* निज़ाम-उल मुल्क जुनैदी ने 1228 में सिंध पर अधिकार कर लिया तथा इसके शासक चानेसर को इल्तुतमिश के दरबार में भेज दिया गया। बाद में 1350-1351 में मुहम्मद तुगलक ने विद्रोही कुलीन तागी का पीछा करते हुए थट्टा पर आक्रमण किया।

1351 में सम्माहों ने सुमीरों को हराकर उसका स्थान ग्रहण कर लिया। उन्होंने सिंध में 175 वर्षों तक शासन किया। *चचनामा* में यह उद्धृत है कि सम्माह मुहम्मद बिन कासिम की विजय से पूर्व भी सिंध में निवास करते थे। वे मूल तौर पर राजपूतों की यादव शाखा से संबंधित थे और बाद में उन्होंने इस्लाम स्वीकार कर लिया। वे मुख्य तौर पर खेती करते थे और सुमीरों के अधीन उनके भू-क्षेत्र थे। 1360-1361 में तथा पुनः 1362 में फिरोज़ शाह तुगलक ने जाम जौना तथा थट्टा के बनबेनिया पर आक्रमण किये। जाम को आत्मसमर्पण करना पड़ा। लेकिन 1388 में फिरोज़ शाह तुगलक की मृत्यु के तुरंत बाद सम्माहों ने सल्तनत के विरुद्ध विद्रोह कर दिया और जाम तुगलक के नेतृत्व में स्वतंत्र हो गये। सिंध के जाम शासकों के गुजरात के साथ सौहार्दपूर्ण संबंध थे। जाम निज़ामुद्दीन ने अपनी दो पुत्रियों का विवाह गुजरात के शासक के साथ किया और महमूद बेगड़ा उसकी छोटी पुत्री बीबी मुग़ली का पुत्र था। हम पहले ही देख चुके हैं कि 1472 में महमूद बेगड़ा उस समय जाम निज़ामुद्दीन की सहायता के लिए आया जिस समय समुद्री डाका डालने वाले

कबीलों ने विद्रोह करके जाम के प्रभुत्व के लिए खतरा उत्पन्न कर दिया था। सिंध के जाम शासकों में जाम निज़ामुद्दीन (1460-1508) सबसे महान् शासक था और उसके मुल्तान के शासक सुल्तान हुसैन के साथ घनिष्ठ संबंध थे। ईरान के इल खान वंश के **अर्घुन** शासकों ने जाम निज़ामुद्दीन के शासन के अंतिम वर्षों (1493) में जाम शक्ति के लिए खतरा उत्पन्न किया। लेकिन जब तक जाम निज़ामुद्दीन जीवित रहा, तब तक अर्घुनों के आक्रमण सफल न हो सके। लेकिन 1508 में उसकी मृत्यु के बाद अर्घुनों ने 16वीं सदी के दौरान अपना राज्य स्थापित करने में सफलता प्राप्त कर ली। अंततः 1590 में अकबर द्वारा सिंध को विजित कर अपने साम्राज्य में मिला लिया गया।

मानचित्र 8.4: सिंध

बोध प्रश्न-6

1) मालवा के शासकों के साथ गुजरात राज्य के संबंधों की आलोचनात्मक व्याख्या कीजिए।

.....

.....

.....

2) सम्माह कौन थे?

.....

.....

.....

8.5 क्षेत्रीय राज्य और वैद्यता का प्रश्न

इस भाग में हम क्षेत्रीय राज्यों की प्रमुख विशेषताओं पर प्रकाश डालेंगे।

8.5.1 क्षेत्रीय राज्यों की विशेषताएँ

आमतौर पर यह धारणा बनी हुई है कि सल्तनत काल में हिंदुओं और मुसलमानों के बीच जो 'बैर-भाव' था, वह 13वीं-15वीं शताब्दी के दौरान और बढ़ा और उनके आपसी झगड़ों तथा संघर्षों में वृद्धि हुई। पर जैसा कि श्वाट्ज़बर्ग ने इस बात का खंडन करते हुए सही कहा है कि इस काल में हिंदू और मुसलमानों के बीच संघर्ष की अपेक्षा मुसलमानों और मुसलमान राजाओं तथा हिंदू और हिंदू राजाओं के बीच प्रायः अधिक गहरे संघर्ष हुए। उदाहरण के लिए, मालवा और जौनपुर के मुसलमान शासक गुजरात के परम्परागत दुश्मन थे; कमाटा और अहोम के राजाओं के बीच आए दिन युद्ध हुआ करते थे; उड़ीसा के शासकों को हमेशा विजयनगर के शासकों का आक्रमण सहना पड़ा और राजपूताना के विभिन्न राजवंश आपस में लड़ा करते थे। उन्होंने अपार संकट की स्थिति में भी एकता की भावना प्रदर्शित नहीं की। वस्तुतः राजनीतिक संधियों में धर्म की अपेक्षा समय और परिस्थिति की अधिक भूमिका रही। 1450-1451 में महमूद शाह गुजराती के खिलाफ मालवा के महमूद खलजी प्रथम ने चम्पानेर के राजा गंगा दास की सहायता की थी। बाद में, मेवाड़ के राणा कुंभा की शक्ति को देखते हुए महमूद खलजी ने राणा के खिलाफ गुजराती शासक कुतबुद्दीन की सहायता की।

13वीं-15वीं शताब्दी की राजनीतिक व्यवस्था की एक खास विशेषता यह थी कि इस काल की राजनीतिक व्यवस्था का फैलाव 'उर्ध्व' था, न कि 'क्षैतिज'। अर्थात् इन क्षेत्रीय राज्यों का भू-क्षेत्र 'क्षैतिज' दृष्टि से सल्तनत के मुकाबले काफी कम था, पर यहाँ राजनीतिक व्यवस्था 'उर्ध्व' रूप में ग्रामीण इलाकों तक गहराई से जमी हुई थी।

क्षेत्रीय शासकों के अधीनस्थ भू-क्षेत्र के अधिकांश हिस्सों में उनकी पकड़ कमजोर थी; यहाँ तक कि जहाँ उनका लगभग पूर्ण नियंत्रण होता था, वहाँ भी उन्हें प्रायः कठिनाइयों का सामना करना पड़ता था। नियंत्रण के आधार पर उनके अधिकार-क्षेत्र को तीन भागों में विभक्त किया जा सकता है:

क) जिस क्षेत्र से भू-राजस्व सीधे राजस्व पदाधिकारियों द्वारा वसूल किया जाता था, वहाँ राज्य का प्रभाव और नियंत्रण सबसे ज्यादा होता था।

ख) जिन इलाकों का राजस्व स्थानीय सरदार वसूल करते थे, वहाँ भी राज्य का नियंत्रण पर्याप्त होता था।

ग) जिन क्षेत्रों से केवल नज़राना आता था, वहाँ राज्य का नियंत्रण सबसे कम था। इस व्यवस्था का सीधा प्रभाव क्षेत्रीय शासकों और सामंतों, करदाता सरदार या राजा और स्थानीय कुलीन वर्ग (तथाकथित *ज़मींदार, मुकद्दम,* आदि) के बीच के संबंधों पर पड़ा।

8.5.2 सामंत और भूमिपति कुलीन वर्ग

13-15वीं शताब्दी की क्षेत्रीय राजनीतिक व्यवस्था में सामंतों की अहम् भूमिका रही। इस सामंत वर्ग में हिन्दू और मुसलमान दोनों शामिल थे। वे *खान-ए आजम, खान-ए मुअज्ज़म, महापत्राधिपत्र* जैसी पदवियों से विभूषित किए जाते थे। इन सामंतों को उनके वेतन के बदले में '*इक्ता*' (वेतन के बदले राजस्व का एक हिस्सा) दिया जाता था; इसके बदले में वे उस इलाके की कानून व्यवस्था संभालते थे, राजस्व वसूल करते थे और समय आने पर राजा को सैनिक भी मुहैया करवाते थे। सैद्धांतिक तौर पर यह पद वंशानुगत नहीं होता था और यह पद राजा अपनी इच्छा के अनुसार किसी भी सरदार को दे सकता था; पर धीरे-धीरे यह पद वंशानुगत होता गया। केवल राजपूताना इसका अपवाद था, जहाँ यह पद ज्यादातर कुल के सदस्यों को ही दिया जाता था; राजा की कृपा का महत्व गौण था। आप पहले देख चुके हैं कि इन सामंतों में विद्रोह की प्रवृत्ति थी और उत्तराधिकार के युद्ध में ये आमतौर पर कभी किसी एक दल तो कभी दूसरे दल के साथ हो जाया करते थे। उनके पास सैन्य शक्ति थी, अतः राजा को उन पर आश्रित रहना पड़ता था। कुछ सरदार इतने शक्तिशाली होते थे कि वे उत्तराधिकारियों को गद्दी दिलाने में प्रमुख भूमिका निभाते थे और राजा उनके हाथों का खिलौना बन जाते थे (विस्तृत जानकारी के लिए ऊपर वर्णित विवरण देखें)।

भूमिधर कुलीन वर्ग

क्षेत्रीय राज्यों में राजस्व वसूली और कानून और व्यवस्था बनाए रखने में भूमिधर कुलीन वर्ग ने

महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। भौगोलिक और राजनीतिक आधार पर उन्हें दो कोटियों में विभक्त किया जा सकता हैः

क) सीमांत क्षेत्र में रहने वाला भूमिधर कुलीन वर्ग। इस कोटि में 'सरदार' और 'राजा' आते हैंः तथाकथित बिचौलिए *ज़मींदार*।

ख) मुख्य भू-क्षेत्र में रहने वाला भूमिधर वर्गः तथाकथित प्राथमिक *ज़मींदार*।

पहली कोटि में दुराग्रही और हठी तत्वों का बोलबाला था। वे कभी किसी एक राजा का पक्ष लेते थे, तो कभी किसी दूसरे राजा का; वे अपनी निष्ठा बदलते रहते थे।

मुख्य भू-क्षेत्र में रहने वाले भूमिधर कुलीन वर्ग पर दबाव अपेक्षाकृत अधिक रहता था और उसकी गतिविधियों पर कड़ी निगरानी भी रखी जाती थी। क्षेत्रीय राज्यों की एक चरित्रगत विशेषता यह है कि यहाँ के अधिकांश शासक अप्रवासी थे; उनका कोई स्थानीय आधार नहीं था। उनका प्रमुख उद्देश्य एक ऐसे निष्ठावान ग्रामीण कुलीन वर्ग का निर्माण करना था जिसकी सहायता से पुराने कुलीन वर्ग की शक्ति को संतुलित किया जा सके। क्षेत्रीय शक्तियों का यही प्रमुख उद्देश्य होता था और इसी में उनकी सफलता निहित होती थी। मुसलमानों के आक्रमण और राजपूत रजवाड़ों के आपसी युद्ध के कारण राजपूत काफी संख्या में मालवा और गुजरात की ओर स्थानांतरित हो गए। हम देखते हैं कि तेरहवीं शताब्दी तक इस क्षेत्र के अधिकतर भूपति राजपूत थे। अतः इस प्रक्रिया में मालवा और गुजरात के राजाओं को कड़े विरोध का सामना करना पड़ा। गुजरात में सुल्तान अहमद शाह प्रथम ने *वंठ* व्यवस्था लागू कर इस क्षेत्र में मूलभूत परिवर्तन किए।

बंगाल में, बख्तियार खलजी ने विजय के पश्चात् सारी जमीन अपने सेनापतियों में वितरित कर दी और उन्हें '*मुक्ती* ' बना दिया। ग्रामीण इलाकों में मुसलमानों के प्रभाव को असरदार बनाने के लिए सूफियों और *उलमा* को गाँवों में बसाने के प्रयत्न किए गए और *मदद-ए माश* के रूप में भूमि अनुदान दिए गए।

8.5.3 उत्तराधिकारी राज्यों के रूप में उत्तर भारतीय राज्य

क्षेत्रीय राज्यों को आमतौर पर सल्तनत के 'उत्तराधिकारी' राज्य के रूप में देखा जाता है। इसके पक्ष में एक तर्क दिया जाता है कि क्षेत्रीय राज्यों के संस्थापक किसी न किसी रूप में सल्तनत के मातहत कर्मचारी रह चुके थे; चाहे उन्होंने गवर्नर के रूप में सल्तनत की सेवा की हो या किसी अन्य पद पर कार्य किया हो। कुछ मामलों में यह बात सही है, पर सभी जगह यह बात लागू नहीं होती। मसलन, गुजरात, मालवा और जौनपुर के संस्थापक क्रमशः ज़फर खां, दिलावर खां और मलिक सरवर तुगलक सल्तनत में गवर्नर के रूप में कार्य कर चुके थे। इसके अतिरिक्त, बंगाल के शासक का सल्तनत से सीधा और निरंतर संबंध बना रहा। लेकिन, राजपूत राज्य इस दृष्टि से अपवाद थे। हालांकि, उन्हें हमेशा सल्तनत का आक्रमण झेलना पड़ा पर उन्होंने कभी भी उसका पूर्ण आधिपत्य स्वीकार नहीं किया। उन्हें जब भी मौका मिला उन्होंने सल्तनत की अधीनता के जुए को उतार फेंका और अपने वंशीय राज्य की स्थापना की। सिंध के मामले में भी बिल्कुल ऐसा ही हुआ। सल्तनत के दबाव में आकर सिंध के शासकों ने इल्तुतमिश, मुहम्मद तुगलक और फिरोज़ तुगलक का प्रभुत्व स्वीकार कर लिया, परन्तु व्यावहारिक तौर पर सुमिराहों और सम्माहों ने स्वतंत्र रूप में शासन किया। असम (कमाटा और अहोम), कश्मीर और ओडिशा राज्यों का उदय भी सल्तनत से बिल्कुल स्वतंत्र रूप में हुआ।

कुछ क्षेत्रीय शक्तियों का उदय सल्तनत के खंडहर पर हुआ था, अतः यह माना जाने लगा कि इसकी राजनीतिक संरचना भी सल्तनत के ही ढाँचे पर निर्मित थी। आइए देखें कि यह दृष्टिकोण किस हद तक उचित है।

8.5.4 उत्तराधिकार का प्रश्न

इस्लाम में उत्तराधिकार संबंधी कोई निश्चित नियम नहीं है। परिणामस्वरूप, दिल्ली सल्तनत में इसके लिए चुनाव, मनोनयन और वंशानुगत राज्यारोहण तीनों प्रक्रियाएँ साथ-साथ चलती रहीं। वस्तुतः जिसके पास शक्ति होती थी, वह गद्दी का हकदार बन जाता था। अतः इस मामले में उलट-फेर करने की पूरी गुंजाइश थी।

सल्तनत के समान क्षेत्रीय हिंदू या मुस्लिम राज्यों में भी उत्तराधिकार का कोई निश्चित नियम नहीं था। अतः षड्यंत्र और गुप्त संधियों का बड़ा जोर रहता था और इसमें कभी-कभी महिलाएँ भी

महत्वपूर्ण भूमिका अदा करती थीं। मालवा में ज्येष्ठाधिकार की अपेक्षा मनोनयन का सिद्धांत प्रभावी हुआ। जौनपुर में 'शक्ति' का बोलबाला रहा। 1458 में हुसैन शाह शर्की ने अपने बड़े भाई मुहम्मद शाह शर्की को मारकर गद्दी हासिल कर ली। इसी प्रकार, गुजरात में अपने राज्यारोहण के पूर्व अहमद शाह को अपने चाचा मौदूद सुल्तान (फिरोज़ खां) की चुनौती का सामना करना पड़ा था। बंगाल में इस मामले में सरदारों की भूमिका प्रमुख रही और शासकों को राज्याधिकार प्राप्त करवाने में वे सक्रिय रहे। शमसुद्दीन अहमद शाह की हत्या उसके गुलामों, शादी खां और नासिर खां (1435), द्वारा कर दी गई। इसके जबाव में विरोधियों ने उनकी हत्या कर दी (1442)। 1487 तक अबीसीनियाई (हब्शी) सरदारों की शक्ति अपने शिखर पर पहुँच गई। इस समय अबीसीनियाई सरदार मलिक अंदिल ने जलालुद्दीन फतह शाह की हत्या कर गद्दी हथिया ली।

राजपूताना में भी ज्येष्ठाधिकार का शत-प्रतिशत पालन नहीं किया जाता था। इस संदर्भ में गुहिलों और सिसोदियों के मामले को लिया जा सकता है। राणा लाखा की मृत्यु के बाद चुंडा (राणा का ज्येष्ठ पुत्र) को गद्दी प्राप्त नहीं हुई, बल्कि उसके अल्पवयस्क पुत्र राणा मोकल को शासक बनाया गया। इसी प्रकार, उदय ने अपने पिता राणा कुंभा को मारकर गद्दी हासिल की। रायमल भी आसानी से राजा न बन सका। उसे उदा के पुत्रों सहसमल और सूरजमल की चुनौतियों का सामना करना पड़ा।

कश्मीर में भी उत्तराधिकार का कोई निश्चित नियम न बनाया जा सका। 1323 में अपने मालिक की मृत्यु के बाद शाह मीर ने गद्दी हथिया ली। उसके ज्येष्ठ पुत्र जमशेद के राज्यारोहण (1342) के लिए भी लंबा उत्तराधिकार युद्ध चला। ज़ैन-उल आबिदीन ने खुद 1420 में अपने बड़े भाई अली शाह को मारकर सत्ता हासिल की।

असम में, अहोम राजाओं की नियुक्ति में प्रभावशाली सामंतों की परिषद – *बर गोहिन* और *बुराह गोहिन* की प्रमुख भूमिका होती थी। वस्तुतः इन परिषदों की अनुशंसा के बगैर कोई राजा गद्दी पर नहीं बैठ सकता था। केवल ओडिशा राज्य में गंगा शासकों के शासनकाल में उत्तराधिकार के नियम का सम्मान किया गया। पर, कालांतर में, जब सत्ता का हस्तांतरण गजपति शासकों के हाथों में हुआ, तब इस नीति की कुछ अवमानना हुई। हम पाते हैं कि कपिलेंद्र की मृत्यु के बाद उसके छोटे पुत्र पुरुषोतम ने अपने बड़े भाई हमीर के अधिकार पर कब्जा जमा लिया।

8.5.5 वैधता का प्रश्न

राजा सर्वोच्च शक्ति था और वह सभी मामलों में अंतिम निर्णायक था। पर इस्लाम में सुल्तान की सत्ता को कोई वैधता प्राप्त नहीं थी और खलीफा मुसलमानों का राजनीतिक प्रधान होता था। दिल्ली के सुल्तान अपनी सत्ता को 'वैध' बनाने के लिए खलीफा के नाम का खुतबा पढ़ा करते थे और सिक्के में उनका नाम खुदवाया करते थे। क्षेत्रीय राज्यों के लिए भी अपने आपको वैध करार करना जरूरी था। यह केवल जनता पर हक जमाने के लिए ही जरूरी नहीं था, बल्कि प्रतिद्वंद्वियों को शांत करने के लिए भी यह जरूरी था। कोई भी राज्यारोहण बिना संघर्ष या युद्ध के सम्पन्न नहीं होता था, अतः विजयी उत्तराधिकारी को अपनी वैधता साबित करनी होती थी। कुछ क्षेत्रीय राज्य इतनी दूर स्थित थे, जिनके लिए बगदाद से खलीफा की मंजूरी मंगाना मुश्किल और अव्यावहारिक था। इस स्थिति में यह कार्य *उलमा* और सूफ़ी सम्पन्न किया करते थे।

कट्टर मुसलमानों को अपने पक्ष में करने के लिए मालवा, गुजरात, बंगाल और जौनपुर के शासकों ने हमेशा *उलमा* और सूफियों का समर्थन प्राप्त करने की कोशिश की और इसके बदले में उन्हें अच्छे पद और राजस्व मुक्त भू-अनुदान (*मदद-ए माश*) प्रदान किए गये। वे अक्सर मुस्लिम संतों की *खानकाहों* में दर्शन के लिए जाया करते थे। इवाज़ खलजी, मुग़ीसुद्दीन, रुक्नुद्दीन कैकॉस, शमसुद्दीन फिरोज़, आदि बंगाल के शासकों ने खलीफा से वैधता की मंजूरी हासिल की और सभी ने अब्बासिद खलीफा का नाम सिक्कों पर खुदवाया। इब्राहिम शर्की के संरक्षण में अनेक प्रमुख मुस्लिम संतों मखदमू असदउद्दीन आफताब-ए हिंद, मखदमू सद्रउद्दीन चिराग-ए हिंद, पांडुआ के सैय्यद अलाउल हक, आदि ने ख्याति पाई। मालवा शासक होशंग शाह ने *उलमा* और सूफियों को मालवा में बसाने के हर प्रयत्न को प्रोत्साहित किया। होशंग शाह के मन में मखदमू काज़ी बुरहानुद्दीन के प्रति अपार श्रद्धा थी और वह उसका शिष्य (*मुरीद*) भी बन गया था। महमूद खलजी ने मिस्र के अब्बासिद खलीफा से *खिल्लत* प्राप्त की थी। इससे मालवा के शासक की प्रतिष्ठा बढ़ी। गुजराती शासक महमूद

बेगड़ा, बुरहानुद्दीन के मुरीद प्रसिद्ध सूफ़ी सैय्यद उस्मान का बड़ा सम्मान किया करता था। 1459 में उसकी मृत्यु के तुरंत बाद महमूद बेगड़ा ने अहमदाबाद में उसकी याद में एक मस्जिद और ***रौज़ा*** (मकबरा) बनवाया। बुरहानुद्दीन के पुत्र शाह आलम को भी गुजराती शासकों कुतबुद्दीन और महमूद बेगड़ा से सम्मान और संरक्षण प्राप्त हुआ। कश्मीर के राजा भी सूफियों का सम्मान किया करते थे। राजपूताना में, राजाओं ने अपने राजनीतिक कार्यों को वैध करार देने के लिए ब्राह्मणों को अपने पक्ष में मिलाकर रखा और इसके बदले में ब्राह्मणों को मुक्तहस्त से राजस्व मुक्त भू-अनुदान दिए।

ओडिशा में भगवान जगन्नाथ को वास्तविक राजा माना जाता था। इस कारण से ब्राह्मणों का राजनीतिक प्रभाव तेजी से बढ़ा। उन्होंने कपिलेंद्र द्वारा गंगा शासक को हटाए जाने को वैध घोषित किया (1435) और हमीर की जगह पुरुषोतम देव को गद्दी दिए जाने का समर्थन किया।

बोध प्रश्न-7

1) क्षेत्रीय राज्यों के 'क्षैतिज' और 'ऊर्ध्व' फैलाव से आप क्या समझते हैं?

.....

.....

.....

2) क्या क्षेत्रीय राज्यों को सही अर्थों में सल्तनत का उत्तराधिकारी राज्य कह सकते हैं? टिप्पणी कीजिए।

.....

.....

.....

8.6 सारांश

इस इकाई में आपने मालवा, जौनपुर तथा बंगाल के स्वतन्त्र राज्यों के उदय का अध्ययन किया है। इन राज्यों का उदय दिल्ली सल्तनत के कमज़ोर हो जाने के परिणामस्वरूप हुआ था। हमने प्रत्येक राज्य के क्षेत्रीय प्रसार तथा दिल्ली सल्तनत तथा पड़ोसी राज्यों के साथ इन राज्यों के संबंधों का भी विवेचन किया है। इन राज्यों के अतिरिक्त हमने असम एवं ओडिशा के राज्यों का भी उल्लेख किया है। इन दोनों राज्यों का विकास दिल्ली सल्तनत से स्वतंत्र तौर पर हुआ। असम में कमाटा-कामरूप तथा अहोम नाम के दो राज्य विद्यमान थे। अहोम राज्य अभी भी राज्य निर्माण की प्रक्रिया में था और यह मुख्यतः कबीलाई संगठन पर आधारित था।

हमने 13वीं सदी से 15वीं तक उत्तर-पश्चिम भारत में क्षेत्रीय राज्यों के उदय के विषय में भी वर्णन किया। हम देख चुके हैं कि कश्मीर का सल्तनत से बाहर एक स्वतंत्र राज्य के रूप में उदय हुआ। बहलोल लोदी के शासनकाल को छोड़कर 13वीं सदी से 15वीं सदी तक कश्मीर के संबंध सल्तनत के साथ सौहार्दपूर्ण बने रहे। राजपूताना में कुल-वंश संगठन पर आधारित गुहिल, सिसोदिया एवं राठौड़ जैसे महत्वपूर्ण राज्यों का उदय हुआ। सल्तनत के पतन के परिणामस्वरूप, गुजरात एक स्वतंत्र राज्य बन गया। 15वीं सदी के प्रारंभ में इसने एक स्वतंत्र राज्य का दर्जा प्राप्त कर लिया था। गुजरात अपने पड़ोसी राज्यों – मालवा, राजपूताना तथा बहमनी – के साथ लगातार संघर्षरत रहा। इसी दौरान सुदूर पश्चिम स्थित सिंध राज्य ने सुमीरों तथा सम्माहों के अधीन सल्तनत के दासत्व को उतार फेंकने का भरसक प्रयास किया। अपने इस उद्देश्य को वह फिरोज़ शाह तुगलक की मृत्यु के बाद ही प्राप्त कर सका। आपने उत्तर भारत के क्षेत्रीय राज्यों की चरित्रगत विशेषताओं का भी अध्ययन किया। उनका प्रभाव 'उर्ध्व' रूप में ग्रामीण क्षेत्रों में गहराई से समाया हुआ था, पर 'क्षैतिज' रूप में उनका प्रसार कम था, अतः उनके राज्य-क्षेत्र का फैलाव सल्तनत की अपेक्षा कम था। क्षेत्रीय राज्य सल्तनत के 'उत्तराधिकारी राज्यों' का प्रतिनिधित्व करते हैं। पर यह सर्वथा सत्य नहीं है।

8.7 शब्दावली

अर्घुन ईरान के इल-खां शासक के वंशज

भोग	भू-राजस्व; देवता को दी जाने वाली भेंट
गद्दी	सिंहासन
गोत	चार वयस्क पुरुषों की इकाई
हाकिम	प्रांतीय गवर्नर
जाम	यह एक उपाधि थी जिसको सिंध के सम्माह शासकों ने धारण किया
पायक	अहोम सैनिक/घर-परिवार के सदस्य
पात्र-मंत्री	*बर* और *बुराह गोहिन* की परिषद्
रौज़ा	मकबरा

8.8 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न-1

1) देखें उप-भाग 8.3.1

2) देखें उप-भाग 8.3.2

3) i) ✓ ii) × iii) ✓ iv) ✓

बोध प्रश्न-2

1) देखें उप-भाग 8.3.3

2) देखें उप-भाग 8.3.3

3) क) 1205 ख) 1281 ग) 1342 घ) 1460-74 ङ.) 1357-1389

बोध प्रश्न-3

1) देखें उप-भाग 8.3.4

2) देखें उप-भाग 8.3.4

3) देखें उप-भाग 8.3.5

4) क) राय संध्या ख) *बुरंजी* ग) नीलध्वज घ) माओ-शान, ताय-अहोम की उप-जनजाति
ङ.) बहमनी शासक मुहम्मद शाह तृतीय

बोध प्रश्न-4

1) देखें उप-भाग 8.4.1

2) देखें उप-भाग 8.4.1

बोध प्रश्न-5

1) देखें उप-भाग 8.4.2

2) देखें उप-भाग 8.4.2

3) देखें उप-भाग 8.4.2

बोध प्रश्न-6

1) देखें उप-भाग 8.4.3

2) देखें उप-भाग 8.4.3

बोध प्रश्न-7

1) देखें उप-भाग 8.5.1

2) देखें उप-भाग 8.5.3

8.9 संदर्भ ग्रन्थ

डे, यू. एन, (1965) *मिडिवल मालवाः ए पॉलीटिकल एंड कल्चरल हिस्ट्री, 1401-1562* (दिल्लीः मुंशीराम मनोहरलाल).

हबीब, मोहम्मद एवं के. ए. निज़ामी, (1982) *कॉम्प्रीहेंसिव हिस्ट्री ऑफ इंडिया*, भाग-V (नई दिल्लीः पीपल्स पब्लिशिंग हाउस), पुनः मुद्रित.

हसन, मोहिबुल, (2005) *कश्मीर अंडर द सुल्तान्स* (नई दिल्लीः आकार बुक्स), पुनः मुद्रित.

हुसैन, सैयद एजाज़, (2003) *द बंगाल सल्तनतः पॉलिटिक्स, इकॉनॉमी एंड कॉइन्स (ए डी 1205-1576)* (नई दिल्लीः मनोहर).

सईद, मियां मुहम्मद, (1972) *द शर्की सल्तनत ऑफ जौनपुरः ए पॉलिटिकल एंड कल्चरल हिस्ट्री* (कराचीः यूनिवर्सिटी ऑफ कराची).

यज़दानी, जी., (1929) *मांडूः द सिटी ऑफ जॉय* (ऑक्सफोर्डः जे. जॉनसन द्वारा धार राज्य के लिए यूनिवर्सिटी प्रेस द्वारा मुद्रित).

8.10 शैक्षणिक वीडियो

द अहोम किंग्डम ऑफ असम
https://www.youtube.com/watch?v=UanQqD7nPXg

जौनपुरः सीट ऑफ द शर्की सल्तनत/हिस्ट्री डेली
https://www.youtube.com/watch?v=jYtQ7T1HCb0

द मिडिवल मैट्रोपोलिस ऑफ मालवा
https://www.youtube.com/watch?v=XgZKR4KMUOk

गुजरात सल्तनतः आर्कीटेक्चर
https://www.youtube.com/watch?v=16461szDdwU

पांडुआः द लॉस्ट कैपिटल ऑफ द सल्तनत ऑफ बंगाल
https://www.youtube.com/watch?v=IHmOAj0nypI